आधुनिक हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथक तत्व

ADHUNIK HINDI GEETI-NATYOM MEIN MIDHAK TATWA

Thesis
Submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

जयश्री बी.

JAYASREE B.

Dr. K. VANAJA
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 002

2006

Certificate

This is to certify that the thesis entitled as **"ADHUNIK HINDI GEETI-NATYOM MEIN MIDHAK TATWA"** is a bonafide record of work carried out by **Mrs. JAYASREE.B.** under my supervision for the award of the degree of doctor of philosophy and that no part of this has hitherto been submitted for a degree in any other university.

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi - 682 022

Dr. K. VANAJA
Supervising Teacher

Date: 20-12-2006

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of Dr. K. Vanaja, Reader, Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, Kochi - 682 022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any university.

Jayasree B

JAYASREE B.

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 682 002

Date :20-12-2006

प्राक्कथन

प्राक्कथन

गीतिनाट्य की गणना नाटकों के अन्तर्गत होती है । समकालीन साहित्यिक विधाओं में हिन्दी गीतिनाट्य का विशेष महत्व है । गीतिनाट्य कथाओं के माध्यम से युगीन समस्याओं को व्यक्त करता है । मिथकाश्रित कथाएँ इसकेलिए अनुयोज्य हैं । मानवजाति के सामूहिक अनुभवों का शब्दबद्ध रूप है मिथक । साहित्य के साथ मिथक का सुदृढ़ संबन्ध है । दोनों अन्योन्याश्रित हैं । मिथकों के माध्यम से हिन्दी गीतिनाट्यों में सामयिक समस्याओं को प्रस्तुत करके उन्हें सुलझाने का मार्ग बताया गया है । आधुनिक हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकों के प्रयोग का विस्तृत विवेचन करके उन्हें समाजोपयोगी सिद्ध करना ही इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है । इसके लिए सन् 1900 से लेकर अब तक के गीतिनाट्यों को लिया गया है । इस शोध प्रबन्ध का विषय है "आधुनिक हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकतत्व"। प्रस्तुत प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है ।

प्रथम अध्याय "हिन्दी गीतिनाट्य सिद्धान्त और परंपरा" है । इसमें हिन्दी गीतिनाट्य के उद्‌भव, विकास आदि को प्रस्तुत करते हुए समकालीन साहित्य में इसका स्थान निर्धारित किया गया है । हिन्दी गीतिनाट्यों पर अंग्रेज़ी गीतिनाट्यकारों के प्रभाव का संकेत करके अन्य भारतीय भाषाओं में रचित गीतिनाट्यों का उल्लेख किया गया है । हिन्दी गीतिनाट्यों के विकास क्रम को तीन कालों में विभक्त किया गया है

1 स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्य (1900 से 1947 तक)

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्य (1947 से 1965 तक)

3. समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य (1965 से अब तक) इन तीनों कालों में रचित गीतिनाट्यों का संक्षिप्त उल्लेख करके साबित किया गया कि हिन्दी में गीतिनाट्यों की रचना बड़े पैमाने पर हुई है ।

दूसरे अध्याय "मिथक और साहित्य" में मिथक की व्युत्पत्ति और मिथक के संबन्ध में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मतों का उल्लेख किया गया है । साहित्येतर विषयों से उसका संबन्ध अभिव्यक्तकर साहित्य के साथ उसके सुदृढ संबन्ध का विवरण दिया गया है और यह भी सिद्ध किया गया है कि हिन्दी साहित्य के सभी युग मिथकीय संवेदना से पूर्ण हैं । काव्य के अलावा उपन्यास, नाटक आदि अन्य विधाओं पर भी मिथक का प्रभाव दिखाकर हिन्दी के मिथकीय गीतिनाट्यों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है ।

तीसरा अध्याय ''स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकतत्व" (1900 से 1947 तक) है । इसमें सन् 1912 में प्रकाशित, जयशंकर प्रसादजी द्वारा खडीबोली में रचित प्रथम गीतिनाट्य 'करुणालय' से लेकर सन् 1947 में मैथिलिशरण गुप्त जी से विरचित 'दिवोदास' तक कुछ प्रमुख गीतिनाट्यों का विवेचन मिथक के आधार पर किया गया है । इनमें नर-नारी के विविध रूप दर्शाये गये हैं । इनके माध्यम से अहिंसा, मूल्यों की पुनःस्थापना, नारीमुक्ति आदि की प्रधानता बतायी गयी है । स्वतंत्रतापूर्व गीतिनाट्यों के द्वारा पौराणिक और ऐतिहासिक मिथकों का प्रश्रय लेकर समसामयिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है ।

चौथा अध्याय 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकतत्व" (1947 से 1965 तक) है । इसमें स्वातंत्र्योत्तर युग में रचित कुछ प्रमुख गीतिनाट्यों का विवेचन किया गया है । स्वातंत्र्योत्तर युग तक आते आते हिन्दी गीतिनाट्यों का क्षेत्र पहले से अधिक विकसित हुआ । दो विश्वयुद्धों के बाद का काल होने के कारण इस काल के अधिकांश गीतिनाट्यों में युद्ध मुख्य विषय है । कृष्ण, राम, सीता आदि मिथकों के द्वारा वर्तमान जीवन की जिन समस्याओं का उल्लेख किया गया है उनको सुलझाने की अनिवार्यता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया गया है । 'अंधायुग' 'एक कंठविषपायी' 'संशय की एक रात' आदि प्रमुख गीतिनाट्यों के विविध मिथकीय पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करके कई नूतन

समस्याओं का उद्‌घाटन किया गया और नवयुग के लोगों को किसी भी परिस्थिति में मानवमूल्यों को न छोड़ने की प्रेरणा दी गयी है ।

पाँचवाँ अध्याय है 'समकालीन हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकतत्व" (1965 से अब तक) । इसमें "उत्तर प्रियदर्शी' 'सूतपुत्र' 'अग्निलीक' आदि समकालीन हिन्दी गीतिनाट्यों के विविध पात्रों और घटनाओं का चित्रण किया गया और उनके रचयिताओं के नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये । इन गीतिनाट्यों में तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका से संत्रस्त आधुनिक मानव को चेतावनी दी गयी है और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा भी दी गयी है ।

उपसंहार में आलोच्यकाल के प्रमुख गीतिनाट्यों के पात्रों और घटनाओं के विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मिथकों के द्वारा सामाजिक जीवन को परेशान करनेवाली समस्याओं को प्रस्तुत करने में गीतिनाट्यकार सफल हुए हैं । इन्होंने नारी जीवन के कई पहलुओं को अभिव्यक्त कर नारी अस्मिता को पहचानना और आधुनिक मानवजीवन में मानवमूल्यों की पुनःस्थापना आदि की अनिवार्यता बतायी गयी । इन गीतिनाट्यों के द्वारा साबित हुआ कि साहित्यिक क्षेत्र में इस वैज्ञानिक और तकनीकी युग में भी मिथकों का महत्वपूर्ण स्थान है । संवेदनाओं की प्रभावात्मक अभिव्यक्ति के लिए यह सशक्त माध्यम है ।

सन् 1900 से अब तक प्रकाशित गीतिनाट्यों का अध्ययन करने की भरसक कोशिश की गई है । प्राप्त सभी सामग्रियों का इस्तेमाल किया गया है ।

अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची भी दी गई है ।

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर डॉ. के. वनजाजी के कुशल निर्देशन से यह प्रवंध तैयार किया गया है । उन्होंने मुझे समय समय पर प्रोत्साहन देकर आवश्यक सुझाव भी दिए । उनके प्रति मैं अतीव आदर और कृतज्ञता यहाँ प्रकट करती हूँ ।

विषय-विशेषज्ञ डॉ. आर. शशिधरन जी के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा डॉ. शमीम अलियार जी के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ ।

विभाग के कार्यालय के कर्मचारी, पुस्तकालय के कार्यकर्ता और अन्य सभी हितैषियों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

Jayasree. B
जयश्री. बी

हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोच्चि 682 022

तारीख २० दिसम्बर 2006

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-30

हिन्दी गीतिनाट्यः- सिद्धान्त और परंपरा

नाम संबन्धी धारणाएँ हिन्दी गीतिनाट्य का स्वरूप-गीतिनाट्य की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ-गीतिनाट्य पर अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव-गीतिनाट्यों का वर्गीकरण-गीतिनाट्य सिद्धान्त या तत्व नाटक के तत्व-गीततत्व-गीतिनाट्य का अन्य नाट्यरूपों से साम्य-वैषम्य-हिन्दी गीतिनाट्यः उद्‌भव एवं विकास-हिन्दीतर गीतिनाट्य हिन्दी में गीतिनाट्य-स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्य-स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्य-समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य।

दूसरा अध्याय 31-70

मिथक और साहित्य

मिथक का स्वरूप-मिथक शब्द की व्युत्पत्ति और उसका अर्थ-मिथक से संबन्धित परिभाषाएँ-भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ-मिथक की उत्पत्ति-मिथक के भेद साहित्येतर विषयों से मिथक का संबन्ध-मिथक और दर्शनशास्त्र-मिथक और भाषा विज्ञान-मिथक और नृविज्ञान-मिथक और इतिहास-साहित्य में मिथक-हिन्दी साहित्य में मिथक-आधुनिक हिन्दी काव्य में मिथक-समीक्षा में मिथक-उपन्यासों में मिथक-हिन्दी नाटकों में मिथक-गीतिनाट्यों में मिथक ।

पृष्ठ संख्या

तीसरा अध्याय 71-121

स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथक तत्व
(1900 से 1947 तक)

करुणालय कृष्णा अनघ पंचवटी प्रसंग स्वर्णविहान तारा मत्स्यगन्धा विश्वामित्र राधा उन्मुक्त स्नेह या स्वर्ग दिवोदास ।

चौथा अध्याय 122-198

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथक तत्व
(1947 से 1965 तक)

कर्ण-द्रौपदी- पाषाणी-अन्धायुग अशोक वन बन्दिनी गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण अश्वत्थामा हिमालय का संदेश सूखा सरोवर नहुष निपात उर्वशी संशय को एक रात एक कंठविषपायी ।

पाँचवाँ अध्याय 199-241

समकालीन हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथक तत्व
(1965 से लेकर अब तक)

उत्तरप्रियदर्शी सूतपुत्र अग्निलीक प्रवादपर्व काठमहल खण्ड खण्ड अग्नि ।

उपसंहार 242-254

संदर्भ ग्रन्थ-सूची 255-269

पहला अध्याय

हिन्दी गीतिनाट्य - सिद्धान्त और परंपरा

हिन्दी गीतिनाट्य - सिद्धान्त और परंपरा

'नाटक' शब्द 'नट्' धातु से उत्पन्न हुआ है । 'नट्' का अर्थ है नृत्य, नाट्य आदि । नृत्य, संगीत और काव्य से नाटक का जन्म हुआ । नाटक एक सामूहिक कला है । मानवजीवन का यथार्थ चित्रण ही है नाटक । गीतिनाट्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है । दृश्यकाव्य नाटक के अन्तर्गत ही इसकी गणना की जाती है । समकालीन साहित्यिक विधाओं में हिन्दी गीतिनाट्यों का विशेष महत्व है । "काव्य और नाटक के अद्‌भुत समन्वय के कारण ही इनकी गणना कहीं काव्यों में की गई है तो कहीं नाटकों में । "[1] "गीतिनाट्य विश्वव्यापी प्रतिक्रिया का परिणाम है ।"[2] समीक्षकों ने इसकी खूब चर्चा की । लेकिन, इससे संबन्धित स्पष्ट दृष्टिकोण वे नहीं दे पाए । गीतिनाट्य के अद्यतन विकास से संबन्धित कोई भी पुस्तक अभी तक हिन्दी में नहीं निकली है । यह तो हिन्दी नाट्य साहित्य की सशक्त और नवीन विधा है जिसके प्राथमिक सूत्र गीतात्मक या काव्यात्मक पद्यबद्ध नाटकों में मिलते हैं । नये नये मूल्यों की स्थापना के लिए एक सशक्त माध्यम है गीतिनाट्य जिसके लिए इस विधा ने पौराणिक, ऐतिहासिक या काल्पनिक पात्रों का सहारा लिया और उन पात्रों के द्वारा नवीन मूल्यों की खोज की । अब तक लिखे गए गीतिनाट्यों की संख्या यद्यपि बहुत कम है तो भी लिखित गीतिनाट्यों का खास स्थान है । पौराणिक या ऐतिहासिक संदर्भों का आधार लेकर लिखित गीतिनाट्य समसामयिक समस्याओं की अभिव्यक्ति करते हैं । अतः इन्हें अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त हुई ।

नाम संबन्धी धारणाएँ

हिन्दी में 'गीतिनाट्य' अभिधान के संबन्ध में कवियों और समीक्षकों के बीच भिन्न भिन्न धारणाएँ हैं । नाम का हमेशा निजी महत्व होता है । नाम ही साहित्यिक विधाओं में चेतना और स्वरूप निर्धारण करता है । अतः नाम के औचित्य पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है ।

---

1 गीतिनाट्य शिल्प और विवेचन डॉ. शिवशंकर कटारे पृ.सं. 5

2. वही ।

कुछ आलोचक इसे पद्यनाटक, कुछ गीतिनाट्य, कुछ भावनाट्य और कुछ अन्य नाम देकर पुकारते हैं । कुछ लोग गीतिनाट्य और भावनाट्य को दो विभिन्न शैलियाँ मानते हैं । लेकिन वे उन दोनों का अन्तर पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं कर पाते । "इन दोनों की आत्मा एक ही है अर्थात् ये गीतिप्राण हैं, इनमें घटना की मांसलता नहीं है, भावना की सरलता है परन्तु माध्यम भिन्न है।"[1] "गीतिनाट्य सर्वथा कविताबद्ध है, भावनाट्यों का माध्यम गद्य होता है ।"[2] नगेन्द्रजी की राय में भावनाट्य का मुख्य रस श्रृंगार और प्रधान पात्र नारी होता है । आचार्य विनयमोहन शर्मा भी नगेन्द्र का समर्थन करते हुए कहते हैं "गीतिनाट्य में गीतात्मकता के अतिरिक्त एक गुण चाहिए, वह है नारी का बाहुल्य। साथ ही उसकी नायिका नारी होती है और उसका रस होता है रसराज श्रृंगार । रचनातंत्र की दृष्टि से यही भावनाट्य कहलाता है ।"[3] इसतरह गीतिनाट्य ही भावनाट्य हो जाता है ।

अनेक विद्वान गीतिनाट्य को ही भावनाट्य मानते हैं । "उनका तर्क है कि गीतिनाट्य में बाह्यक्रियाकलापों का उतना वर्णन नहीं होता जितना कि भावों का । इसकी शैली नाटकों की अपेक्षा अधिक भावनात्मकता लिये हुए होती है । इसी भावशबलता के कारण इन्हें भावनाट्य की संज्ञा दी गई है।"[4] इस कारण से उदयशंकर भट्ट अपने नाटक 'राधा' को भावनाट्य कहते हैं जबकि डॉ. नगेन्द्र जैसे आलोचक गीतिनाट्य कहकर उसकी समीक्षा करते हैं । भट्टजी अपने 'विश्वामित्र' नाटक को गीतिनाट्य कहते हैं जबकि डॉ. रामचरणमहेन्द्र अपने प्रबन्ध में उसकी चर्चा भावनाट्य कहकर करते हैं ।

सिद्धनाथ कुमार के अनुसार "ये दोनों नाम उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि भावमयता किसी भी साहित्यिक कृति की सामान्य विशेषता है नाटक में यह तो अधिक है । अतः भावनाट्य नाम

---

1 आधुनिक हिन्दी नाटक डॉ. नगेन्द्र पृ.सं. 117

2. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य सहचर पृ.सं. 123

3 हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार डॉ. रामचरण महेन्द्र पृ. 78

4 काव्यरूपों का मूल स्रोत और उनका विकास-शकुन्तला दुबे पृ. सं. 535

से साहित्य विधा की विशिष्टता का संकेत नहीं मिलता ।"[1] 'हिन्दी साहित्य कोश' में गीतिनाट्य के टिप्पणीकार ने लिखा है- "इसमें सारी कथा गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है।"[2] लेकिन सिद्धनाथ कुमार इसे नहीं मानते । उदाहरणसहित वे इसका खण्डन करते हैं । वे कहते हैं कि "'अंधायुग" "एक कंठ विषपायी" जैसी रचनाओं में सारी कथा की प्रस्तुति गीतों के माध्यम से नहीं । इनमें गीतात्मकता से अधिक महत्व संवादात्मकता का है । इसलिए ऐसी रचनाओं को गीतिनाट्य मानना अनुचित है । "हमारे साहित्य के तथाकथित गीतिनाट्यों में गीतितत्व की प्रधानता नहीं है । गीतितत्व और नाटकीय तत्व दो अलग अलग चीज़ें हैं दोनों की चेतना अलग अलग होती है । गीतितत्व के अन्तर्गत तीव्र भावावेग, आत्मनिष्ठता, स्वपरता, वैयक्तिकता आदि को अनिवार्य माना जाता है"[3] "जबकि नाटकीयता के लिए रचनाकार की वस्तुनिष्ठता, बौद्धिक अनुशासन, जिज्ञासावर्द्धक वस्तुविन्यास, संघर्ष आदि की अपेक्षा होती है ।"[4]

काव्यत्व और छन्दोबद्धता से समन्वित स्वरूप की वजह से सिद्धनाथकुमार इसे पद्यनाटक मानते हैं । कुछ विद्वान काव्य को पद्य का पर्याय मानकर कहते हैं "जिसप्रकार कविता में लिखित कहानी काव्य-कहानी नहीं कहलाती और न कविता में लिखा उपन्यास काव्य-उपन्यास कहलाता है, उसीप्रकार कविता में लिखा नाटक काव्यनाटक नहीं कहला सकता ।"[5] उनकी राय में पद्य में लिखित नाटक पद्यनाटक ही है । काव्यनाटक नहीं ।

पद्यनाटक और पद्यरूपक अभिधानों में मात्र रूपक और नाटक शब्द का भेद है । आजकल ये एक दूसरे के पूरक हैं । पद्य में बहिरंग की प्रधानता है; अंतरंग की ओर विशेष ध्यान नहीं देता । आन्तरिक या मानसिक द्वन्द्व ही नाटकों के प्राण हैं । इनमें गण; मात्रा युक्त पद्य के बदले मुक्त छन्द ही अधिक उपयोगी है जिसके माध्यम से विचारों का प्रस्तुतीकरण सुन्दर ढंग से होता है । इसलिए पद्यरूपक या पद्यनाटक नाम इस विधा के लिए अनुपयोगी है ।

---

1 'हिन्दी पद्यनाटक सिद्धान्त और इतिहास'-सिद्धनाथ कुमार पृ. सं. 10
2. डॉ. धीरेन्द्रवर्मा-हिन्दी साहित्यकोश भाग -1 पृ. सं. 294
3 हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 'गीतिकाव्य' पर टिप्पणी
4. हिन्दी एकांकी की शिल्पविधि का विकास डॉ. सिद्धनाथ कुमार पृ. 34-43
5 नयी कविता के नाट्यकाव्य डॉ. हरिश्चंद्रवर्मा प सं 56

काव्यत्व और नाट्यत्व से समन्वित स्वरूप के कारण कुछ आलोचक इसे 'काव्यनाटक' कहते हैं । 'काव्यनाटक' संज्ञा सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वान इलियट ने दी है । काव्यनाटक या काव्यरूपक अभिधानों में भी सिर्फ रूपक और नाटक शब्द का भेद है । लेकिन भारतीय वाङ्मय में 'काव्य' शब्द का प्रयोग बहुत अर्थों में हुआ है ; अर्थात् इसके अन्तर्गत दृश्य, श्राव्य, गद्य एवं पद्य की भावव्यंजक सभी रचनाएँ आ जाती हैं । काव्य की इस अतिव्यापकता के कारण इस विधा को 'काव्यनाटक' कहना अनुचित है ।

डॉ. सुरेश गुप्त ने इस विधा को 'काव्य रूपक' नाम दिया । अभिनवगुप्त के अनुसार "काव्य, गीति-नृत्य प्रधान उपरूपक होता है । इसमें आदि से अंत तक एक पात्र द्वारा एक कथा का श्रृंखलाबद्ध ग्रन्थन होता है । 'काव्य' का गायन एक ही राग में होता है और लय एवं ताल भी अपरिवर्तित रहते हैं ।"[1] "फलतः रस भी प्रायः एक ही रहता है । यह राग काव्य कहलाता है।"[2] इसका मुख्य रस हास्य रस है । आधुनिक गीतिनाट्य काव्य उपरूपक से भिन्न है । इनमें न तो एक ही लय एवं ताल होती है और न एक रस ही होता है । इनका मुख्य रस हास्य रस भी नहीं है । इन सब कारणों से इस विधा का 'काव्यरूपक' नाम अनुचित है ।

कुछ आलोचक इसे नाट्यकाव्य या नाटकीय कविता कहकर पुकारते हैं । नाटकीय पद्धति से लिखने के कारण मात्र यह नाट्यकाव्य नहीं बनता । डॉ. हरिश्चन्द्रवर्मा और डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने इस विधा के लिए 'नाट्यकाव्य' अभिधान स्वीकार किया है । 'नाट्यकाव्य' में तनाव, द्वन्द्व, आकस्मिकता, कुतूहल जैसे तत्व विद्यमान हैं; लेकिन ये सिर्फ श्रोता या पाठक को रसानुभूति प्रदान करते हैं । रंगमंच पर अभिनीत होने के लिए यह योग्य नहीं है । इस विधा का रंगमंच, अभिनेता और दर्शक से कोई संबन्ध नहीं है । इसलिए गीतिनाट्य को नाट्यकाव्य या नाटकीय कविता कहना अनुचित है ।

---

1 नाट्यदर्पण संपादक डॉ. नगेन्द्र पृ. सं. 408

2. भरत और भारतीय नाट्यकाल सुरेन्द्रनाथ दीक्षित पृ. सं.151-52

कुछ लेखक इसे 'काव्य एकांकी' कहते हैं । यहाँ एकांकी शब्द का प्रयोग अनुचित है; क्योंकि वर्तमान गीतिनाट्य एकांकी ही नहीं अनेकांकी भी है । उदाः 'अंधायुग' 'एक कंठविषपायी' आदि ।

अंग्रेज़ी में इस विधा के लिए 'पोएटिक ड्रामा' 'वर्स ड्रामा' 'ड्रामेटिक पोएट्री' आदि नामों का व्यवहार किया जाता है । लेकिन इन नामों से काव्यत्वप्रधान छन्दोबद्ध नाटक का बोध नहीं होता । 'पोएटिक ड्रामा' नाम में काव्यत्व का बोध है, पर छन्दोबद्धता का बोध नहीं, 'वर्स ड्रामा' में छन्दोबद्धता है पर काव्यत्व नहीं ।

यह विधा काव्य और नाटक की संधि से उत्पन्न विधा नहीं है । "यह न तो ऐसा नाटक है, जिसका माध्यम कविता होती है और न ऐसी काव्यकृति है, जिसकी शिल्प-विधि नाटकीय होती है । वह तो एक ऐसा रूप है जिसमें गीतितत्व, नाट्यतत्व और संगीततत्व एकाकार हो जाते हैं, अतः इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता।"[1]

निर्मला जैन "'भावनाट्य' नाम को स्वीकार नहीं करती । उनका मत है, भावमयता का भाव 'गीति' शब्द में और भावान्विति एवं दृश्यात्मकता का भाव 'नाट्य' शब्द में अन्तर्भूत है।"[2]

इसलिए वे 'गीतिनाट्य' नाम को उचित मानती हैं । भावों की अभिव्यंजना गद्य और पद्य दोनों में होती है । अतः 'गीति' में लिखे गए नाटकों को मात्र 'भावनाट्य' कहना अनुचित है । गीतिनाट्य के लिए भावप्रवणता अनिवार्य भी है ।

संक्षिप्त रूप में कहें तो उपर्युक्त सभी रूपों में खास अन्तर है । फिर भी इनमें अनेक समानताएँ भी हैं । उपर्युक्त सभी विधाएँ अपना अलग अलग अस्तित्व रखती हैं । लेकिन इनमें 'गीतिनाट्य' नाम का अपना महत्व है । 'गीति' शब्द में ही भावमयता, रसात्मकता, काव्यत्व छन्दोबद्धता आदि सभी गुण विद्यमान हैं । गीतिकाव्य में आत्माभिव्यंजना, संगीतात्मकता,

---

1 'पाषाणी' जानकी वल्लभ शास्त्री पृ. सं. 7

2. निर्मला जैनः आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप-विधाएँ पृ. 360- 61

अनुभूति की पूर्णता और भावों का योग एकसाथ परिलक्षित होता है । इन्हीं विशेषताओं और अनुभूति के तीव्र क्षणों का प्रस्तुतीकरण गीतिनाट्य का विषय है ।"[1] इन सब विशेषताओं के कारण गीतिनाट्य नामकरण ही इस विधा के लिए सर्वथा अनुकूल माना जाता है ।

हिन्दी गीतिनाट्य का स्वरूप

गीतिनाट्य क्या है ? इसके संबन्ध में विचार करने के पहले 'गीति' और गीत' शब्दों के अन्तर को समझना परम आवश्यक है । 'गीति' शब्द अंग्रेज़ी के 'सोंग' (Song) शब्द का पर्यायवाची शब्द है । 'गीति' का प्रयोग 'लिरिक' (Lyric) के अर्थ में होता है । गीति अंगी है, गीत उसका अंग है । "गीति में वैयक्तिक और आनन्दकारी भावों का समावेश होता है, जिसके कारण उसमें प्राणों का स्पन्दन होता है ।"[2]

साधारणत: पद्यबद्ध नाटकों को गीतिनाट्य कहते हैं । लेकिन इसका माध्यम गद्य न होकर केवल पद्य हो यह आवश्यक नहीं । जिस विधा में गीतिकाव्य की समस्त विशेषताओं के साथ नाटक शिल्प की समस्त विशेषताएँ और संगीत का समान योग होता है उस विधा को हम गीतिनाट्य कहते हैं । इसलिए इसे मिश्रविधा कहा जाता है । गीतिनाट्य में गीततत्व बहुत अनिवार्य है । बिना गीततत्व के गीतिनाट्य गीतिनाट्य नहीं । गीततत्व और नाट्यत्व का समन्वित रूप है गीतिनाट्य । गीततत्व इसका काव्यात्मक पक्ष है और नाट्यत्व इसका अभिनेय या नाटकीय पक्ष है । गीतिनाट्यों में काव्यात्मकता और नाटकीयता इन दोनों का समन्वय आनुपातिक रूप में होना चाहिए । प्रतिभा संपन्न रचयिता ही गीतिनाट्य की रचना कर सकते हैं और इसका आस्वादन करनेवाले दर्शकों का काव्यमर्मज्ञ और काव्यरसिक होना भी आवश्यक है ।

साधारण दृश्यकाव्य और नाट्यकविता से गीतिनाट्य का स्वरूप भिन्न है । "काव्यनाटक काव्यत्व और रूपकत्व का संगम स्थल है । काव्यतत्व और नाटकतत्व इसमें आकर एक ऐसे स्वरूप विधान की सृष्टि कर देते हैं जिसमें काव्यत्व के कारण मानवजीवन का रागतत्व बड़ी

---

1 गीतिनाट्य शिल्प और विवेचन डॉ. शिवशंकर कटारे पृ. 16

2. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रटेनिका जिल्द-12, पृ. 181

स्पष्टता से उभरकर आता है, भावनाएँ और अनुभूतियाँ अपनी तीव्र और वेगवती धारा में हमें अपने साथ बहा ले जाती हैं । नाटकतत्व उसका बाह्यस्वरूप निर्मित करता है, काव्यत्व इसमें आत्मा की स्थापना करता है । नाटकतत्व कथानक का निर्माण करता है, घटनाएँ देता है । संघर्ष देता है, पात्रों की सृष्टि करता है और काव्यतत्व इसमें अनुभूतियों का दान देता है ।"[1]

"काव्यनाटक न पाठ्य नाटक है, न अतुकांत पद्य में बद्ध वेषप्रधान नाटक और न एलिज़ाबेथ युगीन नाटकों का अन्धानुकरण है ।"[2] ब्रैंडर मैथ्यूज़ कहते हैं कि काव्यनाटक चाहे गद्य में हो या पद्य में हमेशा अपने काल के रंगमंच की ज़रूरतों की पूर्ति करने के लिए लिखते हैं । लेकिन अकाव्यात्मक और साधारण विषयवस्तु इसके लिए उपयुक्त नहीं । विषयवस्तु का अलौकिक, अद्‌भुत या असाधारण होना भी आवश्यक नहीं । परिचितघटना या पुरानी परिचित कथा इसके लिए उपयोगी है । टी.एस. इलियट और जोन हैसेले कहते हैं कि गीतिनाट्य में काव्य का प्रयोग आर्नामेंट की तरह नहीं; नाटकीय दृष्टि से करना चाहिए । ऐसे नहीं तो दर्शक या पाठक उसके काव्य सौन्दर्य से आनन्दित होकर उसमें डूब जाते हैं । "If poetry is merely a decoration, an added embellishment, if it merely gives people of literary tastes the pleasure of listening to poetry at the same time that they are witnessing a play, then it is super fluous" [3] अतः इलियट ने अपने नाटकों में बोलचाल की भाषा को अपनाया । "हिन्दी का वह नाटक जो कविताओं और संवादों के द्वारा या काव्यात्मक संवादों के माध्यम से रचा गया, वही हिन्दी में गीतिनाट्य की प्रेरणाभूमि बना।"[4]

गीतिनाट्य के कथानक का भावप्रधान और अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण होना आवश्यक है । आन्तरिक संघर्ष गीतिनाट्य का प्राणतत्व है । गीतिनाट्य का कथानक नाटक के समान ही कथोपकथनात्मक शैली में आगे बढ़ता है । यह तो इसका शिल्प से संबन्धित लक्षण है । गीतिनाट्य की कथावस्तु चाहे ऐतिहासिक हो था पौराणिक भावमयता इसका अनिवार्य गुण है । भावात्मक कथावस्तु से दर्शक की हृदयगत भावनाओं का उद्धेलन होता है । गीतिनाट्य हृदय

---

1 डॉ. सिद्धनाथ कुमार सृष्टि की सांझ और अन्य काव्यनाटक भूमिका से अवतरित पृ. 314
2. ब्रैंडर मैथ्यूज़ 'नाटक साहित्य का अध्ययन' पृ. 148
3 T.S. Eliot Selected prose P. 63
4 हिन्दी गीतिनाट्य डॉ. रेखा श्रीवास्तव पृ. 7

के कोमल भावों की सशक्त अभिव्यक्ति पद्य के द्वारा करता है । इसकेलिए गद्य की अपेक्षा पद्य ही सशक्त माध्यम है । टी.एस इलियट की राय में, "अपने विचारों का स्थायी प्रभाव डालना है तो हमें अपनी बात कविता में ही कहनी चाहिए ।"[1] कोमलभावों के चित्रण से लोग प्रभावित होकर चमत्कार जन्य आनन्द या अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति उन्हें प्राप्त होती है ।

गीतिनाट्य के ज्ञानात्मक पक्ष से मस्तिष्क की और भावात्मक पक्षसे हृदय की तुष्टि होती है । गीतिनाट्य में क्रियाकलापों या घटनाओं की प्रमुखता नहीं होती । गीतिनाट्य भावना प्रधान है । भावनाप्रधान होने के कारण बाह्यपरिस्थितियों के संघर्ष की अपेक्षा आन्तरिक संघर्षों को, अनुभूतियों को तीव्रतर बनाने के लिए गीतिनाट्य का प्रयोग किया जाता है; काव्य सौन्दर्य के प्रदर्शन के लिए नहीं ।

"गीतिनाट्यकार आन्तरिक संघर्ष द्वारा भावात्मक सत्यों को प्रतिभासित करता है, फलस्वरूप गीतिनाट्य सीधे मानवजीवन की गहराइयों तक पहूँचने का प्रयत्न करता है ।"[2]

मानव के रागात्मक भावों और मानसिक व्यापारों से प्रकृति का निकट संबन्ध है । गीतिनाट्य ने पात्रगत भावों में तीव्रता लाने के लिए सुन्दर प्रकृति को अपनाया है । पद्य में लिखने मात्र से यह दर्शकों को प्रभावित नहीं करता । इसकेलिए पद्य की भाषा बोलचाल की भाषा से दूर रहनी चाहिए । उसके लिए भावमयता अनिवार्य है ।

गीतिनाट्य में काव्य और नाटक नमक और पानी की तरह घुलमिलकर सौंदर्य सृष्टि करते हैं । यदि इन दोनों को एक दूसरे से पृथक करें तो सारा सौन्दर्य नष्ट हो जाएगा । "गीतिकार की अनुभूति अन्तर्मुखी, आत्मकेन्द्रित, वैयक्तिक तथा भावात्मक होती है, जबकि नाटककार की बहिर्मुखी, वस्तुनिष्ठ और सामाजिक होती है । गीतीनाट्य उक्त दोनों विरोधी

---

1 टी.एस. इलियट-सेलक्टड एस्सेयस, पृ. 46

2. चतुर्वेदी वी.एन.-पोएटिक ड्रामा ऑफ ट्वन्टीयत सेन्चुरी पृ. 281

बातों का सम्मिश्रण होता है ।"[1] आत्माभिव्यंजना और संगीतात्मकता से अनुप्राणित है गीतिनाट्य । गीतिनाट्य जितना ही अभिनेय है उतना ही वह सफल माना जाएगा ।

वर्तमान जीवन से अलग होकर रचनेवाला साहित्य साहित्य नहीं होता केवल वाग्विलास मात्र रहता है । वर्तमान जीवन ही साहित्य का प्राण है । पौराणिक, ऐतिहासिक और धार्मिक कथाओं के माध्यम से समसामयिक समस्याओं का उल्लेख प्रतीकों द्वारा रचनाकार करते हैं । अतः मिथकों का प्रयोग दिन ब दिन बढता जा रहा है ।

गीति और संगीत के माध्यम से कवि की कल्पना एवं अनुभूतियाँ जन सामान्य की अनुभूतियाँ हो जाती हैं । कभी कभी नाटककार दर्शकों को करुणा एवं संवेदना से भर देता है । ऐसे ही गीतिनाट्य अधिक सफल होते हैं । गीति और संगीत के मणिकांचन योग से गीतिनाट्य का भवन तैयार होता है ।"[2] श्रीकृष्ण सिंघल गीतिनाट्य की महत्ता के बारे में इसप्रकार बताते हैं "घनीभूत मनोवृत्तियों के प्रकाशन के लिए कविता का संबन्ध अनिवार्य रूप से बिम्ब की सर्जना से जुड़ा हुआ है । ऐसी स्थिति में नाटक यह नवीन विधा होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण और लोकप्रिय है ।"[3] कवि अथवा नाटककार गीतिनाट्य का प्रणयन ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि पर करता है । इस कारण से इसमें साधारण जन विशेष रुचि रखते हैं । "गीतिनाट्यों में किसी ने भारतीय संस्कृति की झलक दिखाने, किसी ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर और किसी ने नैतिकता के स्वीकृत सिद्धान्तों पर आघात करने के लिए अपने कथानकों का निर्माण किया है ।"[4]

यथार्थ और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य इसकी खास विशेषता है । गीतिनाट्य में कविता नाट्यतत्व से नियमित रहती है । रंगमंच से संबद्ध रहने के कारण गीतिनाट्य में नाट्यतत्व प्रमुख है । आन्तरिक संघर्ष का और सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण करने के लिए, उसी

---

1 गीतिनाट्य शिल्प और विवेचन डॉ. शिवशंकर कटारे पृ. 35
2. हिन्दी गीतिनाट्य (पंत के विशेष संदर्भ में) डॉ. रेखा श्रीवास्तव पृ. 25
3 हिन्दी गीतिनाट्य कृष्ण सिंघल पृ. 17
4. हिन्दी गीतिनाट्य (पंत के विशेष संदर्भ में) डॉ. रेखा श्रीवास्तव पृ. 26

को मूर्तता प्रदान करने के लिए बिम्बों की योजना करनी पड़ती है । जीवन के अनुभवों, सत्यों और संवेदनाओं से संबद्ध या प्रसूत बिम्ब ही गीतिनाट्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है । इनकी विषयवस्तु एवं पात्र प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यंजित होते हैं । पौराणिक या ऐतिहासिक कथाओं को नवीनता की दृष्टि से आधुनिक संदर्भ दे देना गीतिनाट्य का कार्य है । गीतिनाट्य उक्त कथाओं के माध्यम से वर्तमान जीवन की समस्याओं को उजागर करता है । गीतिनाट्यों में मनुष्य का अन्तर्जीवन और बहिर्जीवन एक साथ ही परिलक्षित होता है । इसमें छन्दोबद्ध, लयपूर्ण एवं अलंकृत भाषा का व्यवहार किया जाता है । "अन्तर्जीवन संघर्ष के अन्तरगत घटनाओं और परिस्थितियों के संघर्ष होते हैं और बहिर्जीवन के अन्तरगत घटनाओं और परिस्थितियों के संघर्ष होते हैं । "[1] अधिकांश गीतिनाट्य नारी के आन्तरिक द्वन्द्व से संबन्धित हैं । इन सभी में नारी अत्यन्त सजग होकर कथा का संचालन करती है ।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि गीतिनाट्य की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, महत्ता है और अलग व्यक्तित्व है । इसकी उत्कृष्ट विशेषताओं के कारण यह अत्यन्त लोकप्रिय बन पड़ा है । व्यक्ति और समाज की समस्याएँ गद्यनाटक से स्पष्ट नहीं होतीं; क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं । लेकिन गीतिनाट्य इन सूक्ष्म समस्याओं, अन्तर्द्वन्द्वों और गूढ मानवीय संवेगों को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है ।

गीतिनाट्य की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ

रामचरण महेन्द्र ने लिखा है "गीतिनाट्य पात्रों के मन के उद्वेगों और उच्छ्वासों की कवित्वपूर्ण नाटकीय अभिव्यक्ति है जिसमें संगीत की प्रधानता रहती है । गीतिनाट्य का प्राण काव्यसौष्ठव, नाटकीयता और गेयतत्व है ।"[2]

---

1 हिन्दी पद्यनाटक सिद्धान्त और इतिहास-सिद्धनाथ कुमार: पृ. 33

2. हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास-रामचरण महेन्द्र पृ. 363

डॉ. नगेन्द्र ने कहा है, 'गीतिनाट्य रूपक का ही भेद है जिस का प्राणतत्व है भावना अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता ।"[1]

शकुंतला दुबे गीतिनाट्य की परिभाषा इसप्रकार देती है, "गीतिनाट्य ऐसा काव्यरूप है जिसकी मूलभावना या शैली आत्माभिव्यंजक होती है और नाटकीय कथोपकथन के आधार पर पात्रों की भावाभिव्यंजना एवं कथासूत्र को आगे बढ़ाया जाता है।"[2]

उदयशंकर भट्ट ने कविताबद्ध नाटकों को इतिहास में गीतिनाट्य की संज्ञा दी है । इन नाटकों में मानव के हृदय में संचारी भाव का अभिव्यक्तीकरण होता है । क्रिया इन में है पर सामान्य नाटकों की भाँति नहीं । इनमें क्रिया मानसिक है । इसी से भावों का उत्थान-पतन होता है । जहाँ गीति-पद्य में स्वरस भावों का संचालन होता है उसे गीतिनाट्य कहते हैं "[3]

वेदपाल खन्ना की राय में "साधारण रूप में गीतिनाट्य से उस नाटक का अभिप्राय है, जो पूरा पद्य में लिखा जाता है; किन्तु गीतिनाट्य के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं कि उसका माध्यम गद्य न होकर पद्य हो । गीतिनाट्य के लिए पद्य की अनिवार्यता के साथ साथ भावप्रचुरता भी आवश्यक है । भावप्रधानता के कारण इसमें स्वभावतः कार्य एवं बाह्य संघर्ष इतना अधिक नहीं होता । कार्य की अपेक्षा इस नाटक में भावों का महत्व अधिक होता है । इसमें जो द्वन्द्व मिलता है, वह अन्तर्द्वन्द्व है अर्थात् एक ही पात्र के मन की विविध भावनाओं के बीच संघर्ष।"[4]

निर्मला जैन गीतिनाट्य की परिभाषा इसप्रकार देती है, "कुछ ऐसी विधाओं का सृजन भी इस युग के काव्य में हुआ, जिनमें इन उभय शैलियों (नाट्य और गीतिशैलियों) का प्रभाव नहीं, योग परिलक्षित होता है । इनके साथ वर्तमान वैज्ञानिक युग की चिर प्रगतिशील बौद्धिक प्रवृत्तियों ने भी इन विधाओं को प्रभावित किया है अतः ऐसी रचनाओं का एक समुदाय

---

1 आधुनिक हिन्दी नाटक डॉ. नगेन्द्र

2. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास शकुन्तलादुबे पृ. 38

3. उदयशंकर भट्ट विश्वामित्र और दो भावनाट्य स्पष्टीकरण पृ. क

4 वेदपालखन्ना हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन पृ. 277

आधुनिकाल में उपलब्ध है, जिन्हें गीतिनाट्य, पद्यनाट्य तथा काव्यरूपक आदि नामों से पुकारा जाता है । गीतिनाट्य शब्द उन सभी नाट्यविधाओं के लिए प्रयोग में प्रचलित हो गया है, जिनका माध्यम पद्य और विधि नाटकीय है।"[1]

जे. आइज़ेक ने कहा है कि

"गीतिनाट्य की पृष्ठभूमि छन्दोमय होती है, साथ ही यह कल्पना में विचरण करती है ।"[2]

अंग्रेज़ी साहित्य कोश में इस विधा के संदर्भ में लिखा है "पद्य में रचित नाटक को 'पोयटिक ड्रामा' कहते हैं । ऐसे नाटकों के कथानक संक्षिप्त होते हैं और चरित्र संख्या सीमित । चरित्रों अथवा पात्रों के बीच प्रकाश पुंज की तरह एक नायक होता है जिसके जीवन के भावात्मक पक्ष ही नाटक की काव्यात्मकता के आधार बनते हैं।"[3]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं को ध्यान में रखकर हम इस निष्कर्ष पर पहूँचते हैं कि "गीतिनाट्य वह मिश्रविधा है, जो अनिवार्यतः पद्यबद्ध होती है और जिसमें गीतिकाव्य की आत्माभिव्यंजना, भावप्रवणता, गीतात्मकता, मानसिक संवेदना, अन्तर्द्वन्द्व और कवि की रसात्मक अनुभूति के साथ नाटकीय दृश्य विधान, अभिनेयत्व, रंग निर्देश और कथोपकथनात्मक शैली में मानसिक व्यापार का मणिकांचन संयोग होता है । भावाभिव्यंजना, संघर्ष,गेयत्व और वृत्तगंधी कथोपकथन उसकी अपनी विशेषताएँ हैं ।"[4]

गीतिनाट्य पर अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव

"अंग्रेज़ी गीतिनाट्यों की भावशबलता ने हिन्दी गीतिनाट्य को प्रभावित किया है । हिन्दी गीतिनाट्यों की प्रमुख विशेषता गीतितत्व बन गया है जिससे उनमें कथा के स्थान पर

---

1 निर्मला जैनः आधुनिक हिन्दी काव्य की रूपविधाएँ पृ. 605
2. The vehicle of poetic drama is verse, its mechanism is imagery-J.Isaac An Assessment of literature XX cent 157
3 दामोदर अग्रवाल अंग्रेज़ी साहित्य कोष पृ. 314
4 शिवशंकर कटारे गीतिनाट्य शिल्प और विवेचन पृ. 31

भावशबलता को प्राथमिकता दी जाने लगी है । मानसिक संघर्ष की प्रमुखता भी इन्हें अंग्रेज़ी नाटकों से प्रभावित सिद्ध करती है ।"[1] भावात्मक दृष्टि से ये नाटक शेली, ब्राऊनिंग और स्विनबर्न आदि के नाटकों के अनुकूल दिखाई पड़ते हैं । अंग्रेज़ी गीतिनाट्यकार शेक्सपियर, मिल्टन, वर्डस्वर्थ, कीट्स आदि कवियों की अतुकान्त कविताओं का प्रभाव गीतिनाट्यों पर दृष्टिगोचर होता है ।

गीतिनाट्यों का वर्गीकरण

गीतिनाट्यों का वर्गीकरण विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है । गिरीश रस्तोगी ने इन्हें चार वर्गों में बाँटा है "(1) पाठ्य (2) गीततत्व प्रधान (3)श्रव्य और (4) दृश्य"[2] निर्मला जैन ने 'काव्यरूपक' के अन्तर्गत गीतिनाट्य को उसका एक अंग माना है।"[3]

डॉ. शिवशंकर कटारे ने गीतिनाट्यों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया है ।

1. विषय के आधार पर-इसके अन्तर्गत पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, समस्या प्रधान, चरित्रप्रधान, धार्मिक और तथ्यप्रधान गीतिनाट्य आते हैं ।

2. रचना पद्धति के आधार पर इसके आधार पर एकांकी, अनेकांकी, भूमिका और उपसंहार युक्त, प्रवक्तायुक्त और एकपात्रीय गीतिनाट्य इसके भेद हैं ।

3. शिल्प के आधार पर ध्वनि गीतिनाट्य या रेडियो गीतिनाट्य रंगमंचीय, भावप्रधान, संगीतप्रधान, काव्यप्रधान, चिन्तनप्रधान और पाठ्य गीतिनाट्य इसके अन्तर्गत आते हैं ।

4. अन्तिम परिणति के आधार पर या इसके आस्वादन के आधार पर गीतिनाट्यों के दो भेद हैं ।

   सुखान्त और दुःखान्त

---

1 डॉ. वेदपाल खन्ना हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन पृ. 277

2. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन डॉ. गिरीश रस्तोगी पृ. 154

3 आधुनिक हिन्दी काव्य की रूप विधाएँ निर्मला जैन पृ. 361 64

5. शैली के आधार पर गीतिनाट्यों के निम्न भेद हैं सीधी सादी शैली, हास्यव्यंगात्मक, गंभीर शैली और बौद्धिक शैली के गीतिनाट्य ।

6. छन्दों के आधार पर इसके अन्तर्गत मुक्त छन्द में लिखित गीतिनाट्य, तुकान्त छन्दों में लिखित, अतुकांत छन्दों में लिखित और संगीतात्मक गीतिनाट्य आते हैं ।

7 काव्यत्व एवं नाट्यतत्व के आधार पर दो प्रकार के गीतिनाट्य हैं काव्यप्रधान और नाट्यप्रधान गीतिनाट्य ।

गीतिनाट्य सिद्धान्त या तत्व

गीतिनाट्य में नाटक और गीतिकाव्य दोनों के तत्व मिलकर एकाकार हो जाते हैं । इसलिए एक ओर नाटकीय तत्वों और दूसरी ओर गीततत्वों का विवेचन करना आवश्यक है ।

नाटकीय तत्व के अन्तरगत कथावस्तु, चरित्रांकन, संवादयोजना, देशकाल एवं वातावरण, भाषाशैली, उद्देश्य, रस और अभिनेयता का विवेचन है ।

गीततत्व में संगीतयोजना, छन्दयोजना, शिल्पविधान, बिम्बविधान और प्रतीक विधान का सम्यक् निरूपण प्राप्त होता है ।

नाटक के तत्व

1. **कथावस्तु :-** कथावस्तु नाटक का शरीर है । गीतिनाट्य में कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक और धार्मिक प्रष्ठभूमि पर निर्मित है । गीतिनाट्य प्राचीन कथानक को नये रूप में संशोधित कर समसामयिक समस्याओं की व्यंजना करता है । कथावस्तु में

भावमयता, अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति, गीति और नाटकीयता का समन्वय आदि अत्यन्त अपेक्षित हैं ।

2. **चरित्रांकनः-** गीतिनाट्य में पात्रयोजना और चरित्रचित्रण पर विशेष ध्यान देना पड़ता है । गीतिनाट्यों की सफलता पात्रों के व्यक्तित्व पर निर्भर है । गीतिनाट्य के पात्र अधिक भावुक और स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाले होते हैं । पात्रों को दृश्य के भावों को प्रकट करने की क्षमता होनी चाहिए । गीतिनाट्य भावप्रधान होने के कारण इसमें पात्रों की संख्या कम होती है । अन्य पात्रों से अधिक नायक को चरित्रवान और सात्विक गुणों वाला होना चाहिए ।

3. **संवादयोजना -** नाटकों में परस्पर वार्तालाप का बड़ा महत्व है । गीतिनाट्यों में संवाद काव्यमय हैं । काव्यमय संवाद मानवहृदय में रागात्मक संबन्ध स्थापित कर लेते हैं । संवादों के संयोजन में लयात्मकता, प्रभावशीलता, विषयानुकूल पद्य का प्रयोग दर्शक पर अद्‌भुत प्रभाव डालता है । वृत्तगंधी कथोपकथन से गीतिनाट्य सामान्यनाटक से ऊपर उठता है । पद्यात्मक कथोपकथन का प्रभाव दर्शक के चेतन और अचेतन मन पर भी पड़ता है । कथोपकथन का सहज, स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है । परिस्थिति एवं भावों के अनुसार लय और ध्वनि परिवर्तन, हर पात्र के लिए भिन्नभिन्न कथोपकथन, छोटे संवाद आदि दर्शक पर प्रभाव डाल सकते हैं ।

4. **देशकाल एवं वातावरण :-** गीतिनाट्यकार को देशकाल, वातावरण, सामाजिक पृष्ठभूमि आदि का ध्यान रखना चाहिए जिससे गीतिनाट्यकार को देश एवं समाज के यथार्थ चित्रण को प्रस्तुत करना पड़ता है । लोग आसानी से इसे समझ सकते हैं ।

5. **भाषाशैली** - "भाषा भावों की वाहिनी है । भाषा कवि की अनुभूति को मूर्तरूप प्रदान करती है । 'लय' और 'कल्पना' भाषा की दो प्रधान विशेषताएँ हैं ।"[1] भाषा की सरलता, चित्रात्मकता और बिम्बात्मकता गीतिनाट्य के लिए आवश्यक गुण हैं।

6. **उद्देश्यः**- इसका मुख्य उद्देश्य मानव मन के सूक्ष्म भावों और अन्तर्द्वन्द्वों का अंकन करना है । इसमें सामयिक समस्याओं की प्रस्तुति और उनका समाधान नाटककार का उद्देश्य होता है ।

7 **रसः**- भाव जागृति के लिए रचनाकार ने रस को माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया है ।

8. **अभिनयः**-अभिनय गीतिनाट्य का प्रमुख तत्व है । कथानक शिथिल होने पर पात्र अभिनय द्वारा गीतिनाट्य में प्राण प्रतिष्ठा कर देता है । गीतिनाट्य आंगिक, कायिक, आहार्य और सात्विक अभिनय से परिपूर्ण है । दशरथ ओझा ने लिखा है "जिस रचना द्वारा बाह्यसंघर्ष के साथ साथ सात्विक भावों का अभिनय दिखाया जा सके, वह श्रेष्ठ रचना होती है । सात्विक भावों का अभिनय वही पात्र कर सकते हैं, जो स्वयं भावुक होकर अभिनय कला में दक्ष हों ।"[2]

गीतितत्व

(1) **संगीतयोजनाः**- संगीतात्मकता गीतिनाट्य की अंगी है । गीतिनाट्य में संगीत के माध्यम से काव्य की रचना की जाती है । पात्रों के संवाद, अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष को संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । दृश्य परिवर्तन की सूचना भी संगीत द्वारा प्राप्त होती है ।

2. **छन्द विधान** :- कविता और छन्द का अटूट संबन्ध है । प्राचीनकाल में अधिकांश काव्य छन्दबद्ध थे । प्राचीननाटकों और गीतिनाट्यों में इसी छन्दबद्धता हम देख सकते हैं । अब गीतिनाट्यों में छन्दबद्धता अनिवार्य नहीं । आजकल लेखक गीति नाट्य के

---

1 'गीतिनाट्य शिल्प और विवेचन' डॉ. शिवशंकर कटारे पृ. 54

2. नाट्य समीक्षा' दशरथ ओझा पृ. 138

लिए मुक्त छन्द का प्रयोग ही उपयोगी मानते हैं । प्राचीन साहित्य में और वेद में मुक्तछन्द का प्रयोग हम देख सकते हैं संस्कृत में कुलक, अंग्रेज़ी में अतुकान्त छन्द (ब्लैंक वर्स) और बंगला में अमित्राक्षर छन्द इसी का प्रमाण है । गीतिनाट्य के लिए अतुकान्त छन्द की अपेक्षा लय पर आधारित मुक्त छन्द (फ्रीवर्स) अधिक उपयोगी है ।

3. **बिम्ब विधान :-** बिम्ब योजना मुख्य गीततत्व है । छन्दोबद्ध और लयपूर्ण भाषा के कारण बिम्ब अधिक तीव्र और स्पष्ट हो जाता है । बिम्बयोजना के लिए सर्वाधिक अवकाश गीतिनाट्य में ही है । बिम्बों की सहायता से गीतिनाट्यकार हृदय की सूक्ष्म वृत्तियों का अंकन करता है ।

4. **प्रतीकविधान :-** गीतिनाट्यों में प्रतीक विधान का विशेष महत्व है । बिम्ब के समान प्रतीक विधान भी गीतिनाट्य काव्य में जीवन का स्पन्दन, अनुभूति की गहराई, व्यंग्य और बाह्य स्थूल जगत जीवन के कटु यथार्थ को अभिव्यक्त करने के कारण नवीनता और सजीवता की सृष्टि करता है । पीकॉक ने प्रतीकों को 'poetic intensification' का एजेन्ट कहा है ।[1] गीतिनाट्यों में हृदय की कोमल वृत्तियों का आलेखन प्रतीकों के माध्यम से गीतिनाट्यकार अभिव्यक्त करता है तब उनकी प्रेषणीयता बहुत बढ जाती है । गीतिनाट्यकार को प्रतीकों का प्रयोग समय के अनुकूल ही करना चाहिए ।

गीतिनाट्यों में संकलन त्रय का सफल निर्वाह भी हुआ है । संकलनत्रय में समय, स्थान और कार्य की एकता का महत्व है लेकिन अब इनका स्थान भाव, उद्देश्य और कार्य की एकता ने ले लिया है । इसप्रकार तात्विक दृष्टि से देखें तो गीतिनाट्य का स्थान महत्वपूर्ण है ।

गीतिनाट्य का अन्यनाट्यरूपों से साम्य - वैषम्य

गीतिरूपक, नाट्यकविता, पाठ्य नाटक आदि का स्वरूप गीतिनाट्य से मिलता जुलता है ।

---

1 "हिन्दी नाटकः सिद्धान्त और विवेचन" डॉ. गिरीश रस्तोगी पृ. 148

गीतिनाटक और गद्यनाटकः- प्राचीनकाल से ही नाटक और कविता का संबंन्ध है । संस्कृत के आचार्यों ने दोनों को काव्य की परिधि में रखकर इन दोनों के रचनाकार को कवि कहा । फिर काव्य और नाटक की विशेषताओं का समन्वयकर गीतिनाट्य की सृष्टि हुई । गीतिनाट्य और गद्यनाटक दोनों के बीच समानताएँ हैं और असमानताएँ भी । दोनों का विकास कथोपकथनात्मक शैली में होता है । गीतिनाट्य में रंगसंकेत, मंचीय निर्देश, पात्रों का आगमन, गमन सब नाटकों के समान हैं । गीतिनाट्य वर्तमान युग की समस्याओं को प्रस्तुतकर इनका समाधान देता है । नाटक और गीतिनाट्य में तात्विक और आन्तरिक दृष्टि से अन्तर है । गीतिनाट्य का माध्यम पद्य है और नाटक का गद्य । गीतिनाट्य आन्तरिक संघर्ष पर ध्यान रखता है और नाटक बाह्य परिस्थितियों पर ध्यान रखता है । गीतिनाट्य में भावुकता के कारण लंबे लंबे संवाद होते हैं, नाटक में लंबे संवाद नहीं । नाटक में केवल छः तत्व हैं लेकिन गीतिनाट्य में इन तत्वों के अलावा संगीतात्मकता, आत्माभिव्यंजना आदि पर भी ध्यान रखना पड़ता है ।

2. **गीतिनाट्य और पाठ्यनाटकः-** कुछ आलोचक पाठ्य नाटक को गीतिनाट्य का पर्यायवाची मानते हैं । लेकिन इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है । पाठ्य नाटक को अंग्रेज़ी में 'Closet Drama' कहते हैं । प्रो. एच. ए. वीयर्स के अनुसार ये नाटक पाठ्य हैं, अभिनेय नहीं । अभिनेय नाटकों की अपेक्षा इनकी विशेषता यह है कि इनकी शैली अलंकृत, इनके भाव सबल, इनकी क्रियाशीलता मंद, और इनके भाषण प्रौढ़ होते हैं । छोटी गोष्ठी में पढने के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है । इसमें अभिनय, रंगमंच और पात्रों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता । इसतरह देखें तो दोनों का अस्तित्व एक है, दोनों अलग विधा नहीं । यह तो गीतिनाट्य का ही अंग है ।

गीतिनाट्य और नाट्यकविता (ड्रामाटिक पोयट्री)

दोनों में गीतात्मक संवाद होते हैं, दोनों का शिल्प और कथा-विकास एक सा होता है । लेकिन इन दोनों के बीच अन्तर भी है । गीतिनाट्य मुख्यत: नाटक है और नाट्यकविता तत्वत: काव्य है । इस कारण से नाट्यकविता में नाटकीयता का अभाव रहता है । गीतिनाट्य में नाट्यत्व, काव्यत्व और गीतात्मकता का त्रिवेणी संगम है; लेकिन नाट्यकविता में सिर्फ काव्यत्व प्रधान होता है ।

गीतिनाट्य और एकांकी

गीतिनाट्य और नाटक में जिसतरह का अन्तर है उसीतरह का अन्तर गीतिनाट्य और एकांकी में भी पाया जाता है । एकांकी गीतिनाट्य का ही अंग है । गीतिनाट्य में सांकेतिक भाषा का प्रयोग होता है बल्कि एकांकी में ध्वन्यात्मक भाषा का प्रयोग होता है । गीतिनाट्य भावात्मक शैली में और एकांकी रहस्यात्मक शैली में लिखी गई विधा है । एकांकी में केवल एक ही अंक होता है; लेकिन गीतिनाट्य कभी कभी एकांकी और कभी कभी अनेकांकी भी होता है ।

गीतिनाट्य और रेडियो रूपक

आज 'रेडियोरूपक' शब्द अंग्रेज़ी के रेडियो फीचर के लिए व्यवहृत किया जाता है, संस्कृत के रूपक से इसका कोई संबन्ध नहीं । रेडियो रूपक में ऐतिहासिक घटनाओं, सत्य घटनाओं और तथ्यों का चित्रण है तो गीतिनाट्य में कल्पना से जन्मे भावात्मकता की प्रधानता होती है । गीतिनाट्य पाठ्य और अभिनेय है तो रेडियोरूपक श्रव्य मात्र है । गीतिनाट्यों में आंगिक अभिनय, मंचसज्जा, दृश्यविधान, ध्वनि, प्रकाशव्यवस्था आदि हैं लेकिन रेडियोरूपक में ध्वनि के अतिरिक्त सबका अभाव होता है । गीतिनाट्य में संगीत और नृत्य का आयोजन है तो रेडियोरूपक में संगीत का आयोजन मात्र है ।

गीतिनाट्य और संगीतरूपक

संगीत रूपक में गीतों की प्रधानता होती है । प्रेक्षकों को गीतों की ओर आकर्षित करना ही संगीतरूपक का उद्देश्य है । संगीतरूपक कभी कभी किसी संगीतकार या कवि के जीवन की घटनाओं को लेकर लिखे जाते हैं । गीतिनाट्य में नाटकीयता की प्रमुखता है । संगीतरूपक में नाटकीयता के स्थान पर संगीत की प्रमुखता है । संगीतरूपक को नैरेटर द्वारा पूर्णता होती है तो गीतिनाट्य को नैरेटर की आवश्यकता अधिक नहीं होती । कथानक का अभाव संगीतरूपक का लक्षण है ।

गीतिनाट्य और आपेरा

कुछ विद्वान गीतिनाट्य और आपेरा को अलग अलग नहीं मानते । लेकिन यह तो ठीक नहीं । आपेरा नृत्य और संगीत से भरपूर है । संगीतरूपक की तरह आपेरा भी दर्शकों को संगीत और नृत्य से प्रभावित करता है । आपेरा में मूक अभिनय की प्रधानता है । नेपथ्य का गीत सुनकर अभिनेता नृत्य और शारीरिक अभिनय के द्वारा अपने भावों को प्रस्तुत करते हैं । गीतिनाट्य में अन्तर्द्वन्द्व और कथानक की प्रधानता होती है; लेकिन आपेरा में अन्तर्द्वन्द्व अत्यल्प है ।

गीतिनाट्य और रूपकात्मक काव्य

रूपकात्मक काव्य में प्रबन्धकाव्यों की तरह का कथानक होता है । रूपककाव्य में संवाद के बल पर कथानक का विकास होता है । गीतिनाट्य में कथानक के साथ दूसरी कथा नहीं रहती ।

हिन्दी गीतिनाट्यः उद्‌भव एवं विकास

14 वीं शताब्दी में यूरोप में लोगों नें रोमान्टिक और भावुकतापूर्ण नाटकों के विरुद्ध

तर्जनी उठायी जिसके कारण नाटक में काव्य पक्ष की उपेक्षा होने लगी । नाटककार इब्सन और शा ने उनकी माँग पूरी कर ली । "इब्सन के नाटकों की स्वाभाविकता, जीवन की सच्ची व्यारव्या और शा के यथार्थवाद, चिन्तन और तर्कशक्ति ने, नयेप्रयोगों ने क्रान्ति कर दी थी।"[1] इन्होंने शेक्सपियर, मार्लो आदि के रोमांटिक और काव्यपूर्ण वातावरण के विरुद्ध नाटक में बौद्धिकता को प्रमुखता दी । विश्व के प्रथमश्रेणी के इन नाटककारों की विशेषताओं को हिन्दी नाटककारों ने भी ग्रहण किया । "इब्सन के अनुसार मानवीय चरित्रों को, समसामयिक समस्याओं को प्रस्तुत करने के लिए देवभाषा की नहीं व्यावहारिक गद्य की आवश्यकता है ।"[2] किन्तु बीसवीं शताब्दी में नाटक और रंगमंच के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। एक ओर लोगों ने घोर यथार्थवादी नाटकों के विरुद्ध आवाज़ उठायी और दूसरी ओर सिनेमा के बढ़ते हुए प्रभाव को दूर करने की प्रवृत्ति भी इसमें निहित थी ।

"प्रथम महायुद्ध की कटुताओं से, जीवन के प्रति उत्पन्न अनास्था और अरुचि से बचने केलिए ऐसे नाटकों की आवश्यकता हुई जो सरसता, संतोष, आस्था एवं रस प्रदान कर सकें और इस परिस्थिति में गीतिनाट्य को जन्म दिया; क्योंकि "गीतिनाट्य कोरी वास्तविकताओं से बहुत आगे बढकर आधुनिक जीवन की जटिलताओं को संवेदनात्मक स्तर पर उद्‌घाटित करने में प्रवृत्त हुआ ।"[3] गीतिनाट्य के गीततत्व, काव्यगत लय आदि उसे सार्वकालिक, प्रभावशाली और मार्मिक बना दिया । युद्ध की विभीषिकाओं से भयभीत जनमानस यथार्थवादी और समस्या मूलक नाटकों से ऊबकर जीवन की रसात्मक अनुभूतियों को मनोरम वाणी देना चाहता था । अतिवैयक्तिकता के कारण गीतिकाव्य और छायावाद को लोग समझ नहीं पाए । जनमानस की इस आकांक्षा की पूर्ति बने काव्य नाटक । बीसवीं सदी में गीतिनाट्यों द्वारा गद्यनाटकों का पूर्णतया निष्कासन हुआ । डॉ. घनंजय के शब्दों में "यथार्थवादी दृष्टि कोण के प्रभाव से जब पाश्चात्य देशों में नाटक पूर्णतः गद्य प्रधान हो गए तब आधुनिकयुग में काव्य को नाटकों में पुनः

---

1 हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन गिरीश रस्तोगी पृ. 129

2. वही पृ. 144

3. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन गिरीश रस्तोगी पृ. 145

प्रतिष्ठित करने के लिए कवि नाटककारों द्वारा एक आन्दोलन प्रारंभ हुआ । काव्य नाटक शब्द उसी की देन है । इलियट ने इंगलैंड में तथा क्लोडेल ने फ्रांस में काव्यनाटक को रंगमंच पर पुनः प्रतिष्ठित किया है ।[1]

अंग्रेज़ी नाटकों से काव्यनाटक को नई प्रेरणा मिली है । आज अंग्रेज़ी नाटकों का भविष्य भी गीतिनाट्य पर ही निर्भर है । इंगलैंड के प्रतिनिधि कवि ईट्स, इलियट, ओडेन, इशरवुड, स्टेफेन स्पेण्डर, हैसेल एवं क्रिस्टोफर फ्राई काव्य नाटक के समर्थक हैं । गीतिनाट्य के क्षेत्र में इनका योगदान महत्वपूर्ण है । उन्होंने इस नयी विधा को बहुत समृद्ध बनाया । इंगलैंड में डब्ल्यू.बी. ईट्स ने इस धारा को सबल बनाया । उनके प्रगीतात्मक, काव्यात्मक एवं प्रतीकात्मक नाटकों में नाटकीयता से अधिक काव्यात्मकता पाई जाती है । इनके नाटकों में कल्पनामय सौंदर्य, प्रतीकात्मकता, बिंब विधान और रहस्यात्मकता का बाहुल्य है । 'उनके अनुसार नाटक एक इमेजिनेटिव आर्ट है।"[2] सबसे श्रेष्ठ गीतिनाट्यकार थे टी एस. इलियट उन्होंने मात्र कविता के क्षेत्र में नहीं नाटक के क्षेत्र में भी आन्दोलन उपस्थित किया । इब्सन के विरोध में उसने कहा कि मनुष्य अत्यन्त तीव्र भावावेश में अपने आपको कविता में ही अभिव्यक्त करता है । स्थायित्व भी उसी में होता है । "If we want to get at the permanent and universal; we tend to express ourselves in verse" [3] इलियट शेक्सपीयर के नाटकों को युगानकूल नहीं मानते । स्टिफेन फिलिप्स, मेंसफील्ड, ड्रिक वाटर, एबरक्राम्बी, गिबसन आदि गीतिनाट्यों के प्रारंभकर्ता थे । ईट्स, सीसे आइरिश नाटककारों की प्रतिभा से इनका विकास हुआ । जोहन ड्रिंक वाटर और विलपोर्ड ने गीतिनाट्यों और ऐतिहासिक नाटकों से निकट संबन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है । लेसर एबर क्राम्बी कहते हैं, नाटकों के लिए सबसे प्रमुख और उपयुक्त माध्यम कविता ही है । 'वे नाटकों में गद्य को हेय ओर अवांछनीय मानते हैं ।"[4] उनके अनुसार काव्य तुकबन्दी मात्र नहीं इसका संबन्ध शाश्वत कविता से है ।

---

1 सं. बालाकृष्ण राव माध्यम वर्ष एक अंक 10 पृ. 91

2. हिन्दी नाटक सिद्धान्त और विवेचन-गिरीशरस्तोगी पृ. 145

3 वही पृ. 145

4 नाट्यदर्शन (शोधकृति)-डॉ. शान्तिगोपाल पुरोहित पृ. 178

"गुलार्डिस निकल के अनुसार सन् 1890 से 1920 तक का काल गीतिनाट्यकाल नाम से ही विभूषित किया जाना चाहिए ।"[1] इलियट, इशरवुड, विलियम्स आदि नाट्यकारों के योगदान से काव्यनाटक गद्यनाटकों से अधिक मान्य एवं लोकप्रिय बन गए हैं । शेली, ब्राउनिंग, स्विनवर्ग के भावना प्रधान नाटक और बंगला में रवीन्द्रनाथ टैगोर का 'चित्रा' एवं द्विजेन्द्रलाल राय के 'सीता' आदि नाटक गीतितत्व से युक्त हैं ।

अन्य विधाओं की तरह हिन्दी नाटक ने भी पाश्चात्य विचारधाराओं को, नये नये टेकनिक को एवं दृष्टिकोण को ग्रहण किया और युगानुकूल नाटक क्षेत्र को संपन्न किया । नाटककार ने कल्पनामय और भावुकतापूर्ण जगत से हटकर समकालीन सामाजिक संघर्ष और समस्याओं का प्रतिपादन किया ।

भारत में गीतिनाट्य विधा का प्रारंभिक सूत्र वैदिक नाटकों में मिलता है । कुछ नाटकों का बीज संस्कृत नाटकों में भी मिलता है । संस्कृत नाटककारों ने वेदों से प्रेरणा लेकर गीतिनाट्यों की रचना की ।

हिन्दी में गीतिनाट्य की परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है; यह तो नवीन नहीं है । हिन्दी गीतिनाट्य वैदिककाल से उत्पन्न होकर संस्कृतकाल तक आते आते नाट्य साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ है । जयदेव का 'गीता-गोविन्द' गीतिनाट्य का प्रारंभिक रूप है । दशरथ ओझा का विचार है कि गीतिनाट्य की परंपरा तेरहवीं शताब्दी में ही प्रारंभ हो गई थी । इनकी भाषा अप्रभ्रंश तथा गुर्जर या राजस्थानी मिश्रित थी और तभी से हिन्दी नाटकों की परंपरा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है ।[2] इस काल के सभी नाटकों की पृष्ठभूमि धार्मिक थी । धार्मिक नाटक साधारण जनता के लिए लोकप्रिय थे । लेकिन संस्कृत भाषा की दुरूहत्ता के कारण जनता का ध्यान इस ओर कम हो गया ।

---

1 नाट्यदर्शन (शोधकृति) डॉ. शान्तिगोपाल पुरोहित पृ. 178

2. दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास: पृ. 70 तथा 287

15 वीं शताब्दी में गीतिनाट्य के स्वरूप का और अधिक विकास हुआ । भारतेन्दु के पूर्व ही व्रजभाषा नाटकों की रचना हुई । शैली और शिल्प की दृष्टि से व्रजभाषा नाटक गीतिनाट्यों के अत्यधिक निकट होने के कारण कुछ आलोचक इन्हें गीतिनाट्य मानते थे । लेकिन कुछ आलोचक इन्हें हिन्दी की ही रचना नहीं मानते । गीतिनाट्य की समस्त विशेषताओं से युक्त इस काल का प्रथम गीतिनाट्य है 'गोविन्दहुलास नाटक' । यहीं से हिन्दी गीतिनाट्य परंपरा का प्रारंभ हुआ है । गीतिनाट्य के निकटवर्ती नाटक है रासलीलानाटक । इसमें कृष्ण जीवन का चित्रण है । अभिनेयता और संगीत से पूर्ण रामलीला, यात्रा हल्लोस, स्वांग और नौटंकी गीतिनाट्यों की परंपराओं में आते हैं । लोकनाट्य परंपरा के रासनाटक, स्वांग, नौटंकी, रामलीला आदि नाटक हिन्दी गीतिनाट्य के अत्यन्त निकटवर्ती हैं । "आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी[1] डॉ. सोमनाथ गुप्त [2] तथा कृष्णदास [3]" इन रासलीलाओं को गीतिनाट्य परंपरा का आदिरूप मानते हैं ।

उन्नीसवीं सदी के बाद हिन्दी नाटकों को खास स्थान मिला और उनका महत्व पूर्वाधिक बढ गया । संस्कृत भाषा की क्लिष्टता के कारण लोग इसकी उपेक्षा करने लगे । हिन्दी गीतिनाट्य संस्कृत नाट्य परंपरा से अलग होकर पश्चिमी प्रभाव को ग्रहण करते हुए प्रगति की ओर अग्रसर हुआ है ।

मुसलमानी शासनकाल में नाटक का विकास नहीं हुआ । संस्कृत नाटक के समान पौराणिक नाटक भी जनता के बीच प्रचलित थे । भावप्रधान गीतिनाट्यों का आधार ही पौराणिक कथानक है । उसीप्रकार मध्ययुग में रचित संगीत प्रधान लोकधर्मी नाटक भी आज के गीतिनाट्यों के प्रारूप थे ।

भारतेन्दु युग में हिन्दी नाटक को नया जन्म मिला । भारतेन्दु युग में लिखित भारतेन्दु का सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्य है 'नीलदेवी'।

---

1 नाददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ. 260

2. सोमनाथ गुप्त हिन्दी नाटक साहित्य का अध्ययन पृ. 13

3 श्रीकृष्णदास हमारी नाट्यपरंपरा पृ. 179

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि हिन्दी गीतिनाट्य के आविर्भाव के लिए उस समय की परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं । कुछ साहित्यकार इसके उद्‌भव का संबन्ध प्राचीन साहित्य और परंपरा से मानते हैं । कुछ आलोचक इसके उद्‌गम के पीछे पाश्चात्य चिंतन का प्रभाव मानते हैं । गीतिनाट्य परंपरा पर लोक नाट्य परंपरा के प्रभाव के संबन्ध में डॉ. ओझा ने इसप्रकार लिखा है "हिन्दी गीतिनाट्य के सृजन में लोक गीतिनाट्यों (रास, नौटंकी, यात्रा आदि) ने विशेष योग दिया है । उनके विचार से रास के प्रभाव से ही आगे चलकर गीतिनाट्यों की सृष्टि हुई ।" डॉ. ओझा ने गीतिनाट्य को परम्परागत कहा है, परन्तु कुछ विद्वान जैसे डॉ. बच्चन सिंह ने इसे पूर्ण रूपेण आधुनिक युग की देन कहा है ।[1] मानवसमाज की प्रगति और नवीनता को लक्ष्य करके गीतिनाट्यों की रचना हुई ।

हिन्दीतर गीतिनाट्य

हिन्दी से भी पूर्व कई भारतीय भाषाओं में गीतिनाट्य लिखे गए । इनमें असमिया नाट्य साहित्य प्रमुख है । यह सबसे प्राचीन नाट्यसाहित्य है । इसके प्रथम नाटककार हैं शंकर देव । रमाकान्त चौधरी द्वारा रचित 'सीताहरण' तथा 'रावणबध' अमित्राक्षर छन्द में लिखे गए असमिया गीतिनाट्य हैं । असमिया गीतिनाट्यों का प्रभाव बंगला गीतिनाट्यों पर पडा । प्रसाद को गीतिनाट्य लिखने की प्रेरणा बंगला गीतिनाट्य से ही मिली थी । बंगला का प्रथम गीतिनाट्य आनन्द बानर्जी कृत 'शकुंन्तला' हैं । बँगला में गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्रलाल राय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके नाटक नाटकीयता और गीतात्मकता से युक्त सुन्दर गीतिनाट्य हैं । हिन्दी के समानान्तर लिखे गए मराठी के गीतिनाट्य हैं संगीत शाकुंतल, संगीत रामराज्य आदि । गुजराती गीतिनाट्यों में 'उर्वशी' (दुर्गेश); 'श्रीमंगल' (प्रेमशंकर) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । तेलुगु में रचित गीतिनाट्य है "अल्ली मुट्‌ठा'

---

1 हिन्दी गीतिनाट्य डॉ. रेखाश्रीवास्तव पृ. 32-33

(कोप्परपुसुब्बराव); साल भंजिका (आरुद्ध) आदि । चक्रपाणी बारियर का 'हरिश्चन्द्र चरितम्' अच्युत मेनन का 'नैषधम्' आदि मलयालम के गीतिनाट्य हैं ।

यूनान, जर्मनी, आस्ट्रिया के नाटकों में, और अंग्रेज़ी नाटकों में पद्यात्मकता नाटक का आवश्यक, अंग रही । जर्मन कवि गेटे का 'फाउस्ट' और शेक्सपीयर एवं मार्लो के बहुत से नाटक इसके प्रमाण हैं । 14 वीं सदी के आरंभ में प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि वर्डसवर्थ, कालिरिज, बायरन, कीट्स, शेली ने पद्यनाटकों की रचना भी की । इनमें पाठ्य गुण अधिक हैं, नाट्यतत्व और अभिनयतत्व कम । वस्तुतः ये ड्रैमेटिक पोयम्स नाट्यकविता है जिनमें काव्यतत्व प्रधान है । अंग्रेज़ी गीतिनाट्य में 'युलीसिस' फाउस्ट' आदि प्रसिद्ध गीतिनाट्य हैं । टी.एस. इलियट, जान मेन्सफील्ड, लोरेन्स आदि गीतिनाट्यों के क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं । इनमें अग्रणी हैं टी.एस इलियट । टी.एस, इलियट के बाद के नाटककारों में ओदेन, ईशवुड और स्पेण्डर के नाम उल्लेखनीय हैं । रंगमंचीय गीतिनाट्य लिखने में प्रसिद्ध है क्रिस्टोफर फ्राई ।

आइरिश गीतिनाट्य में यीट्स, शिजे आदि प्रसिद्ध हैं । अमरीकी, फ्रेंच, इटालियन और यहूदी भाषाओं में लिखित अनेक गीतिनाट्य भी उपलब्ध हैं । इसप्रकार गीतिनाट्य का सृजन समस्त विश्व में हो रहा था ।

हिन्दी में गीतिनाट्य :- हिन्दी गीतिनाट्य भी इसी विश्वव्यापी प्रतिक्रिया का परिणाम था । जो आचार्य गीतिनाट्य को आधुनिक युग की देन मानते हैं वे प्रसाद के 'करुणालय' को हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य स्वीकार करते हैं ।[1] बच्चन सिंह लिखते है कि यदि अमानत के 'इन्दर सभा' को छोड़ दिया जाय तो प्रसाद का 'करुणालय' ही हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य ठहरता है ।[2] कुछ विद्वान सियाराम शारण गुप्त कृत 'कृष्णा' को प्रथम गीतिनाट्य मानते हैं ओर कुछ समीक्षक पूर्व भारतेन्दु युग में लिखित (1610-1868) ब्रजभाषा के सभी नाटकों को

---

1 हिन्दी नाटक नगेन्द्र पृ. 89

2. बच्चनसिंह हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ पृ. 42

गीतिनाट्य की संज्ञा देते हैं । त्रिलोचन शास्त्री, देवकवि द्वारा लिखित 'देवमाया प्रपंच' को और दशारथ ओझा, संदेश रासक और गय सुकुमार रास को प्रथम गीतिनाट्य के रूप में मानते हैं । 'करुणालय' के पूर्व की कृति 'गोविन्दहुलास नाटक' नाट्यत्व, और काव्यत्व की दृष्टि से गीतिनाट्य की सभी विशेषताओं से युक्त नाटक है । इसलिए इसे कुछ विद्वान प्रथम गीतिनाट्य के रूप में मानते हैं । इसप्रकार हिन्दी के प्रथम गीतिनाट्य के संबन्ध में मतभेद हैं ।

हिन्दी गीतिनाट्यों के विकास क्रम को मुख्यतः तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है

1 स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्य (1900 से 1947 तक)

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्य (1947 से 1965 तक) और (3) समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य (1965 से अब तक)

1. स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्य

प्रसादजी के 'करुणालय' से स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्यों का समारंभ होता है । इसके पश्चात् मैथिलीशरणगुप्त, सियारामशरण गुप्त, हरिकृष्ण प्रेमी आदि लेखकों ने गीतिनाट्यों का सृजन किया । इसकाल के गीतिनाट्यों की विशेषता यह है कि वे सब पाठ्य हैं, अभिनेय नहीं । रंगमंच की दृष्टि से वे सफल नहीं हैं । स्वाधीनता प्राप्ति के पहले आदर्शवादी नाटकों का प्रचार प्रसार हुआ । अतः कुण्ठा, अनास्था आदि का चित्रण इस काल के गीतिनाट्यों में नहीं मिलता । मुक्तछन्द के बदले अतुकान्त छन्दों का प्रयोग इस काल की विशेषता थी । विकास की दृष्टि से इस काल के गीतिनाट्यों का निजी महत्व है । प्रमुख स्वतन्त्रतापूर्व गीतिनाट्य हैं 'करुणालय' (जयशंकर प्रसाद), 'अनघ' और 'दिवोदास' (मैथिलीशरणगुप्त), 'कृष्णा' और 'उन्मुक्त' (सियाराम शरण गुप्त), सेठ गोविन्ददासकृत स्नेह या स्वर्ग' आदि।

स्वतन्त्रतापूर्व गीतिनाट्यों में कोरा यथार्थ ही नहीं विभिन्न विचाधाराओं का प्रभाव भी हम देख सकते हैं । गाँधीवाद, मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद तथा अरविन्ददर्शन ने इन गीतिनाट्यों को प्रभावित किया है । चिन्तन की अधिकता के कारण इनमें कथानक का अभाव रहता है । नवीन शैली-शिल्प और विषय वस्तु की दृष्टि से भी स्वतन्त्रतापूर्व गीतिनाट्य अत्यन्त सुन्दर हैं । मानवमन की विभिन्न भावनाओं, कुंठाओं और रागविरागों की अभिव्यक्ति करने में ये गीतिनाट्य समर्थ हैं । फ्रायड के मनोविश्लेष्णवादी सिद्धान्तों का प्रभाव इन पर पड़ा है । इस युग के प्रमुख गीतिनाट्यकार हैं उदयशंकर भट्ट । उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा अहं और नैतिकाहं का सुन्दर विश्लेषण किया है । विश्वामित्र' मत्स्यगंन्धा' आदि कृतियाँ इसके प्रमाण हैं । भावाभिव्यंजना की बहुलता, प्रकृति के साथ मानव का तादात्म्य, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण आदि इस काल के गीतिनाट्यों की प्रमुख विशेषताएँ हैं । इनमें नाट्यत्व से अधिक काव्यत्व है । फिर भी ये रंगमंच के लिए अनुकूल हैं । मुक्तछन्द का प्रयोग भी इस काल में देखने को मिलता है । इस, काल के अन्य उल्लेखनीय गीतिनाट्य हैं 'तारा' (भगवतीचरणा वर्मा) उदयशंकर भट्ट के 'विश्वामित्र' 'मत्स्यगन्धा' 'राधा' आदि ।

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्य

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्यों को दो कालों में विभक्त किया जा सकता है 1947 से 1955 तक प्रथम चरण और 1955 से 1965 तक द्वितीय चरण ।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के प्रथम चरण में लिखित गीतिनाट्य गीतिनाट्य की सभी विशेषताओं से युक्त रचनाएँ हैं । इनमें काव्यत्व, नाट्यत्व और संगीतत्व का त्रिवेणी संगम हुआ है । इस काल में रचित सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्य है धर्मवीरभारती का 'अन्धायुग' । इस काल के अधिकांश गीतिनाट्यों में युद्ध और उससे उत्पन्न कुण्ठाओं और अनास्था का वर्णन है । युद्ध की कटुताओं

से संत्रस्त जनमानस का चित्रण कुछ रचनाओं में हम देख सकते हैं । इस काल में प्रयोगवादी लेखकों ने शैली और शिल्प में नये नये प्रयोगों को अपनाकर गीतिनाट्यों में इनका सफल प्रयोग किया है । अभिनेयत्व इस काल के नाटकों की प्रमुख विशेषता है । वे कल्पना के लोक में न विचरणकर यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर समस्याओं का समाधान ढूँढते हैं । फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का पर्याप्त प्रभाव भी इस काल की रचनाओं पर पड़ा है । इस काल में रचित गीतिनाट्यों के अन्तरगत धर्मवीर भारती के 'अंधायुग ' जानकी वल्लभ शास्त्री द्वारा रचित गीतिनाट्य संग्रह 'पाषाणी' आदि उल्लेखनीय हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर गीतिनाट्यों के द्वितीय चरण में आलोचकों ने गीतिनाट्य को स्वतन्त्र विधा मानकर उसके सिद्धान्त पक्ष पर विचार किया । इस काल के सभी गीतिनाटक सामाजिक हैं । इनमें व्यक्तिवादिता के स्थान पर सामाजिकता को महत्व प्रदान किया गया है । बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय उनमें प्राप्त होता है । इस काल में अनेक काल्पनिक गीतिनाटक लिखे गए हैं । साम्प्रदायिक समस्या को लेकर लिखित गीतिनाट्य भी इस काल की प्रमुख विशेषता है । 'सूखा सरोवर' (डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल), 'उर्वशी' (दिनकर), 'एक कंठ विषपायी' (दुष्यन्तकुमार) आदि इस काल की प्रमुख गीतिनाट्य कृतियाँ हैं ।

3. समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य

समकालीन हिन्दी गीतिनाट्य शैली-शिल्प तथा कथानक की दृष्टि से सर्वथा नवीन हैं । अभिनेयता इस काल के गीतिनाट्यों की प्रमुख विशेषता है । अधिकांश नाटक रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेले जा सकते हैं । रचनाओं में काव्यतत्व और नाट्यतत्व एकाकार हो गए हैं । तात्विक दृष्टि से भी ये गीतिनाट्य सफल हैं । समकालीन गीतिनाट्यों में 'उत्तरप्रियदर्शी' (अज्ञेय) 'प्रवाद पर्व' (नरेश मेहता), 'अग्निलीक' (भारत भूषण अग्रवाल), 'सूतपुत्र' (विनोद रस्तोगी), 'काठमहल' (प्रभात कुमार भट्टाचार्य) आदि प्रमुख हैं ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गीतिनाट्यों का विकास आज भी प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है । इसकी लोकप्रियता के संबन्ध में शिवशंकर कटारे इसप्रकार लिखते हैं "गीतिनाट्य जहाँ एक ओर मंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत किए जाते हैं, वहीं रेडियो माध्यम से वे श्रोताओं को आहलादित करते हैं । पाठ्य गीतिनाट्य जहाँ काव्यानन्द प्रदान करते हैं, वहाँ अभिनेय गीतिनाट्य नाटक, काव्य और संगीत तीनों का आनन्द देते हैं ।"[1] गीतिनाट्य की सभी विशेषताओं से युक्त नाटक बहुत कम हैं; फिर भी जो हैं हिन्दी साहित्य क्षेत्र में उनका खास स्थान है ।

---

1 'गीतिनाट्य-शिल्प और विवेचन' -डॉ. शिवशंकर कटारे पृ. 1 भूमिका)

दूसरा अध्याय

मिथक और साहित्य

मिथक और साहित्य

मिथक का स्वरूप

मिथक सामूहिक अवचेतन की उपज है । दूसरे शब्दों में कहें तो मानवजाति के सामूहिक अनुभवों का शब्दबद्ध रूप है मिथक । इसे मानव का आदिम काव्य माना जाता है । मिथक का संबन्ध अतिप्राकृतिक घटनाओं से है फिर भी वह मानव के लिए अत्यन्त लाभकारी, मूल्यवान एवं प्रासंगिक है । वह लोकमंगल की भावना से भरपूर रहता है । यद्यपि मिथक कल्पनाश्रित है तो भी मिथक में सत्य का पुट रहता है । अलौकिक तथा अद्‌भुत काल्पनिक कथाएँ मिथक के अन्तर्गत आ जाती हैं । पहले ये कपोल कल्पना समझी जाती थीं, फिर 19 वीं सदी में वैज्ञानिक प्रगति के साथ साथ मिथकों के प्रति एक नया दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ । अन्य साहित्येतर विषयों ने भी इसमें दिलचस्पी दिखाई और नवीन मूल्यों का अन्वेषण किया ।

जब से मानवजाति का उदय हुआ तब से मिथकीय कथाएँ पैदा हुयीं । प्रकृति से इनका घनिष्ठ संबन्ध है । प्रकृति में सृष्टि की उत्पत्ति, मानवसमाज की उत्पत्ति, विकास आदि से संबन्धित सामाजिक तथ्यों का उद्‌घाटन मिथक के द्वारा होता है । इस दृष्टि से देखें तो मिथक मूलतः विज्ञान है जिसके द्वारा आदिम मानव ने प्रकृति के चमत्कारपूर्ण रहस्यों की अभिव्यक्ति की । प्रकृति की चमत्कारपूर्ण और अतिरंजित घटनाओं के प्रति मानव मन में उत्पन्न चिंताएँ, हर्ष, विषाद, भय, कुतूहलता आदि की सशक्त अभिव्यक्ति मिथकों के माध्यम से हुई है । इसप्रकार मिथक ने मानव के आन्तरिक और बाह्य जगत को अपने में समाहित किया है ।

मिथक अतीत से वर्तमान की ओर और वर्तमान से भविष्य तक अनुस्यूत प्रयाण करनेवाला है । अतीत को वर्तमान के चश्मे में देखने का प्रयास ही मिथक है । बाहरी तौर पर

देखने से यह हमें मिथ्या जान पडती है; लेकिन मानवमन की गहराइयों में छिपे भावों को, अंतः संघर्षों को अंकित करने का एक सशक्त और एकमात्र साधन है मिथक । नयी कविता ने एक विशेष शैली के रूप में मिथक को अपनाया है । आदिकाल से लेकर आधुनिककाल तक हिन्दी साहित्य के सभी अंशों पर मिथकीय विचारधारा का प्रभाव है ।

आदिम मानव के चित्त में संचित अनुभूतियाँ मिथक के रूप में प्रकट होती हैं । कुछ विद्वान इसे 'आर्किटाइपल इमेज' (आद्यबिंब) कहते हैं । "आदिम मनुष्य के दिमाग की उपज है मिथक। आज मिथक एक समग्र मानविकीय दृष्टिकोण है जिसे असत्यकथा, मिथ्या अथवा कोरी कल्पना मानने की गलती नहीं करनी चाहिए । इसे मानवमन के सांस्कृतिक यथार्थ के रूप में जाना और समझा जा सकता है ।" [1] "मिथक जो एक समय में मनुष्य के सर्वांगीण संपूर्ण व्यक्तित्व का पोषक था, अब आत्मपीड़ित स्मृतियों के जाले में बदल गया, मनुष्य के खण्डित, ज्वरग्रस्त स्वप्नों में उलझा हुआ, जिसे सिर्फ फ्रोयड की सूक्तियों और सिद्धान्तों में ही पकड़ा जा सकता ।" [2]

मिथक को सत्य के समकक्ष रखना चाहिए । अतीत में घटित वास्तविक घटना है मिथ जो अब भी कालातीत बनकर हमारे सम्मुख विराजमान रहता है ।

मिथक शब्द की व्युत्पत्ति और उसका अर्थ

"मिथ" मूल रूप में ग्रीक भाषा का शब्द है । ग्रीकभाषा के 'माइथास' (my thos) से इसकी व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका अर्थ है मौखिकवाणी या मुँह से निकला हुआ आप्तवचन या अतर्क्य कथन । पहले मुँह से उच्चरित सभी कथाएँ इसके अन्तर्गत आ जाती थीं; फिर इनका अर्थसंकोच हुआ और यह विशिष्ट अर्थ में देवताओं की कथाओं से संबन्धित हुआ ।

---

1 मिथकीय अवधारणा और यथार्थ डॉ. रमेश गौतम

2. कला का जोखिम निर्मलवर्मा पृ. 17

अब मिथक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टि से विश्वास रखनेवाली काल्पनिक कथाओं का द्योतक बन गया ।

"मिथ" शब्द का पहला आविर्भाव अंग्रेज़ी में 1830 में हुआ ।"[1] 19 वीं शताब्दी के पूर्व तक 'मिथक' शब्द 'मिथ्या' शब्द से, संबन्धित था । अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' ग्रंथ में मिथक शब्द का अर्थ है कथानक, कथाबंध और गल्पकथा । कुछ समीक्षक मिथ को माइथोलोजी के समकक्ष मानते हैं । लेकिन दोनों में खास अन्तर है । अंग्रेज़ी का 'माइथोलोजी' पुराकथा से संबन्धित है । आदिम विश्वास से उत्पन्न ये पुराकथाएँ बाद में अन्धविश्वास का रूप धारण कर लेती हैं जिनकी व्याख्या दुरूह हो जाती है । ऐसी कथाओं और विश्वासों को मिथक शब्द से व्यवहृत किया जाने लगा है ।

संस्कृत में मिथक शब्द के निकटवर्ती दो शब्द हैं मिथस् या मिथ जिसका अर्थ है परस्पर और (2) मिथ्या जो असत्य का वाचक है । संस्कृत के 'मिथ' के साथ 'क' प्रत्यय जोड़ने से मिथक शब्द का निर्माण हुआ है ।

हिन्दी में मिथक शब्द का प्रयोग आधुनिक काल में प्रारंभ हुआ । इसलिए इसे आधुनिक युग की देन समझा जाना चाहिए । हिन्दी भाषा और साहित्य में मिथक शब्द का सबसे पहला आविष्कारक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी है । हिन्दी में प्रचलित मिथक अंग्रेज़ी के मिथ शब्द का पर्याय है ।

पारिभाषिक शब्दकोश में डॉ. नगेन्द्र ने कल्पकथा' एवं विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने 'पुराकथा' एवं डॉ. सत्येन्द्र ने 'धर्मगाथा' आदि शब्दों का मिथक के समकक्ष प्रयोग किया है । लेकिन ये सभी शब्द मिथक के संपूर्ण अर्थ को स्पष्ट नहीं कर पाते । डॉ. रमेशकुंतल मेघ और

---

1 Myths of Modern Individualism - I an watt page 228

डॉ. कामिलबुल्के ने भी मिथक शब्द को मान्यता प्रदान की है । कुछ विद्वान मिथक को पुराण कथा मानते हैं । क्योंकि उनकी राय में मिथ पुराण का आदिरूप है । 'मिथक' के आधुनिक अर्थ को समझने के लिए पुराण में परिवर्तन होना आवश्यक है । इस दृष्टि से देखें तो पुराण का नया रूप है मिथक । डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''सामान्य रूप में मिथक का अर्थ है ऐसी परंपरागत कथा जिसका संबन्ध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है, मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है।"[1]

अज्ञेय ने मिथक को बिम्ब, पुराण आदि के संदर्भ में रखकर देखा । उनके अनुसार सांस्कृतिक संदर्भ में मिथक एक तरह का रहस्यमय शक्तिस्रोत है । अतः "मिथक एक ओर अस्मिता की पहचान और दूसरी ओर अपक्षी रक्षा का एक साधन होता है ।"[2]

मिथक से संबन्धित परिभाषाएँ

विभिन्न भारतीय विद्वानों और पाश्चात्य विद्वानों ने मिथक को परिभाषित किया है ।

भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ :-

आचार्य हज़ारी प्रसाद ने मिथक की व्याख्या करते हुए इसप्रकार लिखा है

"रूपगत सून्दरता को माधुर्य (मिठास) और लावण्य (नमकीन) कहना बिल्कुल झूठ है, क्योंकि रूप न तो मीठा होता है, न नमकीन, लेकिन फिर कहना पड़ता है, क्योंकि अंतर्जगत् के भावों को बहिर्जगत् की भाषा में व्यक्त करने का यही एकमात्र उपाय है । सच पूछिए तो यही मिथक तत्व है।"[3]

---

1 डॉ. नगेन्द्र 'मिथक और साहित्य' पृ. 7

2. अज्ञेयः 'स्रोत और सेतु' पृ. 65

3. संपाः जगदीशनारायण द्विवेदी और मुकुन्द द्विवेदी हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 7- पृ. 85

मिथ को परिभाषित करते हुए डॉ. बच्चन सिंह ने कहा, "अचेतन मन द्वारा प्रकृति के चमत्कारिक प्रभावों की अनुभूति का कल्पनात्मक सृजन ही मिथ है।"[1] डॉ. पुष्पालसिंह ने मिथक को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "अपने विशिष्ट अर्थों में मिथ एक ऐसी कथा है, जिसके द्वारा कहने और सुननेवाले सृष्टि या ब्रहमाण्ड संबन्धी कोई तथ्य समझते हैं ।"[2]

डॉ. नगेन्द्र ने विभिन्न विद्वानों की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष रूप में लिखा है "मिथक धार्मिक कर्मकांड के कलात्मक प्रतिरूप है, उसकी औचित्य साधना का भाव कल्पनात्मक प्रयास है । मसीही धर्म शास्त्रकारों ने इसी अर्थ में बाइबिल के प्राचीन संस्करण में उद्घृत कथाओं की व्याख्या की है, जिसमें उनके प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों रूपों को यथावत् मान्यता प्रदान की गयी है । संक्षेप में धर्म शास्त्र की शब्दावली में मिथक स्वतः प्रमाण अथवा रूढ़ धार्मिक सिद्धान्तों का आख्यान है।" [3]

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

श्री. ई. ए. गार्डनर ने कहा है- "वह प्रायः प्रत्यक्षतः कथा रूप में होता है । सामान्य कथा से अंशत यह इस रूप में भिन्न है कि जिन मनुष्यों में यह कथा प्रथम बार प्रचारित होती है, वे अवश्य ही इसे तत्वतः सत्य मानते हैं । इस प्रकार मिथक कथा नीति कथा या अन्योक्ति से उसीप्रकार भिन्न है, जिसप्रकार कहानी या रम्याख्यान (रोमांस)"[4]

प्रसिद्ध विद्वान अन्स्ट केसिरर की राय में "मिथकों का वास्तविक क्षेत्र प्रकृति नहीं समाज है । मिथक के समस्त मूलभूत अभिप्राय, मनुष्य के सामाजिक जीवन से उद्भूत होते हैं"[5] । प्रसिद्ध विद्वान रेनेवेलेक के अनुसार "यह एक कल्पनाशील लेखन के लिए कलाकार का

---

1 'आधुनिक साहित्य आलोचना की चुनौती' बच्चनसिंह पृ. 35
2. डॉ. पुष्पालसिंह, काव्य मिथक पृ. 2
3. डॉ. नगेन्द्र 'मिथक और साहित्य' पृ. 11
4. "A myth is usually, directly or indirectly in narrative form, its difference from ordinary tales seems to lie partly in the fact that it is believed to be substantially true, at least by those among whom it is first repeated, it thus differs from a allegory as from a fiction or romance 'Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. IX' P. 188
5 Earnest cassirer, An Essay on Man-P 75 "Not nature, but society is the true model of myth. All its fundamental motives are projections of man's Social life."

अपने समाज से संबन्ध स्थापित करने का एक अत्यावश्यक माध्यम है, जो उसे मान्यता प्रदान करता है कि वह उसी समाज का कलाकार है।'[1]

एम. इलिएड (M. Eliade) ने कहा है 'मिथक जटिल सांस्कृतिक सत्य है, जिसकी व्याख्या हम विभिन्न रूपों में कर सकते हैं ।"[2]

"मिथक आदिम मानव का विज्ञान है, वह विश्व की व्याख्या का प्रयत्न है जिसमें आदिम मानव निवास करता था।"[3] फ्रेज़र ने "मिथकों को मानव के प्रारंभिक विचारों का दस्तावेज़" कहा है ।"[4]

"मिथ या नाटक सामाजिक सत्य की अभिव्यक्ति करता है; मानव की जिज्ञासा वृत्ति का उद्‌घाटन जो उसके व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर किया जाता है ।"[5]

युंग ने मिथक को व्यक्ति और समाज को परस्पर संग्रथित करनेवाले माध्यम के रूप में स्वीकृति दिखाई है।'[6]

' 'मिथक किसी देवता या दिव्य आत्मा के कार्यों का लेखा जोखा है।'[7] "मिथक अथवा पौराणिक कथाएँ मनुष्य की अपूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति है।"[8]

"मिथक गुप्त रहस्य को प्रकाशित करनेवाला तथा मनुष्य के लिए पारलौकिक आदर्शों का प्रतीक है ।"[9]

---

1. Rene Wallek, 'Theory of literature' P. 192
2. 'मिथ एण्ड रिएल्टी' पृ. 5 Mirci at Eliade
3. लेविस स्पेन्स-इन्ट्रोडक्शन टु माइथालजी पृ.. 21
4. फ्रेज़र फिलासफी ऑव प्रिमिटीव मैन
5. Myth or drama expresses a social truth, a truth about the instincts of man as they fare, not in biological or individual experience, but in associated experience - Illusion and Reality - A study of the sources of poetry - Christopher Caudwell - P. 22
6. The intergration of the personality. C.G. Jung. P.53
7. ए. शार्टर A shorter Vo. 1. I oxford Dictionary.
8. I.A. Richards, Coleridge on imagination P. 71
9 ग्रिम्स ऑफ फेयरी टेल्स परिशिष्ट टी.एस. इलियट जोसफ कैम्पवेल

हिन्दी समालोचकों ने पाश्चात्य विद्वानों की विचारधारा से प्रभावित होकर मिथक का विवेचन विश्लेषण किया है । डॉ. राम अवध द्विवेदी, डॉ. रमेशकुंतल मेघ, डॉ. दिनेश्वर प्रसाद, डॉ. सत्येन्द्र आदि विद्वानों के नाम इसी कोटि में आ सकते हैं ।

मिथक की उत्पत्ति

संसार में मानव जीवन के प्रारंभ से ही मिथक की उत्पत्ति हुई । मानवसमाज के विकास के साथ मिथक भी विकसित हुआ । मिथक ने मानव की अनुभूतियों की सृष्टि की । कालान्तर में मानव की विचारधाराओं में परिवर्तन आये । मिथक ने उन परिवर्तनों को अपने में समाहित कर लिया ।

मिथक का सृष्टिकर्ता आदिम मानव था । प्रकृति के अलौकिक और आश्चर्यजनक कार्यव्यापार को देखकर आदिम मानव के मन में उत्पन्न विशिष्ट अनुभवों से मिथकों का आविर्भाव हुआ । अर्थात् आदिममानव की कल्पना, अनुभूति एवं सार्वभौम जीवन को समझने की चेतना से ही मिथक का जन्म हुआ । आदिम युग में जब से मानव ने सृष्टि और विनाश संबन्धी बदलते हुए प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आकर्षित, भयभीत और जिज्ञासा से प्रेरित होकर अपने बुद्धि वैभव से, भावनाओं से अपने मन में संचित अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की तब से मिथकों का उदय हुआ ।

कुछ विद्वान मिथक का आविर्भाव पाश्चात्य देशों में मानते हैं । इसका प्रमाण ईसा से छठी शताब्दी पूर्व पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में मिलता है । युंग के मतानुसार मिथक अवचेतन मस्तिष्क में आद्यबिम्बों के रूप में विद्यमान रहते हैं, जो बाह्य रूप में विभिन्न कथाओं के माध्यम से प्रकट होते हैं । कुछ लोग मिथकों का स्रोत बाह्यजगत को मानते हैं तो कुछ मानव के

अन्तरजगत की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को मिथक मानते हैं । इसप्रकार बाह्यजगत और आन्तरिक जगत दोनों मिथक की उत्पत्ति में कार्य करते हैं । बाह्यजगत के अन्तरगत प्रातःकालीन सूर्य, शीतलता प्रदान करनेवाला चन्द्रमा, आसमान में टिमटिमाते सितारे, शीतल पवन, तूफान, बादल, बिजली की चमक आदि अनेक प्राकृतिक तत्व आते हैं । आदिम मानव ने इन प्राकृतिक तत्वों की परिभाषा अपने ढंग से और अपनी भाषा से दी । इनसे मिथकों का जन्म हुआ ।

आन्तरिक तत्व के अन्तरगत आदि मानव की अनेक मानसिक प्रवृत्तियाँ, जिज्ञासावृत्ति, कल्पनाशीलता, भय तथा आनन्द आते हैं । इन सभी मनोवृत्तियों ने अनेक प्रकार की मिथकीय अवधारणाओं को जन्म दिया है । आदिम मानव ने अपने मन में निहित भावों की अभिव्यक्ति के लिए सबसे अधिक संप्रेषणीय माध्यम के रूप में मिथक को स्वीकार कर लिया ।

अधिकांश मिथकीय कथाओं के मूल में प्रकृति ही है । मैकाडानेल ने वैदिक मिथकों का अध्ययन करते समय कहा है कि :"वैदिक देवता प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकरण हैं ।"[1] मैक्समूलर और मैलिनोस्की मिथकों की उत्पत्ति सूर्य से मानते हैं । मौलिनोस्की इसमें चन्द्रमा को भी प्रधानता देते हैं । एन्ड्रू, लैंग, लेविस स्पेन्स, मिर्सिया इलियड जैसे विद्वानों ने मिथकों की उत्पत्ति के मूल में अनुष्ठान को माना है । अनुष्ठानों की व्याख्या से मिथकों का सृजन हुआ । ऐतिहासिक घटनाएँ और नैतिक चेतना ने भी मिथकों की सृष्टि में सहायता प्रदान की । फ्रायड ने मिथक के मूल में ओडिपस ग्रंथि की प्रतिष्ठा की । भारतीय चिंतक मिथकों का संबन्ध देवविद्या से मानते हैं ।

भारतीय मिथक परंपरा का श्रीगणेश ऋग्वेद से हुआ । वेदों से लेकर उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध तथा जैनधर्म के साहित्य में भारत के मूलभूत मिथक विद्यमान हैं ।

---

1 'वैदिक माइथालजी" मैकडानेल पृ. 2

भारतीय परंपरा में 'मिथ' के दो स्रोत हैं मौखिक परंपरा और लिपिबद्ध साहित्य । मौरिवक परंपरा क्षेत्रीय देवीदेवताओं से संबन्धित है । लिपिबद्ध मिथ अनेक प्राचीनग्रन्थों में उपलब्ध है । ऋगवेद के उपरान्त वेदों की व्याख्या से निर्मित ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों में इन मिथों का रूप विकसित होता है । वैदिककाल के बाद रामायण और महाभारत युग था, इसके बाद पौराणिक काल अर्थात् मध्ययुग में अवतारवादी अवधारणा का जन्म हुआ । विदेशी आक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न धार्मिक कट्टरता के कारण मिथों के स्वरूप में परिवर्तन आता है और पौराणिक साहित्य में मिथ काव्याबद्ध अन्योक्ति का रूप ग्रहण कर लेते हैं ।

डॉ. नगेन्द्र की राय में "मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है । मिथक की रचना उस समय हुई जब मानव और प्रकृति के बीच की विभाजक रेखाएँ स्पष्ट नहीं थीं, दोनों एक सार्वभौम जीवन में सहभागी थे । वे परस्पर सहयोग एवं संधर्ष के सूत्रों में बँधे हुए थे और चेतन मानव का मन अज्ञात रूप से प्रकृति की घटनाओं को अपने जीवन की घटनाओं तथा अनुभवों के माध्यम से समझने का प्रयास करता था । समष्टि मन द्वारा प्रकृति के तत्वों और घटनाओं के मानवीकरण की यह अचेतन प्रक्रिया ही मिथक रचना का मूल है ।"[1]

निर्मलवर्मा मिथकों की उत्पत्ति के संबन्ध में इसप्रकार बनाते हैं "ऐतिहासिक सभ्य मनुष्य की यह पीड़ा कि वह दूसरों से भिन्न या उनके विरुद्ध है उस प्रागैतिहासिक मनुष्य की पीड़ा से एक गहरे अर्थ में अलग हो पाती है, जो अपने को प्रकृति के समक्ष तो अकेला पाता है, किन्तु अपने भीतर अकेला महसूस नहीं करता । वास्तव में मिथकों का जन्म ही इसलिए हुआ था कि वे प्रागैतिहासिक, मनुष्य के उस आघात और आतंक को कम कर सकें, जो उसे प्रकृति से सहसा अलग होने पर महसूस हुआ था ।" (2)

---

1 'डॉ. नगेन्द्र ग्रन्थावली खण्ड 3' पृ. 239

2. 'कला का जोखिम'- निर्मलवर्मा -पृ. 15

"मिथक एक ही समय में मनुष्य के अलगाव को प्रतिबिम्बित करते हैं, और उस अलगाव से जो पीड़ा उत्पन्न होती है, उससे मुक्ति भी दिलाते हैं । प्रकृति से अभिन्न होने का नॉस्टाल्जिया, प्राथमिक स्मृति की कौंध, शाश्वत और चिरंतन से पुनः जोड़ने का स्वप्न ये भावनाएँ "मिथक' को संभव बनाने में सबसे सशक्त भूमिका अदा करती हैं ।"[1]

कुछ चिंतकों ने मानवसंस्कृति की विशेष स्थिति की ही रचना के रूप में मिथक को मान लिया । मानव विज्ञान के पिता टायलर ने उस स्थिति को मिथक सर्जक युग कहा । इनसे प्रभावित होकर फ्रेज़र ने मानव संस्कृति मात्र के विकास को तीन युगों में विभाजित किया जादू का युग, धर्म का युग और विज्ञान का युग । जादू के युग में मनुष्य प्रकृति की सजीवता में विश्वास रखते थे । इसी विश्वास ने मिथकों को जन्म दिया । "दैनंदिन अनुभव के तथ्यों को मिथकों में रूपान्तरित करनेवाला सर्वप्रमुख कारण समस्त प्रकृति की सचेतनता है जिसका सर्वोच्च रूप है मानवीकरण" [2] टायलर और फ्रेज़र की तरह लेवी ब्रूल और दुर्खीम ने भी मिथक युग की कल्पना की । जर्मन मनोवैज्ञानिक वुण्डट ने भी मानवजाति के विकास को तीन क्रमिक युगों में विभाजित किया है टोटमयुग, वीरयुग और विज्ञानयुग। टोटम युग में देवता, दानव और अन्य चमत्कारपूर्ण शक्तियों के मिथक विकसित हुए । वीरयुग में आधि भौतिक शक्तियों और जादू की सहायता से अद्‌भुत कृत्य करनेवाले संस्कृतिक नायकों के मिथक हुए । विज्ञानयुग में मिथक का विकास अवरुद्ध हो गया ।

मिथक के भेद

मिथक का प्रचार-प्रसार बड़ा व्यापक और उसका क्षेत्र सीमातीत है । मिथक की इस असीमित और व्यापक परिधि में ज्ञान-विज्ञान आदि सभी से संबन्धित विषय आते हैं ।

---

1 'कला का जोखिम' निर्मलवर्मा पृ. 15

2. 'प्रिमिटीव कल्चर प्रथम भाग' पृ. 285

''एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स' में श्री. इ.ए. गार्डनर ने मिथकों को बारह वर्गों में विभाजित करते हुए इसके विस्तृत क्षेत्र को समाहित करने की चष्टा की है ।

1 ऋतुपरिवर्तन एवं अन्य प्राकृतिक परिवर्तनों से संबन्धित मिथक

इसमें विभिन्न ऋतुओं का आगमन निश्चित क्रम से कैसे होता है ?

सूर्य चन्द्र, पृथ्वी आदि कैसे एक दूसरे की परिक्रमा करते हैं आदि का वर्णन संबन्धी मिथक है ।

2. अन्य प्राकृतिक तत्वों से संबन्धित मिथक-यह अग्नि, जल, वायु सरिता आदि तत्वों से संबन्धित मिथक है ।

3. विशिष्ट प्राकृतिक तत्वों से संबन्धित मिथक

इसके अन्तर्गत भूचाल, ज्वालामुखी, प्रलय आदि विशिष्ट असामान्य प्राकृतिक तत्वों से संबन्धित मिथक आते हैं ।

4. सृष्टि उत्पत्ति संबन्धी मनु आदि आदि मानव की उत्पत्ति संबन्धी मिथक है । 'कामायनी' काव्य इसके लिए उत्कृष्ट उदाहरण है ।

5. देवोत्पत्ति संबंधी मिथक इसमें सरस्वती, लक्ष्मी, शिव, गणेश आदि देवताओं के जन्म से संबन्धित मिथक है ।

6. मानव एवं पशु उत्पत्ति संबन्धी मिथक मानव और पशुओं का जन्म कैसे होता है, प्रस्तुत विषय से संबन्धित मिथक है यह।

7 रूपान्तरण एवं आवागमन संबन्धी मिथक में किस प्रकार एक योनि से दूसरी योनि में जाकर विभिन्न रूप धारण करता है, इसका परामर्श इसकी विशेषता है ।

8. चरितनायक, परिवार एवं राष्ट्रसंबन्धी वीरनायकों के जन्म संबन्धी मिथक इसी वर्ग में रख सकते हैं ।

9 मनुष्य से अपने जीवन को शान्तिपूर्ण बनाने के लिए बनाए हुए सामाजिक संस्थाओं एवं आविष्कारों से संबन्धित मिथक ।

10. मृत्यु एवं स्वर्ग-नरक विषयक मिथक-मृत्यु के बाद आत्मा की स्थिति, आत्मा किस स्थान पर अर्थात् स्वर्ग या नरक जाती है इसका रहस्योद्घाटन इसमें किया जाता है ।

11 दानवों से संबन्धित मिथक दानवों से संबन्धित पौराणिक गाथाएँ इसके अन्तर्गत आती हैं रावण आदि असुरों से संबन्धित कथाएँ इसकेलिए उत्तम उदाहरण हैं ।

12. प्रख्यात एवं ऐतिहासिक घटनाओं से संबन्धित मिथक ऐतिहासिक घटनाओं से संबन्धित विभिन्न पौराणिक कथाएँ इसके अन्तर्गत आती हैं । [1]

इ. ए. गार्डनर के इन 12 प्रकारों को डॉ. नगेन्द्र ने अपने तीन भेदों में समेट लिया है । डॉ. नगेन्द्र ने स्थूल रुप से मिथक के तीन प्रकारों का वर्णन किया है "(1) सृष्टि संबन्धी (2) प्रलय संबन्धी और (3) देवताओं के प्रणयाधार से संबन्धित मिथक ।" [2]

यूनानी भाषा के प्रोफसर एच.जे. रोज़ ने मिथक को सामान्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया है (1) सृष्टि संबन्धी (2) प्रलय संबन्धी और (3) देवताओं के प्रणयाचार संबन्धी । विषय के अनुसार मिथकों के दो और भेद हैं (1) प्राकृतिक मिथक (2) धार्मिक मिथक। सर्जन प्रक्रिया के अनुसार दो भेद हैं (1) मौलिक सामूहिक अचेतन की सृष्टि (2) आनुषंगिक जिनकी रचना वैयक्तिक अचेतन या अवचेतन के द्वारा होती है । प्राचीन यूनानी और हीब्रू काव्य के मिथक मौलिक मिथक हैं जबकि मिल्टन, शेली, येट्स, इलियट आदि कवियों के काव्य मिथक अवांतर मिथक हैं ।

---

1 'एनसैक्लोपीडीया ऑफ रिलीजियन एण्ड एत्तिक्स' इ.ए गार्डनर वोलियम 9 पृ.सं. 118-120

2. डॉ. नगेन्द्र 'मिथक और साहित्य' पृ. 18-22

मिथक का समतुल्य एक कथा रूप है लोकगाथा या लोककथा । मैलिनोस्की ने इसे भी मिथक का एक भेद माना है । किन्तु अधिकांश विशेषज्ञ दोनों के स्वरूप और आत्मा में निश्चित अंतर मानते हैं । गोजा रहीम के अनुसार यह अंतर इस प्रकार है

मिथक के पात्र प्रायः दैविक हैं और लोककथा के पात्र प्रायः मानवीय ही होते हैं ।

साहित्येतर विषयों से मिथक का संबन्ध

मिथक का साहित्य के अलावा अन्य विधाओं जैसे देवविद्या, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषाविज्ञान, नृविज्ञान, इतिहास आदि से गहरा संबन्ध है ।

देवविद्याः- मिथक का मूलसंबन्ध देवविद्या से है और पश्चिम के विद्वानों ने देवविद्या की शब्दावली में मिथक की व्याख्या की है

"मिथक शब्द का प्रयोग देवी देवताओं अथवा अतिप्राकृत पात्रों और मानव-जीवन के अनुभव से परे, किसी (सुदूर) काल की असाधारण घटनाओं एवं परिस्थितियों से संबद्ध आख्यानों के लिए होता है ।" [1] **मनोविज्ञान** मनोविज्ञान मिथक को प्राकृतिक घटनाओं की वस्तुपरक व्याख्या नहीं बुद्धि संगत व्याख्या अथवा उन्हें मान्यता प्रदान करने का प्रयास मानता है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड और उनके अनुयायी मिथक को 'इच्छा पूर्ति का एक विधान" मानते हैं । फ्रायड की राय में जिस प्रकार मनुष्य अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति स्वप्नों के द्वारा करते हैं उसी प्रकार आदिम मानव अपनी रागद्वेष जन्य इच्छाओं, प्रेमजन्य वासनाओं, मृत्यु जन्य संत्रास, कुण्ठाएँ आदि भावनाओं की पूर्ति मिथकों के द्वारा करते हैं । फ्रायड ने विभिन्न मिथकों के मूल में दमित कामेच्छाओं को ढूँढ निकाला है और उन्हें विशिष्ट मिथकीय

---

1 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका -भाग 12' पृ 793

विशेषणों से विभूषित किया है । यथा: "औडिपस काम्प्लेक्स, एलेक्ट्रा काम्प्लेक्स, मेडा काम्प्लेक्स, तथा फ्रेडा काम्प्लेक्स ।" (oedipus, Electra, Meda and Freda complex) ये विभिन्न नाम पौराणिक नाम हैं जिनसे संम्बद्ध कथाएँ भी हैं, जिन्हें फ्रायड ने दमित कामभावना की अभिव्यक्ति के आलोक में देखा है । उन्होंने धर्म को भी दमित कामभावनाओं की अभिव्यक्ति मान लिया है । इसके संबन्ध में उनका कथन है-" धर्म, नौतिकता तथा समाज एवं कला सबकी उत्पत्ति ओडिपस काम्प्लेक्स से हुई है ।"[1] लेकिन यह धारणा अतिवादी है ।

फ्रायड के अनुयायी थे सी.जी. जुंग; लेकिन फ्रायड की अतिवादी धारणा के वे बिलकुल विरोधी थे । उन्होंने मिथक का संबन्ध मन से जोड़ लिया है । युंग की राय में व्यक्ति का चेतन मन मिथक की रचना नहीं कर सकता; व्यक्तिगत अचेतन में भी इसकी क्षमता नहीं है; केवल सामूहिक अचेतन ही मिथक की सृष्टि कर सकता है । यह सभी में समान अर्थात् सार्वभौम और सार्वकालिक होता है ।

"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पौराणिक कथाओं में मनुष्य के स्थायी भावों, उसकी आकांक्षाओं तथा कार्य पद्धति का प्रकाशन होता है।"[2]

डॉ. शंभुनाथ के अनुसार मनोविज्ञान ने मिथकों को नया जीवन दिया है "मानसिक जीवन की गहराई में प्रवेश करने का प्रयास मनोविज्ञान द्वारा जितना अधिक होता है, यह प्रयास पुराकथाओं की व्याख्या की ओर ले जाता है । मनोवैज्ञानिक आलोचक मिथक को अज्ञात मन की प्रतीकात्मक भाषा से जोड़कर कहते हैं कि मिथकों में मनुष्य के चिरस्थायी भावों, आकांक्षाओं तथा कार्य पद्धतियों का प्रकाशन होता है । इनका अध्ययन मानव प्रकृति में होता हैं । इनमें कुछ नैसर्गिक होते हैं, कुछ दमित इच्छाओं के प्रतीक । मिथक के मनोवैज्ञानिक आलोचकों की कमज़ोरी है कि वे आद्यबिम्बों के आंतरिक भावात्मक संसार की ही उद्घोषणा करके रह जाती हैं ।" [3]

---

1 'टोटेम एण्ड टैबू' सिंगमंड फ्रायड, पृ. 7

2. डॉ. पद्मा अग्रवाल, 'प्रतीकवाद' पृ. 197

3. डॉ. शंभुनाथ 'मिथक और आधुनिक कविता' पृ. 49

मिथक और दर्शनशास्त्र

मिथक और दर्शनशास्त्र में विरोध ज्यादा है । नगेन्द्र के अनुसार दर्शनशास्त्र और मिथक विद्या के प्रयोजन एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं जिसके संबन्ध में डॉ. नगेन्द्र का कथन इस प्रकार है "दर्शनशास्त्र का, विशेषतः उसके ऐसे संप्रदायों का, जहाँ तत्वज्ञान का आधार अनुभूति न होकर मीमांसा तथा तर्कप्रमाण है, मिथक विद्या के साथ विरोध है ।" नगेन्द्र की दृष्टि में "मिथक या तो कपोलकथा या दंतकथा मात्र है, या आदिम युग के ऐहिक एवं जैविक तथ्यों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं जिनका ऐतिहासिक व्याख्या के द्वारा उद्‌घाटन किया जा सकता है । आत्मवादी दर्शनों में भी जहाँ बुद्धि प्रामाण्य प्रमुख आधार हैं उदाहरण के लिए वेदान्त, सांख्य, न्याय, मीमांसा आदि में अथवा एकेश्वरवाद में मिथक का ग्रहण अन्योक्ति रूपक के अर्थ में ही हो सकता है और हुआ है । केवल रहस्यवाद तथा सगुणवाद इसके अपवाद हैं, किन्तु वे दर्शनशास्त्र की कोटि में नहीं आते।" [1]

मिथक केवल मूर्त कथारूप है, रूप ही उसका अर्थ है; लेकिन दर्शन का लक्ष्य है-सत्य का संधान । दर्शन केलिए कथा और उसमें निहित विचार का पृथक् अस्तित्व है जिनमें परस्पर व्यंजक-व्यंग्य संबन्ध है ।

जब दर्शन में कथा रूप से विचार तत्व को पृथक करने का प्रयत्न किया गया तो दर्शनशास्त्र का जन्म हुआ । मिथक स्वतः प्रमाण है; जबकि दर्शन उसमें निहित तत्व को ही प्रमाण मानता है । इस प्रक्रिया से दर्शन ने मिथक को अन्योक्ति रूपक (एलिगरी) के अर्थ में स्वीकार किया । दर्शन की शब्दावली में मिथक का अर्थ है "एक ऐसी काल्पनिक कथा जो जीवन और जगत से संबद्ध विचार विशेष की व्यंजना करती है ।"[2]

---

1. डॉ. नगेन्द्रः 'मिथक और साहित्य' पृ. 16-17
2. डॉ. नगेन्द्रः 'मिथक और साहित्य' पृ. 17

अर्नस्ट कैसिरर ने भी मिथक का अध्ययन दार्शनिक चिन्तन के आधार पर किया है । उन्होंने ज्ञान मीमांसा के संदर्भ में मिथकों पर भी विचार किया है । यथार्थ वादियों ने मिथक को ज्ञान की सीमा से बहिष्कृत कर उसे अंध विश्वास, मन की मौज तथा अज्ञान से उत्पन्न माना है । लेकिन कैसिरर इसका विरोध करते हैं ।

"कैसिरर की तरह सूसान के. लैंगर के लिए भी मिथक का मूल्य गत्यात्मक है किन्तु उसका उद्देश्य दार्शनिक है । उनके अनुसार मिथक तत्व मीमांसा का आदितम रूप है, सामान्य विचारों का प्रथम आमूर्तीकरण है ।"[1] "कहीं कहीं तो मिथक के माध्यम से ही दार्शनिक विचारों का क्लिष्ट रूप सर्वसुलभ हो पाया है । नचीकेता के माध्यम से संसार की निस्सारता, मुंडकोपनिषद् में पक्षी युगल के माध्यम से जीव और आत्मा, देवासुर संग्राम के माध्यम से हृदयजन्य सुवृत्तियों एवं कुवृत्तियों का संघर्ष सहज रूप से अंकित है।" [2]

मिथक और भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान के आचार्यों का मत है कि भाषा का मूल रूप मिथकीय ही था । मिथक विद्या की तरह आदिम भाषा में भी प्रतीकात्मक निरूपण का उपयोग किया जाता था । [3]

मैक्समूलर ने मिथक को भाषा की विकृति या रोग माना है । मिथकों का संसार भ्रम का संसार है । मूलर के अनुसार इस भ्रम का मूल भाषा में निहित है, जो सदैव मानव मस्तिष्क के साथ खिलवाड करता रहता है ।

---

1 सूसान के. लैगर, फिलासफी इन ए न्यू की, पृ. 9

2. 'मिथक उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य' डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति पृ. 11

3. 'डॉ. नगेन्द्र ग्रन्थावली खण्ड 2' पृ. 246

नर्थप फ्राइ ने मूलर की "विकृति' शब्द के स्थान पर विस्थापन शब्द का प्रयोग किया है । मिथक में काल्पनिक संदर्भों के द्वारा अभिधार्थ का विस्थापन हो जाता है उदाहरण के लिए "उषा के बाद सूर्य का उदय होता है ।" इस सामान्य कथन के स्थान पर मिथककार कहता है: सूर्य उषा का पीछा करता है ।"[1]

"डॉ. नगेन्द्र ने भाषा विज्ञान के साथ मिथक का आदि संबन्ध मानते हुए भाषा विज्ञान में मिथक विद्या का अनिवार्य योगदान स्वीकार किया है ।" [2]

शंभुनाथ लिखते हैं कि ''भाषा और मिथक का स्रोत एक है जनसमाज । भाषा के अस्तित्व ग्रहण करने की प्रक्रिया में मिथक भी बने । आदिम अवस्था में मानवीय ज़रूरतों एवं तक्लीफों को व्यक्त करनेवाली ऊबड़रवाबड़ ध्वनियाँ निश्चित अर्थ व्यवस्था से जुड़कर शब्दों में परिवर्तित हो गयीं । युग की मिथकीय संवेदना इन शब्दों से भिन्न न थी ।"[3] शंभुनाथ के अनुसार भाषा रूपी खेत में मिथक की उपज होती है । समाज अपनी आवश्यकतानुसार फसल तैयार करता है ।

मिथक भाषा की क्रियाओं द्वारा निश्चित तथा विनियोजित होता है । "मिथक भाषा है, भाषा का एक प्राचीन रूप ।" [4]

मिथक और नृविज्ञान

फ्रेज़र ने अपने शोध में स्पष्ट किया है कि "मानव और प्रकृति के बीच सहभागिता या सहज सहानुभूति का सिद्धान्त दो प्रकार से कार्य करता है पहला, सामान्य के द्वारा और दूसरा पूर्व संपर्क द्वारा" [5]

---

1 'डॉ. नगेन्द्र ग्रन्थावली खण्ड 2' पृ. 246
2. डॉ. नगेन्द्रः 'मिथक और साहित्य' पृ. 15-29
3. डॉ. शंभुनाथः 'मिथक और आधुनिक कविता' पृ. 68
4. चिप्स फ्राम दी जर्मन वर्कशाप पृ. 146
5. दृष्टव्य डॉ. नगेन्द्र 'मिथक और साहित्य' पृ. 14-15

फिलिप ने उक्त दो सूत्रों के अतिरिक्त तीसरा सूत्र 'पूरकता' को भी स्वीकार किया है ।

"प्रकृति की गतिविधि उसकी अपनी जीवन विधि के समान होने के अतिरिक्त पूरक और विरोधी भी है।"(1)

डॉ. नगेन्द्र ने नृविज्ञान के विभिन्न आचार्यों को अध्ययन करने के बाद यह स्वीकार किया है कि "मिथकों की सृष्टि में ये तीनों संबन्ध सूत्र कार्य करते हैं और इनके संदर्भ में उनकी व्याख्या युक्तियुक्त रूप में की जा सकती है ।"(2)

वे इस प्रकार कहते हैं "आदिम युग में जब जागरूक मानवचेतना का प्रकृति के साथ संपर्क और संघात हुआ तो उसके लिए प्रकृति के क्रियाकलाप को समझने की केवल एक ही विधि संभव थी, और वह थी अपने जीवन की घटनाओं तथा मानसिक अनुभवों के आलोक में उनकी व्याख्या करना । अतः उसने एक ओर प्रकृति के तत्वों पर अपने राग-द्वेष, प्रेम, भय, प्रणति, क्रोध, विस्मय आदि मनोभावों का और दूसरी ओर प्राकृतिक घटनाओं पर अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं जन्म, मरण, प्रजनन, संघर्ष आदि का सहज रूप से आरोपण करना आरंभ कर दिया । इस अनायास मानवीकरण की प्रक्रिया से पुराणविद्या और देवविद्या का जन्म हुआ । प्रकृति के प्रमुख तत्व-सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश आदि की देवों के रूप में प्रतिष्ठा हुई, जो एक ओर मानवीय भावनाओं और दूसरी ओर प्रकृति की असीम शक्ति से संपन्न थे । उधर प्रकृति की उद्भव, विकास, विनाश, ऋतुपरिवर्तन आदि घटनाएँ मानव-जीवन की घटनाओं के रूप में निरूपित की गयीं।" (3)

मिथक और इतिहास

अतीत या प्राचीन काल की घटनाओं का वर्णन है इतिहास । ज्ञात घटनाओं को सार्थक, सुव्यस्थित और सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत करना और लोगों को इसका अवबोध कराना ही

---

1 दृष्टव्य डॉ. नगेन्द्र 'मिथक और साहित्य' पृ. 14-15

2. वही पृ. 14

3. वही पृ. 11-13

इतिहास का उद्देश्य है । इस दृष्टि से हम मिथक को देखें तो हम समझ सकते हैं कि मिथक का इतिहास के साथ गहरा संबन्ध है । मनुष्य के विकास के साथ साथ मिथक के स्वरूप में भी बदलाव आता है । इसी कारण किसी भी जाति विशेष की सम्मिलित संस्कृति का, इतिहास का सही विश्लेषण करने के लिए मिथकों का अध्ययन आवश्यक है । डॉ. शंभुनाथ का मानना है कि "ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण के बहुत से आयाम मिथकों की देन हैं, खासकर सांस्कृतिक आयाम। इतिहास की छिपी वस्तु की खोज ज़रूरी है । वह इसलिए कि मिथकों से कई विलुप्त युगों की जीवन पद्धति और संवेदनाओं को समझने में मदद मिलेगी।" [1] डॉ. शंभुनाथ के मतानुसार "इतिहास मिथक का विज्ञान है और मिथक इतिहास की संवेदना है।"[2] वे आगे लिखते हैं "इतिहास की बहुत-सी ज़रूरी सामग्रियाँ इतिहास-लेखन में शामिल नहीं हो पातीं, विज्ञान भी वहाँ पहूँचने से रह जाता है; राजनीति भी रोडा अटकाती है, पर मिथक उन सबको वाणी देता है ।"[3]

निष्कर्ष रूप से कहें तो देवविद्या, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषा विज्ञान, नृविज्ञान, इतिहास आदि साहित्येतर विधाओं से मिथक का संबन्ध सुदृढ है ।

साहित्य में मिथक :-

मिथक का साहित्य के साथ सुदृढ, अटूट और जन्मजात संबन्ध है । दोनों अन्योन्याश्रित हैं । मिथक आदिकालीन मानव की इच्छाओं, भावनाओं आदि की अभिव्यक्तिमात्र नहीं उनकी सिसृक्षा की भी अभिव्यक्ति है । साहित्य भी इस तरह की मानसिक वृत्तियों की अभिव्यक्ति करता है । इस प्रकार देखें तो दोनों का घनिष्ठ संबन्ध है । मिथक और साहित्य दोनों में विद्यमान विशेषताएँ भी एक हैं । उदाहरण के लिए भावात्मकता, कल्पनाशीलता, प्रतीकात्मकता

---

1 डॉ. शंभुनाथ 'मिथक और आधुनिक कविता' पृ. 33

2. वही पृ. 33

3. वही पृ. 37

आदि गुण दोनों में उपलब्ध हैं । पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य शास्त्र मिथकीय संवेदना से भरे पड़े हैं । किसी भी देश या भाषा का साहित्य भी इससे वंचित नहीं ।

भारत ऋषिमुनियों का देश है । इस भव्य देश में अनेक महान् कवि अवतरित हुए। उन्होंने अपनी बुद्धि और भावनाओं के अनुरूप अनेक श्रेष्ठ महाकाव्यों की रचना की । इनके सहारे इन्होंने शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन किया । मिथक साहित्य के लिए अत्यन्त अपेक्षित है । वैदिक मंत्र, रामायण, महाभारत, रघुवंश, कुमारसंभव, रामचरितमानस आदि से लेकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जयशंकर प्रसाद, वी.एस. खाण्डेकर आदि की रचनाएँ मिथकाश्रित हैं । होमर, मिल्टन, शेली जैसे पाश्चात्य कृतिकारों की रचनाएँ भी इसके अन्तर्गत आती हैं । पहले कुछ प्राचीन रचनाएँ मात्र मिथकाश्रित थीं; फिर आधुनिक साहित्य के कवियों ने भी मिथकों को अपनाया। उन्होंने पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं को नवीन दृष्टि से देखा परखा और इन्हें अपने भावनानुकूल प्रस्तुत भी किया । वैज्ञानिक प्रगति के साथ साथ दुनिया में जब मानवमूल्यों की कमी हुई तब प्राचीन संस्कारों की पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता हुई । आधुनिकयुग के कवियों ने मिथक के माध्यम से अपने भावों, विचारों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की । वैज्ञानिक युग में बौद्धिकता और वैज्ञानिकता का प्रभाव ही अधिक है; फिर भी अलौकिक या काल्पनिक कथाओं का खास स्थान है । वे युगानुकूल भी हैं ।

साहित्य सृष्टि के दो अभिन्न सक्रिय तत्व हैं सत्य और कल्पना । इन तत्वों में पुराणकथा, आद्यबिम्ब, एवं फैंटसी का प्रमुख स्थान है । प्राचीन साहित्य में प्राप्त देवता, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि के संदर्भ मिथक के अंग बन गए हैं । पौराणिक, निजंधरी एवं दंतकथाओं के रूप में मिथक अब भी भाषा और साहित्य में जीवित हैं । अमरीका के कुछ समीक्षक मिथक को साहित्य का पर्याय मानते हैं ।

साहित्य और मिथक की रचनाप्रक्रियाओं में कई समानताएँ हैं । दोनों में कवि, साहित्यकार या मिथककार अपने अचेतन में संचित भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं । भारत में वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक के कवि और पश्चिम में यूनानी भाषा के कवि इन सबकी मिथक रचना की सृजनात्मक प्रक्रियाओं में अन्तर नहीं है । प्रत्येक युग के कवि ने अपने ढंग से मिथक की रचना की है । 'होमर ने 'इलियड या ओडिसी' में वर्जिल ने 'ईनीड' में दांते ने 'डिविनिओ कामेडिया, मिल्टन ने 'पैराडाइज़ लोस्ट' शेली ने 'प्रोमिथिअस अनबांउड' और इलियट ने 'वेस्टलैंड' में अपने देशकाल के रागात्मक उपकरणों और भाषिक साधनों के आधार पर एक प्रकार से मिथक रचना की है ।[1] 'भारत में वैदिक कवि के सूक्तों में वाल्मीकि व्यास के रामायण-महाभारत में, कालिदास के "कुमारसंभव' तुलसीदास के 'रामचरितमानस' प्रसाद की 'कामायनी' और पंत के लोकायतन' में विभिन्न युगों के सामूहिक संस्कारों तथा भाषिक उपकरणों के अनुरूप प्रकारान्तर से मिथक सर्जना की एक निरंतर परंपरा व्याप्त है । इसप्रकार आदिम मिथकों से लेकर आधुनिक काव्यों तक सृजनात्मक प्रक्रियाओं में समानता है । इसकारण से चिंतक मिथक को साहित्य का समान धर्मी मानते हैं ।

तात्विक और स्वरूप की दृष्टि से दोनों में अनेक समानताएँ हैं । मनोविश्लेषणवादी फ्रायड की राय में मिथक और साहित्य के बीच जन्मजात संबन्ध है । वे दोनों को अवचेतन मन की उपज मानते हैं । फिलिप व्हील राइट के शब्दों में "मनुष्य की आदि भाषा काव्यमय रही है और इसका कारण यह है कि वह ऐसी चेतना की सहज अभिव्यक्ति है जिसे हम आधुनिक शब्दावली में मिथकीय मानते हैं ।"[2] साहित्य और मिथक दोनों मानव की समग्रचेतना की अभिव्यक्ति करते हैं । अर्थात् दोनों लोकमानस की अभिव्यक्ति करते हैं । दोनों चिरंतन सत्य और सामयिक सत्य का संगम तीर्थ है- अर्थात् दोनों युग का सत्य युगीन सत्य के साथ एकात्म होकर प्रकट होता है और स्पष्ट शब्दों में, मिथक और साहित्य दोनों ही मानवजीवन की सार्वभौम अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं ।[3]

---

1 'डॉ. नगेन्द्र ग्रन्थावली खंण्ड 3' पृ. 256

2. 'द्वंटिएथ सेंचुरी क्रिटिसिज़म' पृ 257

3. 'डॉ. नगेन्द्रग्रन्थावली' पृ. 258

दोनों प्रतीयमान सत्य के बाहक हैं । [1] साहित्य अवचेतन मन की इच्छापूर्ति का साधन मात्र नहीं, साहित्य में व्यक्तिगत चेतन का भी महत्व होता है । साहित्य में व्यक्तिगत चेतन और अवचेतन का महत्व होता है तो मिथक में सामूहिक अवचेतन की अभिव्यक्ति होती है । सौंदर्य की सृष्टि करना साहित्य का उद्देश्य है तो मिथक मूलतः जातीय विश्वास की अभिव्यक्ति का माध्यम है [2]

साहित्य का आरंभ ही मिथक से हुआ है । ऋग्वेद से लेकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य में मिथक उपलब्ध है । पुराण या पुरारव्यान मिथक का समानान्तर है । आधुनिक युग की समस्त पुराकथाएँ मिथकीय चेतना से ओतप्रोत हैं । भारतीय मिथक परंपरा का श्रीगणेश ऋग्वेद से हुआ । भारतीय आचार्यों ने मिथक के सहारे जन्म-मरण, द्वैत-अद्वैत, लौकिक-अलौकिक, आत्मा-परमात्मा आदि की विशद व्याख्या की है । साहित्य के साथ नृत्य, संगीत आदि कलाओं का आधार भी मिथक है । भरत के नाट्यशास्त्र भी मिथकीय संवेदना से भरपूर है । भरतमुनि और राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा में मिथक रचना का श्रीगणेश किया है । मिथकीय संवेदना में वस्तुसत्य भावसत्य के रूप में परिणत होता है । दोनों लोककल्याण की भावना से सिक्त हैं और जनसमुदाय की प्रगति के लिए समर्पित हैं । मिथक और साहित्य शाश्वत या नश्वर सार्वकालिक और सार्वभौमिक सत्य का उद्घाटन करते हैं । पाश्चात्य कवि शेली की कविता 'ओड टु, दि वेस्ट विंड' और शोकगीत 'एडोनिस' दोनों में और कीट्स की रचनाओं में मिथकीय प्रयोग यथेष्ट मिलता है । प्रयोगवादी कवियों ने मिथकीय रचनाओं में नवीनता ला दी ।

निष्कर्ष रूप से कहें तो साहित्य की विभिन्न विधाओं में मिथक का प्रयोग वहुल मात्रा में हुआ है । पहले काव्यों में, फिर नाटकों में, कथा साहित्य में और आखिरकार अन्य साहित्यिक विधाओं में मिथक के प्रयोग हुए । रिचर्ड चेज़ के अनुसार मिथक ही साहित्य है ।

---

1 'डॉ. नगेन्द्रगन्थावली' पृ. 259

2. वही पृ 261

हिन्दी साहित्य में मिथक

काव्य सृजन की प्रक्रिया में मिथक परोक्षतः विद्यमान रहते हैं । हिन्दी साहित्य के सभी युग मिथकीय संवेदना से परिपूर्ण हैं ।

आदिकालीन रासोसाहित्य की पुराकथाओं में तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का अंकन किया गया है और पुरागाथाएँ भी इसमें सम्मिलित हैं । भक्तिकालीन काव्य में कबीरदास जी ने प्रहलाद और नृसिंहावतार के माध्यम से मानवधर्म की स्थापना की और परब्रह्म परमेश्वर को जनमानस में प्रतिस्थापित किया । नारद, कृष्ण, शंकर आदि मिथकों के सहारे सन्त कबीर ने ऐतिहासिक परिवेश की निर्मिति की । 'कबीर ग्रन्थावली' इसकेलिए उत्तम उदाहरण है । सूफी कवियों में प्रमुख जायसी, मंझन, उसमान आदि ने आत्मा और परमात्मा के परस्पर प्रेम को अपने साहित्य में अंकितकर मिथक का निर्माण किया । सूफी कवियों ने परमात्मा के तीन रूपों या त्रिमूर्तियों ब्रह्मा, विष्णु और महेश को मिथक का आधार मान लिया । जायसी के 'अखरावट' 'पद्मावत' आदि इसकेलिए अप्रतिम उदाहरण हैं । यद्यपि जायसी मूलतः मुसलमान कवि हैं तो भी भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों को उन्होंने स्वीकार कर लिया है।

रामभक्ति संबन्धी सबसे श्रेष्ठ रचना वाल्मीकीकृत 'रामायण' महाकाव्य और तुलसीदास का 'रामचरितमानस' दोनों मिथकीय चेतना से ओतप्रोत हैं । 'रामचरितमानस में मर्यादापुरुषोत्तम राम को विष्णु, रघुपति, दशरथ नन्दन आदि नामों से अभिहित किया गया है । चंड, मुंड, महिषासुर आदि आसुरी पात्र मिथकीय गवेषणा को आधुनिकता का परिवेश प्रदान करते हैं जो तुलसीदास के नव्य चिन्तन का परिचायक है । कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने कृष्ण के परंपरागत मिथक को काव्य विषय बनाया । इस शाखा के और अष्टछाप के अग्रणी कवि सूरदास ने कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में तथा राधा को लक्ष्मी के अवतार के रूप

में प्रतिष्ठितकर मिथकीय परंपरा को परिपोषित किया । रीतिकाल के कवियों ने भी मिथक का प्रयोग अपने अपने ढंग से किया है । इस काल के सबसे श्रेष्ठ श्रृंगारी कवि बिहारीलाल ने कृष्ण-मिथक को गिरिधारी रूप में प्रस्तुतकर जनमानस में कृष्ण प्रेम जगाया ।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की वीरगाथाओं में चित्रित शौर्य प्रदर्शन मिथकीय परंपरा में हुआ है । बौद्धधर्म में वज्रयानतत्व का प्रचार प्रसार, जैन साहित्य में मुनियों के उपदेशात्मक वाणी, और नाथ पंथियों के हठयोग एवं वाममार्ग तथा तंन्त्र-मंत्र का विवेचन विश्लेषण आदि मिथकीय संवेदना से भरपूर हैं । नाथ पंथियों में गोरखनाथ विशेष सम्मान पाने योग्य हैं । निर्गुण काव्य धारा के भक्त कवियों ने ज्ञानमार्गी शाखा को अपनाकर अलौकिक मिथक को लौकिक जगत के अनुरूप प्रतिस्थापित किया । संत कवि कबीरदास निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के सर्वोत्कृष्ट समाज सुधारक थे जिन्होंने मिथक के माध्यम से एकेश्वरवाद की स्थापना कर समाज में प्रचलित कुरीतियों और अव्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठायी । उन्होंने विघटित एवं अव्यवस्थित समाज को संगठित करने के लिए प्रहलाद एवं नरसिंहावतार की पुराकथाओं में नई जान डाल दी । मिथकीय चेतना पर कबीर का असाधारण अधिकार था ।

निर्गुण भक्ति धारा की प्रेमाश्रयी शाखा का सूफी संप्रदाय पूर्व मध्ययुग में प्रचलित हुआ जिसके कवि जायसी, मंझन आदि हैं । प्रेम पीडा की अभिव्यक्ति करने में जायसी ज़्यादा सक्षम हैं और उनके काव्यों में यह सर्वत्र विद्यमान है जो पुराकथाओं पर आधृत है । जायसी ने हीरामन तोते के माध्यम से जीवात्मा का चित्रांकन कर मिथकीय चेतना का परिचय दिया है । परंपरागत मिथकों का प्रयोग करते हुए जायसी ने अन्योक्ति, समासोक्ति एवं रूपक के प्रयोग के द्वारा मिथकों में नव्य दृष्टि का संचार किया है । सूफी कवियों नें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति मिथकीय धरातल पर की है ।

सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा के कवियों के काव्यों में भी मिथकीय संवेदना का अजस्र प्रवाह है । इस शाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि गोस्वामी तुलसीदास ने राम के मिथक के द्वारा समाज को आदर्शोन्मुख किया । राम द्वारा किया गया रावण वध धर्म की अधर्म पर विजय है । हर एक को अपने कर्म का फल भोगना पड़ता है । इस तरह के मिथक आज भी प्रासंगिक हैं । परशुराम, विश्वामित्र, हनुमान आदि से संबन्धित मिथकों का प्रयोग ज़्यादह्तर तुलसी के काव्यों में मिलता है । इनके माध्यम से उन्होंने शील, मर्यादा, लोकमंगल और समन्वय की भावनाओं को जगाकर मानवमन को सचेत और सुदृढ किया ।

सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने परंपरागत मिथक को भिन्नभिन्न रूपों में स्वीकार किया है । समाज के उत्थान और सुधार में 'कृष्ण' के मिथक का योगदान महत्वपूर्ण है । अष्टछाप के अग्रणी कवि सूरदासजी ने कृष्ण मिथक को सर्वोत्कृष्ट स्थान प्रदान किया और समसामयिक संदर्भ में भी सूरदासजी की प्रासंगिकता अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कृष्ण भक्ति परंपरा आज भी मिथक के माध्यम से समाज में प्रचलित असंगतियों, विसंगतियों एवं कुरूपताओं से जूझकर समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है ।

वेदों से लेकर अपभ्रंश साहित्य तक प्रायः सभी काव्यग्रन्थों में काम, क्रोध, लोभ आदि की निवृत्ति हेतु मिथक प्रयुक्त किये गए हैं ताकि नैतिक मूल्यों को समाज में प्रतिष्ठित किया जा सके । भक्ति के विभिन्न रूपों की प्रतिष्ठा मिथकों के माध्यम से हुई । अवतारवाद इसका प्रमाण है ।

भक्तिकाल और रीतिकाल के संन्धिस्थल पर केशव, सेनापति, रहीम आदि कवियों ने श्रृंगारिक प्रवृत्ति को प्रमुखता दी । फिर भी राम-कृष्ण, सीता-राधा के स्वरूप को शक्ति पुंज के

रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । रीति काव्य धारा श्रृंगार, भक्ति और वीर रस का त्रिवेणी संगम है जौ मिथकीय चेतना से अनुप्राणित है ।

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवि दोनों की रचाओं में मिथकीय संवेदना दृष्टव्य है । सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए पर्याप्त गुरुभक्ति, सदाचार, आडंबरों का उन्मूलन, आत्मा-परमात्मा का मिलन आदि के मिथक उपर्युक्त रचनाओं में वर्तमान हैं । मिथक का संबन्ध ही इस तरह के जीवनादर्शों और मानवीय मूल्यों से होता है ।

आधुनिक हिन्दी काव्य में मिथक

आधुनिक काल में मिथकीय चेतना ने नये प्राण फूँक दिये । इसने एक नवीन धरातल ग्रहण किया । स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना, भारतीय संस्कृति की अभिवृद्धि, मानवता की प्रवृत्ति आदि ने मिथकीय तत्वों में नया प्रकाश डाल दिया । इस युग में मिथकीय चेतना दो धाराओं में प्रवृत्त हुई जिनमें एक का प्रतिनिधित्व कृष्ण मिथक और दूसरे का राम मिथक ने किया । द्विवेदी युग में ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं की अभिव्यक्ति राम और कृष्ण के मिथकों से हुई । समसामयिकता का बोध और आधुनिकता की प्रवृत्ति इन सब में मौजूद है । जयशंकर प्रसादजी से विरचित "कामायनी' समूल मिथकाश्रित है । पन्त के प्रबन्धकाव्यों में, अज्ञेय की कथात्मक कविता 'असाध्यवीण' में मिथकीय भावबोध भरा हुआ है । आधुनिक युग में मिथक ने फैंटसी (स्वप्नकथा) का रूप धारण कर लिया ।

भारतेन्दु युग की रचनाओं की विशेषताएँ हैं देश भक्ति, समाजसुधार, नारी जागरण, स्वाधीनता की ललक, धार्मिक असहिष्णुता आदि । द्विवेदी युग की मुख्य प्रवृत्ति है इतिवृत्तात्मकता । इन दोनों युगों में मिथकीय संवेदना का संचार भिन्न भिन्न रूपों में हुआ है । द्विवेदी युग के कवियों

में प्रसिद्ध महावीरप्रसाद द्विवेदी, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, बालमुकुन्दगुप्त आदि ने प्राचीन कथाओं को वर्तमान से जोड लिया । इनमें पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति दृष्टव्य है । 'प्रियप्रवास' में हरिऔध ने कृष्ण को समाज सेवी के रूप में चित्रित किया है । हरिऔध ने कृष्ण को आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है किसी अलौकिक देवी देवता के रूप में नहीं ।

द्विवेदी युगीन कवियों में सर्वाधिक मिथकीय चेतना की अभिव्यक्ति मौथिलीशरण गुप्त के काव्य में हुई है । मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' इसका अप्रतिम उदाहरण है । इसमें राम को मानव के रूप में गुप्तजी ने प्रस्तुत किया है । 'साकेत' की ऊर्मिला को नारी समाज के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है । गुप्तजी ने यशोधरा को चिन्तनशील और विवेकशील नारी के रूप में चित्रित किया है । पंचवटी की सीता समस्त लौकिक सुखों को त्यागकर विश्वबन्धुत्व की भावना को साक्षात् करनेवाली है । ' 'मैथिलीशरण गुप्त की चेतना बहुविध थी । उनके हृदय में एक ओर अपने युग की प्रासंगिकता का मोह था तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति का आग्रह था, तीसरी ओर पशुता की आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति के प्रति वितृष्णा तथा सामाजिकता से जुड़ी मानवीय चेतना का आग्रह था तथा चौथी विचारधारा नरनारायण के मिथक से प्रेरित थी । इन चारों कोणों से उन्होंने विभिन्न मिथक कथाओं को महाकाव्यों में अंकित किया।"[1] गुप्तजी की रचना 'नहुष' में चित्रित पात्र मानवोचित दुर्बलताओं का प्रतिनिधि है । काम, क्रोध और लोभ से समन्वित नहुष का पतन अन्त में होता है । गुप्तजी की रचनाएँ साकेत, यशोधरा, जयद्रथवध, पंचवटी आदि में भी चित्रित मिथक समाजोपयोगी है और अर्थपूर्ण है । समाज के उत्थान के लिए इसतरह के मिथक उपयोगी हैं। उन्होंने युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उपर्युक्त रचनाओं में पात्रों की निर्मिति की । सियाराम शरण गुप्त ने नकुल मिथक के माध्यम से आधुनिक युग की नीति शैली का रहस्योद्घाटन किया है ।

---

1 'मिथकीय समीक्षा' पशुपतिनाथ उपाध्याय पृ. 120.

आधुनिक युग के छायावादी तथा छायावादोत्तर युग में काव्य, कथासाहित्य, गद्यविधा, तथा उपन्यासों में मिथकीय चेतना विद्यमान है । छायावादी कवियों में प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, दिनकर आदि ने भी मिथक कथाओं के माध्यम से साहित्य रचना की । प्रसाद का काव्य 'कामायनी' मिथकाश्रित है । कामायनी का मिथक, सृष्टि संबन्धी मिथक है । फिर भी यह सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है । मनु आज भी मानव का प्रतीक है । 'कामायनी' वैदिक मिथक पर आधृत है और यह कृति समय सापेक्ष है एवं युग धर्म का निर्वहण करती है । "कामायनी' में प्रसादजी ने सामाजिक जीवन के तनावों और समस्याओं को आर्किटाइपल बिम्बों में गर्भित करके मानवता के सत्य की तलाश की है । इसी अन्वेषण के समानान्तर प्रयुक्त मिथक के भी नए नए आयाम उद्घाटित हो गए हैं ।" [1] यह कृति युगानुकूल है । यह कृति शैवदर्शन से आपूरित है । इसमें विश्वबन्धुत्व का संदेश भी निहित है । पंत का प्रबन्धकाव्य 'सत्यकाम' मिथकीय चेतना से संपुष्ट है । निराला का काव्य 'राम की शक्तिपूजा' राम रावण के मिथक पर आधृत है । यहाँ राम को धर्म का और रावण को अधर्म का प्रतीक बनाकर राम की भक्ति की शक्ति सेदेशोद्धार की कल्पना की गई है । वस्तुतः भक्ति में ही शक्ति निहित है । ये सब मिथक समाज सुधार की भावना से ओतप्रोत हैं । इसमें निराला रामरावण युद्ध के मिथक को अधर्म पर धर्म की विजय के रूप में मानते हैं । दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' द्वितीय विश्वयुद्ध का द्योतन करता है । इसमें सारे मिथकों का विवेचन दिनकर ने किया है । इसमें द्वितीय विश्वयुद्ध के संदर्भ को लेकर कौरव-पाण्डवों के भीषण युद्ध का परामर्श किया है । 'रश्मिरथी' का नायक कर्ण जीवन की कठिनाइयों से जूझता हुआ भी अपने को कर्मवीर और दानवीर सिद्ध कर देता है तथा समाज को अपने चारित्रिक गुणों से प्रेरित करता है । इसके द्वारा एक आदर्श की स्थापना करता है । उर्वशी में सामाजिक यथार्थ का अंकन, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'ऊर्मिला' में

---

1 'मिथकीय समीक्षा' -पशुपतिनाथ उपाध्याय पृ. 121

राष्ट्रीय चेतना, विश्व बन्धुत्व, भारतीय संस्कृति, नारीजागरण आदि का अंकन मिथकीय दृष्टि से किया है । मातृत्व, स्नेह, उत्सर्ग, परदुःख कातरता से युक्त ममतामयी, स्नेहमयी तथा मोहमयी नारी का चित्रण मानवतावादी दृष्टि से रूपायितकर नवीनजी ने नारी को खोई हुई प्रतिष्ठा दिलाई है ।

छायावादोत्तर काव्य में भी अनेक रचनाकारों ने मिथक कथाओं के आधार पर अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । केदारनाथ मिश्र ने 'कैकेयी' में, नरेन्द्रशर्मा ने 'द्रौपदी' में, भारती ने 'कनुप्रिया' में नारी के आधुनिकतम रूप को मिथकीय आधार पर विश्लेषित किया है । कुंवरनारायण का 'चक्रव्यूह' दुष्यन्तकुमार त्यागी का 'एक कंठ विषपायी', विजयदेव नारायण साही का 'लाक्षागृह' आदि कृतियाँ आधुनिकता के संदर्भ में मिथकीय संवेदना की अभिव्यक्ति हैं । आधुनिकयुग में मिथक बहुआयामी मनःस्थिति का प्रतिनिधित्व करता है । प्रयोगवादी विचारधारा के साहित्यकारों ने भी मिथकों को एक नया मोड दिया ।

समसामयिक युग की अनेक रचनाओं में मिथक का प्रयोग प्राप्त है । नरेशमेहता की रचनाओं में मिथक का प्रयोग ज़्यादहतर है । समकालीन कविता की अनेक रचनाओं में विभिन्न अंतः संघर्षों की अभिव्यक्ति की गयी है । संशय की एक रात' 'प्रवादपर्व' 'महाप्रस्थान' 'मुक्तिप्रसंग' (राजकमल चौधरी) एक पुरुष और (विनय) 'सूर्यपुत्र' (जगदीश चतुर्वेदी) 'शम्बूक' (जगदीश गुप्त) आदि इस तरह की प्रमुख रचनाएँ हैं । समकालीन कवि अपनी संवेदना के अनुरूप प्रतीकों का चयन करता है । मिथक की शक्ति प्रतीकात्मकता में निहित है । मिथक के सत्य एवं उद्देश्य की पहचान प्रतीकों के द्वारा ही संभव है ।

कहने का मतलब यह है कि काव्य के विभिन्न रूपों से मिथक का गहरा संबन्ध है । कविगण अपनी भावना के अनुरूप कल्पना के सहारे घटनाओं और अपने समय की स्थितियों की अभिव्यक्ति करते हैं ।

समीक्षा में मिथक :- समीक्षा साहित्य का मिथक के साथ सहजात संबन्ध है । डॉ. नगेन्द्र ने मिथकीय समीक्षा के मूलवर्ती सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए बताया है कि साहित्य के साथ मिथक का सहजात संबन्ध है । मिथकीय समीक्षा कथावस्तु, चरित्र विधान तथा कथानक रूढियाँ आदि का प्रस्तुतीकरण सजगता, ईमानदारी एवं पूर्ण निष्ठा से करती है । ''मिथक विश्व वाङ्मय को एक नव्य आयाम देने में सक्षम है । पाश्चात्य और भारतीय साहित्यशास्त्र मिथकीय विवेचन से भरे पड़े हैं । साहित्य समीक्षा में भी यही स्थिति परिलक्षित होती है । किसी भी देश या भाषा का साहित्य मिथकीय संवेदना से वंचित नहीं है ।"[1]

मिथक साहित्य के आविर्भाव से हिन्दी समीक्षा में भी मिथकीय समीक्षा का अनुप्रयोग होने लगा । रमेशकुंतल मेघ, अज्ञेय और शंभुनाथ ने मिथकीय समीक्षा पर सैद्धान्तिक रूप से विचार किया है । हिन्दी में मिथकीय समीक्षा रचना का सम्यक मूल्यांकन नहीं कर पाती । शिल्पपक्ष की इसमें पूर्णतः अवहेलना रहती है । मिथकीय समीक्षा की अपनी अपनी सीमाएँ होती हैं। हिन्दी समीक्षा में रमेशकुंतल मेघ ने मिथकीय विश्लेषण के संदर्भ को देखने का प्रयास किया है । इसके संबन्ध में उनकी अवधारणा युंग से प्रभावित है । उनके मतानुसार व्यक्ति के सामूहिक अवचेतन में कतिपय आद्यविम्ब विद्यमान होते हैं जिनकी अभिव्यक्ति मिथकों में होती है । बाह्य जीवन की उथल-पुथल कुछ प्रतीकात्मक रूप में हमारे भीतर एकत्र हो जाती है; यही आद्य बिम्ब है । समय पाकर वे संदर्भ मिथकीय माध्यम से नये संदर्भों के अनुरूप अभिव्यक्त होते हैं ।[2]

शंभुनाथ के अनुसार मिथक का अर्थ, एक ओर मिथक सामान्यतः एक कथा है जो अयथार्थ मिथ्या (फिक्शन) बौद्धिकताविहीन, विलक्षण और प्राक्तर्क (प्री-लॉजिकल) है । दूसरी ओर मिथक ऐतिहासिक और प्राक् ऐतिहासिक यथार्थ पृष्ठभूमि पर आदर्श एवं पवित्र कथा

---

1 'मिथकीय समीक्षा' डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय पृ. 106

2. 'समकालीन हिन्दी समीक्षा' अशोक भाटिया पृ. 73

है । यह एक ऐसी जटिल कथा है जिसमें प्रतीकात्मक रूप में मानवीय एवं अतिमानवीय घटनाओं का इतिहास मिलता है । [1]

मिथकीय समीक्षा का विकास नयी समीक्षा के बाद अमेरिका में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ । साहित्य में मिथकीय समीक्षा आलोचना के क्षेत्र में नया विषय है तो पाश्चात्य देशों में अमरीका जैसे विकसित देशों में इसका प्रचार प्रसार काफी प्रबल रूप से हो रहा है ।

मिथकीय समीक्षा के केन्द्र में मिथक है । इसकी प्रक्रिया जटिल है । इसमें मिथकीय विश्लेषण की प्रधानता रहती है जिसके माध्यम से समकालीन प्रासंगिकता के आधार पर कृति की परीक्षा की जाती है । इसमें समीक्षक पहले कृति के केन्द्रीय या मूलवर्ती मिथक का सन्धान करता है और फिर स्पष्ट करता है कि कृतिकार ने उसके विविध तत्वों, पक्षों व स्तरों पर मिथक का किसप्रकार प्रस्फुटन या पल्लवन किया है । इस प्रकार एक ओर वह कृति की संरचना का सन्धान करता है, दूसरी ओर उसके आधार पर कृति के प्रेरक मूल मनोवेग का चित्रण करता है । वह केवल कृति के वस्तु संघटन का ही नहीं, वरन् चरित्रविधान तथा बिम्ब योजना की व्याख्या भी केन्द्रीय मिथक के आधार पर करता है । जिसप्रकार साहित्य में मिथक प्रयोग एक कला है उसीप्रकार मिथकीय समीक्षा भी एक कला है । दोनों की दृष्टि जीवनमूल्यों और कथ्यों पर निर्भर है । मिथकीय समीक्षा कविता से लेकर गद्य की सभी साहित्य विधाओं के साथ न्याय कर सकती है ।

विज्ञान के क्षेत्र में वर्तमान युग का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है । इस स्थिति में भावना के लिए जगह भी नहीं मिलती है; क्योंकि सर्वत्र बुद्धिवाद का आतंक फैल रहा है । इस अवसर पर आदिम प्रवृत्तियों और संस्कारों की पुनःप्रतिष्ठा करना अनिवार्य हो गया । आदिम मानव

---

1 'नया प्रतीक मार्च (1978)' पृ. 60 पर शंभुनाथ

प्रवृत्तियों में मिथकीय कल्पना का खास स्थान है । इसलिए इसके प्रति विशेष आकर्षण होना स्वाभाविक है । नये समीक्षक के मन में नूतनता के प्रति आकर्षण होना सहज है । वे परंपरा से प्राप्त मान्यताओं का खण्डन करके नये नये मूल्यों की स्थापना करते हैं । लेकिन उनका यह दृष्टिकोण अतिवादी और एकांगी है ।

भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा शास्त्रियों ने आधुनिककाल में भी मिथकीय संवेदना को सर्वथा नव्य धरातल पर प्रतिष्ठित करने का अथक प्रयास किया है ।

भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से भिन्न भिन्न समीक्षकों ने मिथक का अध्ययन किया और उन्होंने अपने ज्ञान का परिचय दूसरों को दिया है । रूपात्मक समीक्षा, संरचनात्मक समीक्षा, शैली वैज्ञानिक समीक्षा एवं नई समीक्षा प्रत्यक्षतः मिथकीय चेतना एवं संवेदना से प्रभावित हैं । संपूर्ण भाषिक विधान मिथकीय रचना प्रक्रिया को दृष्टिगत करते हुए चलता है ।

उपन्यासों में मिथकः-

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास विधा में मिथकीय संवेदना का ज़्यादा प्रयोग उपलब्ध है । इन सब रचनाओं में रचनाकारों ने प्राचीन संस्कृति का पुनर्मूल्यांकन किया है । समसामयिक युग में उपन्यासों में मिथकीय चेतना का प्रयोग करनेवाले अनेक उपन्यासकार हैं । इनमें प्रसिद्ध हैं नरेन्द्रकोहली, अलका सरावगी, गिरिराज किशोर, गीतांजलिश्री आदि ।

नरेन्द्रकोहली ने अपने उपन्यासों में रामकथा, महाभारत और विवेकानन्द के जीवन चरित आदि के आधार पर नयी व्याख्या प्रस्तुत की । समसामयिक स्थितियों का उल्लेख करने के लिए उन्होंने पौराणिक कथाओं को साधन के रूप में स्वीकार कर लिया । "नरेन्द्रकोहली ने

रामकथा की नई व्याख्या प्रस्तुत की । यह प्रयास कुतूहलता की सृष्टि करता है । कुछ सांस्कृतिक, साहित्यिक और कलात्मक प्रश्न भी उपस्थित करता है ।"[1]

हिन्दी की अनेक रचनाओं में प्राचीनता और आधुनिकता का टकराव हम देख सकते हैं । लेखकों ने अपने अनेक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही पात्रों और चरित्रों की व्याख्या नयी दृष्टि से की है । उपर्युक्त दृष्टि से नरेन्द्रकोहली का उद्देश्य भी विशिष्ट और महत्वाकांक्षी है । 1981 में प्रकाशित उनका 'अभिज्ञान' चिन्तन प्रधान उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास के कथानक का आधार भगवद्गीता में वर्णित कर्मसिद्धान्त है । कृष्ण-सुदामा मैत्री के प्रख्यात प्रसंग को उठाकर लिखित प्रस्तुत रचना को उन्होंने आधुनिक संदर्भ में देखा परखा है । यह रचना कृष्ण के कर्मसिद्धान्त को समझने की प्रेरणा देती है । गीताकार का यह सिद्धान्त साधारण मनुष्य को ग्रहण करने के लिए योग्य नहीं था । लेकिन कोहली जी ने साधारण पाठक के अनुभव क्षेत्र को दृष्टि में रखकर ही इस रचना का सृजन किया है । इसलिए प्रस्तुत उपन्यास बहुत रोचक और घटनाएँ जानी-पहचानी सी लगती हैं । इस उपन्यास की मूलचेतना यह है कि मनुष्य को हमेशा कर्मनिरत होना चाहिए । जब तक वे कर्मनिरत नहीं होते तब तक उनको प्रगति असंभव हैं । बिना कर्म के कुछ भी कार्य संभव नहीं । कर्मसिद्धान्त की व्याख्या इसमें है । उनके 'अभ्युदय' नामक उपन्यास का आधार रामकथा है । इसमें चित्रित राम महाविष्णु का अवतार नहीं है; बल्कि पीडित, शोषित और दलित जनता के उद्धार के लिए राज्य त्यागनेवाला राम है । रामकथा में यागों में विघ्न डालनेवाले राक्षसों का परामर्श है । राक्षसों से मुक्ति पाने के लिए ही विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को अयोध्या से ले जाते हैं । कोहलीजी की राय में जो अन्याय, भ्रष्टाचार और आतंक फैलाते हैं वे राक्षस हैं । वे राक्षस जनता का रक्त चूसकर अपनी सुखसुविधाओं का मार्ग ढूँढते हैं । इस उपन्यास में रचनाकार ने राम को अवतार पुरुष का स्थान

---

1 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास सृजन और आलोचन' चन्द्रकांत बांदि वाडेकर पृ. 79

न देकर उन्हें मानवीय धरातल प्रदान किया है । इसी राम के माध्यम से हमारे चारों ओर व्याप्त आतंकवाद, भ्रष्टाचार आदि के विरुद्ध आवाज़ उठाने की, उनके प्रतिजागृत करने की और इनके लिए संगठित करने की प्रेरणा रचनाकार हमें देते हैं । इसप्रकार जनआन्दोलन की आवश्यकता पर वे ज़ोर देते हैं । उनका उपन्यास 'महासमर' महाभारत की कथा पर आधारित है । यह रचना महासागर के समान है । इस उपन्यास में आठ भाग हैं । महाभारत का पूरा संघर्ष प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित है । वर्तमान युग के राजनैतिक और सामाजिक संघर्ष को प्रकट करनेवाली रचना है यह । आज के सभी राजनैतिक षड्यन्त्र, अधिकार लोलुपता तथा प्रतिशोध की भावना रखनेवाले अनेक संघर्ष इसमें उपलब्ध है । अधिकार लोलुपता ही सब संघर्षों का मूलकारण है । यह अधिकार लालसा ही सारे महायुद्धों की जननी है ।

नरेन्द्र कोहलीजी घटनाओं को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करने का कारण इसप्रकार बताते हैं कि "वे पुराकथाएँ जो शिल्प और शैली की दृष्टि से आधुनिक परिप्रेक्ष्य से हटकर हैं उन्हें आधुनिक संदर्भों में इसप्रकार देखा जाए कि उन घटनाओं में निहित अथवा वर्णित तत्व हम ग्रहण कर सकें । इसलिए रचनाकार प्राचीन रचना की प्रस्तुति को वर्तमान समाज के साँचे में ढालकर प्रस्तुत करता है ।"[1]

अन्य मिथकीय उपन्यास लिखनेवालों में श्रेष्ठ हैं अलका सरावगी ("कलिकथा वाया बाई पास", ऐतिहासिक मिथक पर आधारित" शेष कादम्बरी') हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ('बाणभट्ट की आत्मकथा','चारुचन्द्रलेख','पुनर्नवा;' 'अनामदास का पोता'), शिवप्रसाद सिंह ('कुहरे और युद्ध', दिल्ली दूर है'; काशी के संस्कृति परिवेश पर आधारित रचना 'नीला चाँद'), सन्हैयालाल ओझा (सर्वनाम' 'संभवामि') श्रीलाल शुक्ल ('पहला गिरमिटिया'), गीतांजलिश्री (हमारा शहर उस बरस') आदि ।

---

1 नरेन्द्रकोहली, 7 जनवरी 1995 की भेंटवार्ता

हिन्दी नाटकों में मिथक

नाटकों में पौराणिक कथाओं का यथा तथ वर्णन होता है । इस तरह के नाटकों से धार्मिक और नैतिक शिक्षा जनता को प्राप्त होती है । लेकिन जब आधुनिकनाटककार सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण समाज के कटु यथार्थों को प्रभावोत्पादक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं तब. जन सजग हो जाते हैं । इस तरह के नाटकों का आधार तो पौराणिक नाटकों से भिन्न होगा । ये नाटक मिथकीय बनते हैं । समसामयिक सत्य का प्रतिपादन और आधुनिकता का समावेश मिथकीय नाटकों की विशेषता है । मिथकीय नाटकों में बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग ज़्यादा मिलता है । लेकिन प्रतीकनाटक मिथकीय नाटक नहीं बनते । जब यह प्रतीक विधान मिथकीय कथानक, पात्र और प्रसंग के आधार पर होता है तब वह प्रतीकनाटक मिथकीय नाटक बनता है । "भारत, यूनान जैसे प्राचीन देशों में नाटक की उत्पत्ति के पीछे दैवी कथा जुडी हुई है और ऋतु परिवर्तन, धार्मिक अनुष्ठान आदि के साथ उसका आदि संबन्ध है ।"[1] नाटककार भास के 'ऊरुभंग'; मध्यम व्यायोग' आदि नाटकों के कथानक महाभारत और रामायण पर आधारित हैं और उनमें मिथक के तत्वों का प्रयोग किया गया है । कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक उर्वशी-पुरूखा तथा शकुन्तला-दुष्यन्त के पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं । भवभूति के नाटकों में मिथकीय तत्वों का समावेश पाया जाता है । इस प्रकार मिथकीय तत्वों के प्रयोग से संपन्न हैं संस्कृत नाटक । यूनानी नाटकों में भी मिथकों का ज़्यादहतर प्रयोग मिलता है । मनोवैज्ञानिक मिथकों का प्रयोग सर्वप्रथम इसमें हुआ है । आधुनिकयुग के नाटककारों ने अपने नाटकों में मिथकीय तत्वों का प्रयोग प्रत्यक्ष में किया है । इन नाटकों में कथ्य की प्रमुखता है । ये युग सत्य का प्रतिपादन करते हैं । आधुनिकता का दिग्दर्शन मिथकीय नाटकों की खास विशेषता है । अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक विधा पर मिथकों का प्रयोग सशक्त रूप से प्राप्त होता है ।

---

1 'नगेन्द्र ग्रन्थावली खण्ड 3' पृ. 267

भारतेन्दु और उनके काल के अन्य नाटककारों ने मिथकों को अपनी रचनाओं के लिए स्वीकार किया है । हरिश्चन्द्र के नाटकों में मिथक तत्व का समावेश नैतिकता, उपदेशात्मकता आदि प्रवृत्तियों से संपन्न है । भारतेन्दु युग के नाटककारों का लक्ष्य समाज सुधार, जनसमाज में शिष्टता का प्रचार प्रसार करना, शिक्षा का प्रचार, नैतिकता, जनमानस में देशप्रेम की भावनाओं को जगाना आदि था । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही उन्होंने नाटकों की रचना की थी । इन नाटककारों ने वर्तमानकालीन, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को अतीत के संदर्भ में देखा परखा । भारतेन्दु द्वारा रचित "नीलदेवी" नाटक देशेप्रेम से ओतप्रोत है । इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक मिथक पर आघृत है । "नीलदेवी' में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राजपूत काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय ग्रहण करते हुए नारी उत्थान का उद्घोष किया है जो युगीन दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।"[1]

भारतेन्दु कालीन नाटककारों का दृष्टिकोण आदर्शवादी और पुनरुत्थानवादी था । बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी आदि नाटककारों ने मिथकीय चेतना से अनुप्राणित होकर देशभक्ति, और अतीत गौरव को अपनी कृतियों का विषय बनाया । भारतेन्दु युग के प्रमुख मिथकीय नाटक हैं 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' 'अंधेर नगरी' 'नीलदेवी, 'सत्यहरिश्चन्द्र' आदि । भारतेन्दुयुग में राम और कृष्ण मिथक को लेकर अनेक रचनाएँ रची गयीं। इनके लिए उदाहरण हैं भारतेन्दु कृत 'चन्द्रावली' अम्बिका दत्त व्यास द्वारा रचित ललिता, अयोध्या सिंह उपाध्याय का प्रद्युम्नविजय तथा रुक्मिणी परिणय आदि । उपर्युक्त नाटकों में कृष्ण मिथक का विश्लेषण है । रामकथा पर आधारित नाटकों में प्रमुख हैं देवकीनन्दन खत्री द्वारा रचित सीताहरण और रामलीला, शीतलप्रसाद त्रिपाठी का रामचरितावली आदि ।

प्रसादयुगीन नाटककारों ने अतीत के मिथकों के माध्यम से वर्तमान असंगतियों और विसंगतियों का समाधान ढूँढने का प्रयास किया है । अतीत के गौरव को बनाए रखने केलिए

---

1. 'साठोत्तर हिन्दी नाटक-मिथकीय तत्वों के संदर्भ में' डॉ. नीलमराठी

ही उन्होंने मिथकीय रचनाएँ रचीं । प्रसादयुग के नाटककारों में हरिकृष्णप्रेमी, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास आदि की रचनाएँ मिथकीय चेतना से अनुप्राणित हैं । स्वतंत्रता बोध, राष्ट्रीय एकता, मानवतावाद आदि के पक्षधर बनकर इन नाटककारों ने भिन्न भिन्न मिथकों का प्रयोग किया ।

स्वातन्त्र्योत्तर नाटकों में द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं से भयभीत जनता में व्याप्त कुंठा, आस्थाहीनता, नैराश्य और यौन समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए मिथकों का चयन किया है । स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों में प्रमुख हैं, जगदीशचन्द्र माथुर, मोहनराकेश, लक्ष्मीनारायणलाल आदि । इनके नाटक मिथकीय अभिव्यक्ति के लिए सशक्त और अप्रतिम उदाहरण हैं । माथुर का 'कोणार्क' लाल का 'मिस्टर अभिमन्यु', राकेश का 'लहरों का राजहंस' आदि मिथकीय नाटक आधुनिकताबोध को प्रस्तुत करनेवाले नाटक हैं । ये सब नाटक प्राचीन कथानकों को नव्य आयाम देने में सक्षम हैं । सुरेन्द्रवर्मा के नाटक सेतुवन्ध; "द्रौपदी' आदि, भीष्मासाहनी के 'हानुश' 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' 'माधवी' आदि, शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' 'कोमल गांधार' नरेन्द्र कोहली का 'शम्बूक की हत्या' दूधनाथ सिंह का 'यमगाथा', तारामोहन का 'भगवान बुद्ध' कुसुम कुमार का 'रावणलीला' आदि नाटक के शीर्षक मिथक को प्रमाणित करते हैं । दयाप्रकाश सिन्हा का नाटक 'कथा एक कंस की' का सृजन मिथक की भावभूमि पर हुआ है । यह नाटक मानव, समाज और सत्ता की कालातीत मूल प्रवृत्तियों को प्रतिपादित करने के कारण समसामयिक युग में ज़्यादा प्रासंगिक है । इसमें चित्रित कंस, कुटिलता का प्रतीक है । कृष्ण को लीला पुरुषोत्तम के रूप में नहीं जनआन्दोलन के सूत्रधार के रूप में चित्रित किया गया है । हिन्दी नाटकों में मिथकों का प्रभावपूर्ण प्रयोग साठ के आसपास हुआ है । साठोत्तर नाटकों की विशेषता है प्रतीकात्मकता । आधुनिक मानव की त्रासदी, अन्तर्द्वन्द्व

और तनाव के चित्रण करने में, वर्ग बैषम्य, शोषक-शोषित संघर्ष आदि का उद्‌घाटन करने में प्रतीकात्मकता अत्यन्त सहायक सिद्ध हुयी है । साठोत्तर मिथकीय नाटकों में मिथकीय परिप्रेक्ष्य कथ्य को और भी रोचक बना देता है । संप्रेषणीयता, प्रभावोत्पादकता, बहुस्तरीय अर्थवत्ता आदि को प्रमुखता देकर नाटक को मंचीय सार्थकता प्रदान करने में मिथकीय प्रयोग पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुयी है ।

गीतिनाट्यों में मिथक:-

नाटक की विधा गोतिनाट्य में आधुनिक युग में नवीनता का श्रेय प्रसादजी को दिया जाता है । 'करुणालय' नाटक हिन्दी गीतिनाटक की दिशा में उनका प्रथम प्रयास है । यह नाटक अतुकांत मात्रिक छन्द में लिखा गया है । "काव्यत्व और नाटकत्व का सम्मिश्रण इसमें है किन्तु गीतिनाटक के प्रयोग काल की सर्वप्रथम रचना होने के कारण यह अपरिपक्व है।"[1] इसमें प्रसाद ने पौराणिक कथानक को चुनकर मानवीय अन्दर्द्वन्द्व को चित्रित किया है तथा आनंदवाद की स्थापना की है । 'अनघ' में गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव दृष्टव्य है । 'तारा' अन्तर्द्वन्द्व प्रधान नाटक है । इसमें कर्तव्य और वासना का संघर्ष है । स्वतन्त्रता पूर्व गीतिनाट्यों की श्रेणी में आनेवाले अन्य प्रमुख मिथकीय गीतिनाट्य हैं 'मत्स्यगंधा' 'विश्वामित्र' 'राधा (उदयशंकर भट्ट) उन्मुक्त, लीला आदि ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्यों में प्रमुख हैं धर्मवीर भारती का 'अन्धायुग' दिनकर का 'उर्वशी' दुष्यन्तकुमार का 'एक कंठ विषपायी' अज्ञेय का 'उत्तर प्रियदर्शी' आदि ये नाटक मिथकीय दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं ।

---

1 'हिन्दी गीतिनाटक' डॉ. श्रीकृष्ण सिंघल पृ. 84

प्रसादोत्तर गीतिनाट्यों में मुख्य है 'अन्धायुग' । इसमें महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से प्रभास तीर्थ में श्रीकृष्ण के देहावसान के समय तक की कथा के माध्यम से युद्धजन्य अवसादपूर्ण त्रासद स्थितियाँ, पीडा, निरर्थकता, अकेलापन, मूल्यहीनता, अनास्था आदि को चित्रित कर अंधे युग के अन्धे पात्रों के माध्यम से रोशनी की बात की है । दुःख का गहरा अंधकार आज भी पल प्रतिपल सर्वत्र व्याप्त है । इस अन्धकार को छोडकर प्रकाश खोजने का संदेश प्रस्तुत नाटक देता है ।

रामधारीसिंह दिनकर के गीतिनाट्य 'उर्वशी' में आकाश से होनेवाली वर्षा से भूमि उर्वरा हो जाती है, तरह तरह की वनस्पतियों की सृष्टि वह करती है इस प्राकृतिक तथ्य के आधार पर आकाश को पुरुष-पिता और पृथ्वी को स्त्री माता के रूप में कल्पना कर दोनों के प्रणय संबन्ध की मिथक रचना की गयी है । पृथ्वी और आकाश के प्रणय का मिथक अत्यन्त प्राचीन है । पुरूरवा पृथ्वी का राजा है और उर्वशी आकाश विहारिणी अप्सरा । सामान्यतः मिथक कथाओं में नारी की महिमा, नारी समस्या, नारी के विभिन्न रूपों अर्थात् माँ, बहिन, देवी, सहचरी भार्या आदि का उद्‌घाटन होता है । उर्वशी' में पात्र उर्वशी यौनाकर्षण का केन्द्रबिन्दु है फिर भी विशुद्ध प्रेम की अभिव्यक्ति इससे प्राप्त होती है जिससे समाज में एक आदर्श नारी की प्रतिष्ठा होती है और नारीत्व के प्रति श्रद्धा एवं प्रेमभाव की अभिव्यक्ति को बढावा मिलता है ।

दुष्यन्तकुमार त्यागी का 'एक कंठ विषपायी" दक्षयज्ञ एवं सती के मिथक पर आधृत है जिसमें आदि से अन्त तक मद, मोह, सत्ता, अहंकार आदि से समन्वित भारत की तस्वीर रवींची गई है तथा प्राचीन कथा को अधुनातन संदर्भ में देखने का प्रयत्न भी किया गया है ।

आज्ञेय का 'नाटक 'उत्तरप्रियदर्शी' समकालीन गीतिनाट्यों में प्रमुख है ।" 'उत्तरप्रियदर्शी' नाटक पाठकों को काव्य, मनोविज्ञान एवं दर्शन का समन्वयात्मक कथानक उपलब्ध कर देता है जिसमें अशोक के इतिहास वृत्त द्वारा नाटककार ने मानव-मनोविज्ञान की सूक्ष्म पर्ता को

उद्‌घाटित किया है।"[1] प्रियदर्शी अशोक तथा बौद्ध भिक्षु के माध्यम से आधुनिक मानव के द्वन्द्व को तीव्रता के साथ व्यंजित किया गया है ।

"संशय की एक रात" नरेशमेहता का बहुचर्चित मिथकीय गीतिनाट्य है । इसका मुख्य प्रातिपाद्य विषय है राम का सन्देह । पौराणिक कथा के माध्यम से रचित इस नाट्यकृति में समकालीन समस्याओं का उद्‌घाटन किया है । यहाँ राम के संबन्ध में हमारे मन में परंपरागत पूज्य भाव था जो देवत्व है उसे अलग करके राम को साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है । साधारण मानव के रूप में राम की दुर्बलताएँ यहाँ अधिक स्पष्ट हैं । इसके द्वारा नरेश मेहता ने स्वतन्त्रता बोध की अभिव्यक्ति की है । संशय एवं संघर्ष की प्रस्तुति 'संशय की एक रात' में हुयी है । बिम्बात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली में विविध मानवीय स्थितियों का चित्रण इस रचना की खास विशेषता है । राम को आधुनिक मानव के समान चिन्तनशील व्यक्ति के रूप में रचनाकार ने प्रस्तुत किया है । समाज के हित के अनुरूप चलनेवाले लोकतांत्रिक नेता के रूप में राम हमारे सम्मुख उभरकर आते हैं ।

"अग्निलीक' के रचयिता भारतभूषण अग्रवाल प्रगतिवादी कवि थे । वे वर्गविहीन, शोषण से रहित समाज की परिकल्पना करते थे । हमारे परंपरागत मिथक को श्रेष्ठ आदर्शात्मक रूप प्रदानकर उनका विश्लेषण रचनाकार ने मानवीय धरातल पर किया है । अग्रवाल ने 'अग्निलीक' में रामकथा के प्रख्यात कारुणिक प्रसंग सीता परित्याग का चयन किया है । रामकथा की इसी घटना को संस्कृत के कवि भवभूति ने उत्तररामचरित का आधार बनाया है । 'अग्निलीक' में अग्रवाल ने राम को स्वार्थ प्रिय, अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए जीनेवाले शोषक और भ्रष्टाचारी राजनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया है । प्रवादपर्व, सूतपुत्र आदि अनेक गीतिनाट्य समकालीन युग के मिथकाश्रित गीतिनाट्यों की श्रेणी में आते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह जाहिर होता है कि मिथक आधुनिक युग में सृजनात्मक साहित्य एवं साहित्यिक समीक्षा का प्राण बन गया है ।

---

1 मिथकीय समीक्षा डॉ पशुपतिनाथ उपाध्याय पृ. 64

तीसरा अध्याय

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथक तत्व

(1900 से 1947 तक)

स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथक तत्व

(1900 से 1947 तक)

हिन्दी नाटक के क्षेत्र में नवीन विधा के रूप में विख्यात है गीतिनाट्य । हिन्दी साहित्य में गीतिनाट्य परंपरा पश्चिमी और बंगला के प्रभाव को ग्रहण करते हुए आगे बढ़ी है । भारतेन्दु युग में हिन्दी नाटक ने संस्कृत नाट्य परंपरा की कुछ विशेषताओं को आत्मसात् कर लिया । कुछ समीक्षक गीतिनाट्य की परंपरा का आरंभ पूर्व भारतेन्दु युग से ही मानते हैं । बच्चनसिंह लिखते हैं कि "यदि अमानत की 'इन्दरसभा' को छोड दिया जाय तो प्रसाद का 'करुणालय' ही हिन्दी का प्रथम गीतिनाट्य ठहरता है ।"[1] भारतेन्दु युग में लिखित गीतिनाट्य हैं भारतेन्दु द्वारा लिखित 'चन्द्रावली' 'नीलदेवी' आदि। स्वतन्त्रतापूर्व गीतिनाट्य ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । समाजसुधार, समाज में प्रचलित अनाचारों और अन्धविश्वासों के प्रति रोष की भावना, उन्हें हटाने में प्रेरणा देना, गाँधीजी और गौतमबुद्ध की विचारधाराओं और उनके आदर्शों का प्रचार प्रसार करना आदि सद्भावनाओं से युक्त अनेक गीतिनाट्यों की रचना इस काल में हुयी । सामाजिक प्रतिबद्धता से युक्त अनेक गीतिनाट्य इस काल में रचे गये । स्वतन्त्रतापूर्व गीतिनाट्यों में मिथक तत्व की दृष्टि से बारह गीतिनाट्य प्रमुख हैं जिनमें 'करुणालय' कृष्णा' 'तारा' मत्स्यगन्धा' 'विश्वामित्र' आदि में मिथक तत्व का समावेश सफलतापूर्वक किया गया है ।

करुणालय हिन्दी साहित्य के अद्वितीय और बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार जयशंकर प्रसादजी द्वारा खडीबोली में रचित प्रथम गीतिनाट्य है 'करुणालय' जो उनका प्रथम और अन्तिम गीतिनाट्य है । 'करुणालय' का प्रकाशन 'इन्दु' पत्रिका में सन् 1912 में हुआ । इसमें काव्यत्व और नाटकत्व दोनों का समन्वय है । फिर भी यह रचना अत्यन्त सफल नहीं कही

---

1 हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ बच्चनसिंह पृ. 42

जा सकती; क्योंकि गीतिनाट्य का प्राणतत्व अन्तसंघर्ष इसमें बहुत दुर्बल है । यह पौराणिक कथा को आधार बनाकर रचा गया गीतिनाट्य है । प्रसाद की अन्य "कृतियों में जिस आनन्दवाद, जीवन के प्रति एक अडिग आस्था, आसुरी आचार के प्रति घृणा, प्रेम की शुभ्र ज्योति आदि के जो रमणीय चित्र मिलते हैं, उनका आदि उत्स इस रचना में देखा, जा सकता है । "[1]

'करुणालय' में प्रसादजी ने वैदिककाल में तत्कालीन समाज में प्रचलित नरबलि की समस्या को प्रस्तुत किया है । नरबलि जैसे अमानवीय आचरण पर उन्होंने तीखा प्रहार किया है । इस नाटक के प्रमुख पौराणिक पात्र हैं हरिश्चन्द्र, रोहित, वशिष्ठ, विश्वामित्र, आजीगर्त और शुनःशेफ । प्रथम दृश्य में अयोध्या के महाराज हरिश्चन्द्र सरयू नदी में सेनापति ज्योतिष्मान और अन्य सहचरों के साथ नौका में जलविहार करते हैं । नौका अचानक रुक जाती है । नेपथ्य में घोर गर्जन के साथ आकाशवाणी सुनाई पड़ती है

"मिथ्याभाषी यह राजा पाखण्ड है
इसने सुत बलि देना निश्चित था किया
राजकुमार हुआ है अब बलियोग्य जब
तो फिर क्यों उसकी बलि यह करता नहीं ?"[2]

यह आकाशवाणी सुनकर राजा को अपनी प्रतिज्ञा की याद आती है । जन्मदाता होने के नाते पिता के मन में सन्तान के प्रति ममत्व होना स्वाभाविक है । फिर भी वे प्रतिज्ञा भंग करना नहीं चाहते । देवताओं की सन्तुष्टि के लिए वे स्वपुत्र को बलि देने के लिए तैयार हो जाते हैं । यहाँ पुत्रप्रेम और वचन बद्धता इन दोनों का संघर्ष हम देख सकते हैं । युवराज रोहित सोचता है कि परमगुरु पिता के आदेश का पालन करना धर्म है, परन्तु यों निरर्थक मरने की

---

1. हिन्दी साहित्य (तृतीयखंड) सं., डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 385 ।
2. 'करुणालय' जयशंकर प्रसाद पृ. 14-15

आज्ञा का पालन करने की क्या आवश्यकता है ? पिता की वचन पूर्ति के लिए स्वशरीर को बलि देना वह नहीं चाहता । रोहित के मन में प्रकृति के सुख वैभवों के प्रति यौवन सुलभ आकर्षण होना सहज स्वाभाविक है । अपने शरीर के प्रति और अस्तित्व के प्रति उसे अतीव ममता है । रोहित के माध्यम से आज की युवापीढी के स्वतन्त्रता बोध का परिचय प्राप्त होता है । वह संसार भर में स्वतंत्र रूप से विचरण करना चाहता है । रोहित के मन में पिता के प्रति कर्तव्य पालन और जीने की अभिलाषा इन दोनों का संघर्ष है ।

तदुपरान्त रोहित क्षुधा से पीड़ित अजीगर्त और तारिणी के मध्यम पुत्र शुनःशेफ को सौ गायों के बदले बलिकर्म के लिए मोल लेता है । अजीगर्त भूखे जनसमुदाय का प्रतिनिधित्व करनेवाला आम आदमी है । यहाँ शुनःशेफ परिवार की गरीबी को हटाने के लिए माध्यम बन जाता है । आधुनिक समाज में भी दारिद्र्य दुःख से सन्तानों को बेचनेवाले माता-पिता कम नहीं हैं । उसी प्रकार बलिपशु बननेवाले पुत्र-पुत्रियाँ भी हैं । संसार का सबसे बड़ा दुःख है दारीद्र्य दुःख । समाज में रहनेवाले संपन्नवर्ग इसके मूल्य को समझ नहीं सकते । शोषित जन का प्रतिनिधि बनकर जीनेवाले अजीगर्त का कथन इसके लिए प्रमाण है । रोहित शुनःशेफ को लेकर हरिश्चन्द्र के सम्मुख आता है । हरिश्चन्द्र और रोहित के बीच बलिप्रश्न को लेकर तर्कवितर्क होता है । आधुनिक युग के बुद्धिवाद का प्रभाव रोहित और हरिश्चन्द्र के तर्क वितर्क में विद्यमान है । वशिष्ठ का आदेश ग्रहणकर रोहित के बदले शुनःशेफ को बलिदेने के लिए हरिश्चन्द्र तैयार हो जाते हैं । शुनःशेफ भाग्य और कर्म में विश्वास रखनेवाला है। विपत्ति में पड़ा शुनःशेफ आकाश की ओर देखकर ईश्वर से करुण याचना करता है

"हाय तुम्हारी करुणा को भी क्या हुआ ?
जो न दिखाती स्नेह पिता के पुत्र से ।"[1]

सर्वचराचर ईश्वर की सृष्टि है । उनके प्रति समान रूप से करुणा रखना ईश्वर का कार्य है । ऐसा संकल्प है कि दुःखी जनों की रक्षा के लिए हर युग में ईश्वर अवतार लेता है । अपनी

---

1. करुणालय' जयशंकर प्रसाद पृ. 32

सन्तानों की जान लेने का अधिकार सिर्फ ईश्वर को है । दूसरों को मनुष्य की जान लेने का अधिकार नहीं है । यहाँ एक सामान्यतथ्य पर प्रकाश डाला गया है । शुनःशेफ आज की युवापीढ़ी की विद्रोही प्रवृत्ति का प्रतीक है ।

इस नाट्यकृति का अंतिम दृश्य अत्यन्त मार्मिक है । इस दृश्य में और सौ गायों के बदले अजीगर्त पुत्र वध करने के लिए तैयार हो जाता है । यहाँ अजीगर्त निष्ठुर और अधम पिता का प्रतिरूप बन जाता है । तभी विश्वामित्र वहां प्रत्यक्ष हो जाते हैं । वे इक्ष्वाकु वंश के सभी पुण्य जनों की, वशिष्ठ की और अजीगर्त की भर्त्सना करते हैं

"अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया
रे मनुष्य ! तू कितने नीचे गिर गया
आज प्रलोभन-भय तुझसे करवा रहे
कैसे आसुर कर्म्म । अरे तू क्षुद्र है
क्या इतना ? तुझपर सब शासन कर सके
और धर्म की छाप लगाकर मूढ भी
कैसी आसुरी माया में, हिंसा जगी"। [1]

आवश्यकता मनुष्य को अधम वृत्ति करने की प्रेरणा देती है । विश्वामित्र के कथन के द्वारा प्रसादजी हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं । इसी दृश्य में विश्वामित्र अपनी पत्नी सुव्रता और ज्येष्ठ पुत्र शुनःशेफ को पहचानकर अत्यन्त आनन्दविभारे हो जाते हैं । सुव्रता को दासीत्व से मुक्ति प्राप्ति होती है । नारी सुव्रता के द्वारा समाज में नारी की असहाय स्थिति पर गीतिनाट्यकार ने प्रकाश डाला है ।

नाटक का अन्त, आदर्श, स्थापना के साथ होता है । शुनःशेफ वधमुक्त हो जाता है । प्रस्तुत गीतिनाट्य में मानव अपना वास्तविक धर्म मानवता को भूलकर अमानवीय बन जाता

---

1 करुणालय जयशंकर प्रसाद पृ. 35

है । वशिष्ठ के माध्यम से समाज में प्रचलित धर्मान्धता पर तीखा प्रहार किया गया है । अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए आयोजित बलिप्रथा आज भी समाज का बड़ा अभिशाप है । इस कथा के रोहित और हरिश्चन्द्र दोनों 'स्व' से प्रभावित हैं । रोहित के कथनानुसार मनुष्य का शरीर सार्वजनिक संपत्ति नहीं । यहाँ वैयक्तिकता की झलक दृष्टिगोचर होती है । हरिश्चन्द्र भी 'स्व' से प्रभावित होकर पुत्रबध की तैयारी करते हैं । इन दोनों के द्वारा मानवसमुदाय की स्वार्थ भावना उभर आती है । आदर्श राजा होने पर भी मानवोचित दुर्बलताएँ हरिश्चन्द्र में विद्यमान हैं । इसलिए ही वे अपने पुत्र के स्थान पर अजीगर्त के पुत्र को स्वीकार करने में तनिक भी नहीं हिचकते । डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार "मानवता के कल्याण का स्वरभी प्रबल रूप से इसमें विद्यमान है । रूपक में विश्वकल्याण की भावना व्याप्त है।"[1]

"इस कृति पर बौद्ध की अहिंसा का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है ।"[2] "करुणालय' के द्वारा नरहत्या को रोकने का सन्देश प्रसादजी ने दिया है । इसमें ऋतवाद, कर्मवाद, मानवकल्याण, भाग्य संबन्धी कतिपय साधारण संदर्भ तथा दुःखवाद सभी का सुन्दर उद्‌घाटन ही है ।"[3] आज इस करुणालय की प्रासंगिकता इसलिए बढ़ती है कि दुनिया भर में हिंसावृत्ति का बोलबाला है । तीव्रवाद, मतांधता आदि से प्रेरित पागल स्वार्थी लोग हिंसात्मक मार्ग पर चल रहे हैं । ऐसी अवस्था में हिंसा को रोकने का जो प्रयत्न करुणालय में है वह अनुकरणीय है । आज के इस हिंसात्मक संसार में बुद्ध की ज़रूरत है, बुद्ध के संदेशों को पहले से ज़्यादा मूल्य है ।

कृष्णा

सियाराम शारण गुप्त जी अपने वर्तमान के प्रति सदा जागरूक रचनाकार थे । अतीत में यथार्थ को देखने की प्रवृत्ति उनकी रचनाओं की खास विशेषता है । गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव उनकी सारी कृतियों में परिलक्षित है । 'कृष्णा' का प्रकाशन सन् 1921 में हुआ ।

---

1. प्रसाद साहित्यकोश डॉ. हरदेववाहरी पृ. 74
2. प्रसाद साहित्य कोश डॉ. हरदेव बाहरी पृ. 74
3. प्रसाद के नाटकों में नियतिवाद, पद्‌माकर शर्मा पृ. 66

इसकी कथावस्तु कर्नल टाड के 'राजस्थान के इतिहास' से ली गई है । 'कृष्णा' में पात्र कृष्णा त्याग की प्रतिमूर्ति है । उसका बलिदान उसे अमरत्व प्रदान करता है ।

कृष्णा के पिता राजा भीमसिंह कृष्णा के विवाह की समस्या को लेकर अतीव व्याकुल हैं । जयपुर नरेश जगतसिंह और जोधपुर नरेश मानसिंह दोनों कृष्णा से परिणय करना चाहते हैं । दोनों कृष्णा की प्राप्ति के लिए राजा भीमसिंह को युद्ध के लिए ललकारते हैं । राजा भी युद्ध के लिए तत्पर हैं । लेकिन मंत्री इन्हें इसप्रकार समझाते हैं

"किन्तु जननी जन्मभूमि स्वदेश का
त्राण करना ही प्रथम कर्तव्य है ।
युद्ध में यदि वीरगति हमको मिली,
दुर्दशा होगी हमारी भूमि की ।
शत्रुगण उसको पदों से रौंद के
सर्वदा पीड़ा प्रचुर पहूँचायेंगे।"[1]

जन्मभूमि को विपत्ति से बचाना ही राजा का कर्तव्य है । युद्ध से शांतिभंग हो जाता है । निरीह प्रजा की हत्या होती है । यहाँ युद्ध और शांति की समस्या को उठाया गया है । रचनाकार ने हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठायी है । युद्ध की समस्या आणवयुद्ध के रूप में आधुनिक युग में मानव समुदाय को कचोटनेवाली ज्वलन्त समस्या है । युद्ध एक देश की जनता के सर्वनाश की वजह बनता है । आज अमेरिका द्वारा परास्त इराक इतना बरबाद हो गया कि वह देश आज रहनेयोग्य नहीं बना । शक्ति संपन्न देश अपनी शक्ति के द्वारा निर्बल देशों को सदा के लिए मिटा देता है ।

पठान अमीरखाँ जोधपुर नरेश का पक्ष लेता है । अमीरखाँ का प्रस्ताव पढ़कर भीमसिंह असमंजस में पड़ जाते हैं । राज्य छोड़कर चलने के लिए उद्यत हो जाते हैं । उचित अनुचित

---

1. सियाराम शरण गुप्त रचनावली खण्ड दो- 'कृष्णा' संपादक ललित शुक्ल पृ. 347

का निर्णय लेने में वे असमर्थ रह जाते हैं । भीमसिंह अपने उत्तरदायित्व से पलायन करना चाहते हैं । शासकों को अपने अधिकार का प्रयोग समयानुकूल उचित रूप से करना चाहिए । आज के कुछ शासक किसी न किसी कार्य से संबन्धित सही निर्णय लेने में असमर्थ हैं । आधुनिक युग में भी भीमसिंह जैसे कर्तव्यच्युत, पलायनवादी शासकों की कमी नहीं । मंत्री देशोद्धार के लिए राजा को कृष्णा का वध करने की प्रेरणा देता है । दौलत सिंह की राय में यह भीरुत्व है, वीरता नहीं । मंत्री बालिका वध को अलौकिक अतुल आत्मोत्सर्ग मानता है । दौलतसिंह अहिंसावादी है । वह हिंसा को जधन्य कर्म समझकर इनकार करता है ।

दूसरे अंक में कृष्णा के माध्यम से नारी की विवशता का चित्रण किया गया है । भविष्य की चिन्ता से कृष्णा का मन व्यथित है । उसके वध का निर्णय जानकर जन्मभूमि के लिए वह स्वयं अपना बलिदान करना चाहती है ।

'जबकि मुझसे अहित था मेवाड का
तब मुझे मरना स्वयं था पूर्व ही ।
यह वही है भूमि जिसके हित यहाँ
है असंख्यक वीर कटकर मर गये
यह वही वर भूमि है जिसके तनय
सींच इसको हैं, चुके निज रक्त से
यह वही है मेदिनी जिस पर कभी
सैकड़ों वीरांगनाएँ हर्ष से
जल गई है धर्म-रक्षा के लिए ।"[1]

देशोद्धार के लिए आत्मसमर्पित असंख्य वीर-वीरांगनाओं से संपन्न है हमारा भारत । नारी बलिदान और समर्पण की प्रतिमूर्ति है । कृष्णा की विवशता आधुनिक नारी की विवशता

---

1 सियाराम शरण गुप्त रचनावली खण्ड दो -'कृष्णा' पृ. 396

है । जीने की अदम्य आशा रखते हुए भी देश हित के लिए मृत्यु का वरण करने के लिए वह विवश हो जाती है । प्रस्तुत कथन इसका प्रमाण है

"यह भवन, यह वाटिका, ये द्रुम सभी
आज मैं अच्छी तरह से देख लूँ ।
नित्य कितने मोद और विनोद में
दिन बिताये हैं यहाँ मैं ने अहो !
हर्षपूर्वक साथ सखियों के सदा;
की अनेकों सुखद क्रीडाएँ यहीं ।
आज है सबसे यहीं अन्तिम विदा !
चाहती हूँ आज मैं सबसे क्षमा।"[1]

संसार में परिवार की शान्ति के लिए, परिवार को झगड़ों से मुक्ति प्रदान करने के लिए भी कभी कभी नारी को आत्माहुति करनी पड़ती है । यह दुर्बलता पुरुष की अपेक्षा ज़्यादा स्त्री में विद्यमान है ।

जवानसिंह द्वारा लाये गए विष को अमृत समझकर वह जानबूझकर पीती है । आत्मोत्सर्ग के द्वारा कृष्णा को अमरत्व प्राप्त होता है ।

तीसरे अंक में राजमहिषी विक्षिप्त सी पुरुष और क्षत्रियों को कोसती है । पुरुष वर्ग के प्रति राजमहिषि का आक्रोश समसामयिक युग के ममतामयी माँ का आक्रोश है

"हाँ हमारी आत्मजा निर्दोष है ।
दोष जो कुछ है तुम्हारा है सभी ।"
"हाय ऐसे पतित क्षत्रिय हो गये,
त्राण कर सकते नहीं सन्तान का ।"

---

1 सियाराम शरण गुप्त रचनावली खण्ड दो कृष्णा' पृ. 397

"डूब क्यों जाती नहीं यह जाति है;
नारियों से भी पुरुष हैं गिर गये ।
नारियों में तो अभी तक तेज है
अधम पशुओं से अधम हैं हो गये ।"[1]

कृष्णा की मृत्यु होती है । कृष्णा का आत्मोत्सर्ग देश हित के कारण दिव्य बन जाता है । प्रस्तुत गीतिनाट्य में माता-पिता का वात्सल्य, देशप्रेम आदि का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है । कृष्णा के अमर बलिदान की यह कथा नारीत्व की अहमियत को द्योतित करती है ।

अनघ

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 1925 ई. में विरचित सर्वश्रेष्ठ गीतिनाट्य है 'अनघ' । 'अनघ' के कथानक का आधार 'मघजातक' और बौद्धकथा' है ।" दशरथ ओझा का विचार है कि इसकी रचना गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'अचलायतन' की शैली पर की गयी है ।"[2] इसमें आदर्शों और सिद्धान्तों की भरमार है । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "अनघ' एक सैद्धान्तिक नाटक है, उसमें युगधर्म के प्रतीक का सृजन ही मुख्य है । मध निश्चित ही गांधिनीति का प्रतीक है । उसकी घटनाएँ आधुनिक और बहुत प्रत्यक्ष हैं, इस कारण उनमें स्थान स्थान पर कवित्व क्षीण हो गया है ।"[3]

इस नाटक का प्रमुख पात्र मघ, इतिहासपुरुष गौतमबुद्ध का मूर्त रूप है । वह गाँधीजी के व्यक्तित्व से भी प्रभावित पात्र है । दोनों के मानवधर्म मघ के व्यक्तित्व में मौजूद हैं । गाँधीजी विश्वबन्धुत्व और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर ज़ोर देते थे । वे लोकमंगल की कामना रखते थे । उसीतरह मघ भी लोकहित और जनसेवा ही अपना लक्ष्य मानते हैं । अबल जनों की रक्षा वे अपना कर्म समझते हैं । तन सेवा और धनसेवा उसके लिए मुख्य नहीं है । वे सत्य, अहिंसा, दया, सेवा, संयम, त्याग और निष्काम कर्म में विश्वास रखनेवाले आदर्श व्यक्ति हैं ।

---

1 सियाराम शरण गुप्त रचनावली खण्ड दो कृष्णा' पृ. 400
2. हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास दशरथ ओझा पृ. 435
3 आधुनिक हिन्दी नाटक डॉ. नगेन्द्र पृ. 98

मघ के आदर्श व्यक्तित्व पर सुरभी के प्रेम का ओर रहस्यमयी माँ के प्यार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । उसका एक मात्र लक्ष्य यह है

"जहाँ कुछ भी समाज का हित हो
वहीं यह मेरा तनु अर्पित हो ।"[1]

मघ यहाँ साधारण मानव के रूप में नहीं इतिहास पुरुष के रूप में अवतरित होते हैं । मघ की तरह देशसेवा, सर्वभूत हितेरत भावना, क्षमा, त्याग और आदर्श रखनेवाले व्यक्ति समसामयिक युग में बहुत विरले ही मिलते हैं । मघ अपना तन, मन आदि सर्वस्व देश के लिए समर्पित करते हैं ।

वे तन की या बदन की सुध न रखकर सारे गाँव के सुधार के लिए कठिन प्रयत्न करते हैं । वे पराए जनों के दुःख में दुःखी और उनके हर्ष में आनन्दित भी हो उठते हैं । वे कुओं, घाटों की मरम्मत करके, और बाज़ारों की सफाई करके मानवोचित सेवा करते हैं । वे मनुष्यत्व को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं

"अपना मनुष्यत्व खोना
है बस प्रेत मात्र होना ।"[2]

वे अछूतोद्धार का समर्थन करते हैं । वे ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाना चाहते हैं । वे मानव मात्र को समान मानते हैं । सुरंभी का कथन है

"वे ऊँच-नीच का भेद नहीं कुछ रखते,
है मनुज मात्र को एक समान निरखते ।"[3]

"संयम ही उनके उच्च हृदय का बल है;
पर-हित ही उनके प्रेम-विजय का फल है ।
त्यागव्रत ही विश्वास कर्म है उनका;
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका।"[4]

---

1 श्री मैथिलीशरणगुप्त के नाटक 'अनघ' पृ. 16
2. श्री मैथिलीशरणगुप्त के नाटक 'अनघ' पृ. 21
3. श्री मैथिलीशरणगुप्त के नाटक 'अनघ' पृ. 24
4. वही पृ. 23

मघ की सद् प्रवृत्तियाँ जनता के बीच उनके प्रति लोकप्रियता बढाती हैं । सद् आचरण करनेवाला व्यक्ति सभी का आदर पात्र बन जाता है । वह हमारे लिए ईश्वर तुल्य हैं । इसतरह सद्व्यवहार करनेवाले, मानव सेवा करने वाले व्यक्तियों से संपन्न देश है हमारा भारत ।

मघ की लोकप्रियता देखकर मचल ग्राम का शासक ग्राम भोजक को उसके प्रति ईर्ष्या उत्पन्न होती है । सद्जनों की लोकप्रियता ईर्ष्यालू और स्वार्थी व्यक्तियों के मन में ईर्ष्या जगाती है । ग्राम भोजक आज के स्वार्थी, निष्ठुर और ईर्ष्यालू मानव का प्रतिरूप है । वह व्यवहार कुशल और चतुर भी है । वह आज के स्वेच्छाचारी शासक का प्रतिनिधित्व करता है । प्रस्तुत गीतिनाट्य के द्वारा आज के स्वेच्छाचारी शासकों पर तीखा व्यंग्य किया गया है । भोजक मघ की हत्या करने के लिए सुर को आज्ञा देता है; लेकिन सुर इस कार्य में असफल हो जाता है । मारने के लिए आए सुर के प्रति मघ सहानुभूति प्रकट करते हैं और सुर की सेवावृत्ति की प्रशंसा भी करते हैं । जब मघ के मित्र सुर का परिहास करते हैं तब उनका कथन है

"पापों से घृणा करो, प्रयत्न करो, पापी का;
व्यंग्य छोड संग दो सदैव अनुतापी का ।"[1]

धीरे धीरे मघ के अनुयायी बढ़ते जाते हैं । भोजक का पुत्र शोभन भी मघ का अनुयायी बन जाता है । अतः भोजक मघ को राजद्रोही घोषित करता है । सद्पथ पर जानेवाले व्यक्ति के मार्ग में हमेशा दुर्जन रोडे बिछाते हैं ।

मगध देश के राजा मघ पर राजद्रोह का आरोप लगाकर पकड़ने की आज्ञा देते हैं । उसका अपराध है आततायियों को शरण देना, कर वसूली में रोड़ा अटकना और चोर डाकुओं को स्वच्छन्द विचरने देना । सदाचरण करनेवाले व्यक्तियों पर झूठा दोषारोपण लगाकर पकड़ने की प्रवृत्ति प्राचीनकाल से लेकर आज तक ज़ारी है । अतः वर्तमान युग में भी यह ज़्यादा प्रासंगिक है ।

---

1 श्री मैथिलीशरणगुप्त के नाटक 'अनघ' पृ. 38

राजा की आज्ञा सुनकर मघ की प्रेमिका सुरभी, स्नेहमयी माँ, पिताजी सभी मगध देश में पहूँचते हैं । राजा मघ को हाथियों से कुचलने का आदेश देते हैं । किन्तु हाथी मघ को नहीं मारते । पुनः न्याय का प्रश्न उठता है । उसके अनुयायी और मघ से सहायता प्राप्त मानव मघ का समर्थन करते हैं । अन्त में निर्णय होता है

"निश्चय मघ है अनघ, अनघ पहले फिर मघ है ।"[1]

सुरभी मघ की प्रेमिका है । उसमें भी मघ की तरह भावुकता, करुणा, ममता, दया आदि जो स्त्रियों के गुण हैं, विद्यमान हैं । अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली आधुनिक जागृत नारी का प्रतीक है सुरभी । इस पात्र के माध्यम से स्त्री की मनोदशा का सफल चित्रण रचनाकार ने किया है । मघ स्त्रियों को देवी समान मानते थे । स्त्री का आदरकर स्त्री के स्वत्व को अच्छी तरह पहचाननेवाला व्यक्तित्व है उनका । सुरभी से उनका कथन है

"स्त्रियाँ हैं देवियाँ मेरी;
न भोग्य हैं, न वे चेरी ।"[2]

विवाह के संबन्ध में सुरभी से वे कहते हैं

"न तन सेवा, न मन सेवा,
न जीवन और धन-सेवा,
मुझे है इष्ट जनसेवा,
सदा सच्ची भुवन सेवा,
न होगी पूर्ण वह तब तक
न हो सहधर्मिणी जब तक।"[3]

वे जनसेवा को विवाह से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं ।

---

1 श्री मैथिलीशरणगुप्त के नाटक 'अनघ' पृ. 84
2. श्री मैथिलीशरणगुप्त के नाटक 'अनघ' पृ. 60
3. वही पृ. 60

जिसप्रकार मघ ने अपने रास्ते में आनेवाली कठिनाइयों का सामनाकर लक्ष्य प्राप्त किया उसीप्रकार देशहित के लिए कठिनाइयों का सामना करने का उपदेश प्रस्तुत गीतिनाट्य के द्वारा नाटककार ने दिया है । मघ के चरित्र की महानता, सेवाभाव और त्याग के भाव, अछूतोद्धार के लिए प्रयत्न आदि देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहूँचते हैं कि लेखक के मन पर गाँधीजी के व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पड़ा है ।

सत् और असत् के बीच का संघर्ष इस नाट्य कृति में आद्यन्त विद्यमान है । अन्त में असत् पर सत् की विजय होती है । इसमें बाह्य संघर्ष अधिक सशक्त है और अंतःसंघष बहुत दुर्बल है ।

वर्तमान युग में आदर्श का कोई मूल्य नहीं रह गया है । आज मानव स्वहित को प्रधानता देते हैं, परहित को नहीं । सत्य, अहिंसा, धर्म, त्याग, मनुष्यत्व आदि सद्‌गुणों का अभाव आधुनिक मानव में दृष्टव्य है । इसतरह वर्तमानयुग में मूल्यच्युति हो गयी है । खोये हुए परंपरागत मूल्यों को बनाये रखने की कोशिश और इनकी पुनःस्थापना करने का प्रयत्न नाटककार ने 'अनघ' के द्वारा किया है । इस स्वार्थप्रेरित युग में पुनः एक गाँधीजी की ज़रूरत है, उसकी सृष्टि गीतिनाट्यकार ने की है ।

पंचवटी प्रसंग

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के ''परिमल" में संग्रहीत मिथकीय गीतिनाट्य है "पंचवटी प्रसंग" । प्रस्तुत रचना 'रामायण' के शूर्पणखा प्रसंग को आधार बनाकर लिखी गयी है । कुछ समीक्षक अंतःसंघर्ष के अभाव के कारण इसे गीतिनाट्य न मानकर नाट्य कविता मानते हैं । इसका प्रकाशन सन् 1930 में हुआ ।

'पंचवटी प्रसंग' में निराला ने प्रलय, प्रकृति आदि आद्य मिथकों का प्रयोगकर नवीन

व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं । मानव और प्रकृति के बीच के सुदृढ़ संबन्ध को व्यक्त करने का प्रयत्न निरालाजी ने इसमें किया है ।

'पंचवटी प्रसंग' एक राम और सीता के बीच के संवाद से शुरू होता है । वे पुष्पवाटिका मिलन, दिव्यप्रेम, प्रेम की महिमा, प्राकृतिक सौंदर्य, अनसूया के निश्चल और निष्काम प्यार, भरत का भक्तिभाव, लक्ष्मण के सेवाभाव, आत्मत्याग और सरलता आदि का परामर्श करते हैं ।

'पंचवटी प्रसंग' दो में लक्ष्मण के भक्तिभाव, मातृभक्ति और सेवाभाव का विस्तृत वर्णन है । लक्ष्मण यहाँ सीता के चरित्र को सामने रखकर नारी की महिमा के संबन्ध में बताते हैं । लक्ष्मण की मातृभक्ति अचंचल और असीम है । सीता को वे अपनी माता मानते थे । माता सीता के माध्यम से नारी के शक्तिस्वरूपिणी रूप का जीताजागता चित्र निराला ने उपस्थित किया है । लक्ष्मण का कथन इसके लिए उदाहरण है

"जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग
बनते पलते हैं, नष्ट होते हैं अन्त में
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती हैं
आदि शक्तिरूपिणी,

शक्ति से, जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है माता हैं मेरे वे ।

जिनके गुण गाकर भवसिन्धु पार करते
प्रणाव से लेकर प्रतिमन्त्र के अर्थ में
जिनके अस्तित्व की ही
दीखती है दृढ छाप
माता है मेरी वे।" [1]

---

1 पंचवटी प्रसंग-निराला पृ. 42

'पंचवटी प्रसंग' तीन में स्वयं अपने सौन्दर्य पर गर्व करनेवाली शूर्पनखा की आत्माभिव्यक्ति है । चतुर्थ प्रसंग में राम प्रलय, सृष्टि, प्रकृति भक्ति एवं ज्ञान के स्वरूप को समझाते हैं । लक्ष्मण से राम का कथन है

"प्यष्टि और समष्टि में नहीं है भेद,
भेद उपजाता भ्रम-
माया जिसे कहते हैं ।"[1]

भ्रम से बचने के लिए जीव योग सीखता है । वह योगियों के साथ रहकर मन, बुद्धि और अहंकार से लड़ता है । अपने ही भीतर वह अखिल ब्रह्माण्ड भाण्ड देखता है । व्यष्टि तो समष्टि से अभिन्न है । यह ज्ञान उसे प्राप्त होता है । सृष्टि स्थिति प्रलय का कारण भी वही है ।

"सच है, तब प्रकृति उसे सर्वशक्ति देती है

अष्टसिद्धियाँ, वह
सर्वशक्तिमान होता;
इसे भी जब छोड़ता वह
पार करता रेखा जब समष्टि अहंकार की
चढता है आत्मसोपान पर
प्रलय तभी होता है
मिलन वह अपने सच्चिदानन्द रूप से।"[2]

"राम-लक्ष्मण के संवाद के माध्यम से सौरजगत के वस्तुतत्व और भावतत्व को सुलझाने का प्रयास किया है ।"[3] राम, लक्ष्मण और सीता इन तीनों के माध्यम से निराला ने

---

1 पंचवटी प्रसंग निराला पृ. 46
2. वही पृ. 47
3. मिथक और भाषा शंभूनाथ पृ. 161

मानव के अपने अन्दर छिपे भ्रम को पार करने का उपदेश दिया है । निर्मल चित्त में ही प्रेम उत्पन्न होता है । चित्त निर्मल नहीं है तो वह प्रेम भी व्यर्थ है । वह मनुष्य को पशुता की ओर खींचता है । प्रस्तुत तथ्य को समझाने का प्रयत्न इसमें किया गया है । इसमें व्यष्टि-समष्टि, माया-ज्ञान आदि से संबन्धित गंभीर दार्शनिक चिन्तन है ।

'पंचवटी प्रसंग' पाँच में शूर्पणखा का प्रेम प्रस्ताव, राम-लक्ष्मण द्वारा इसका तिरस्कार, अन्त में शूर्पणखा के नाक-कान काटने की नौबत आदि का वर्णन है । शूर्पनखा के अधम चरित्र के द्वारा नैतिकमूल्यों का पतन निराला ने दिखाया है । संसार में उत्तम नारी पात्र मात्र नहीं शूर्पणखा जैसे अधम पात्र भी मौजूद हैं । जिसप्रकार शूर्पणखा राम-रावण युद्ध का मूलकारण बन जाती है उसी प्रकार समाज में विराजमान शूर्पणखा जैसी अधम नारियाँ अपने परिवार में मात्र नहीं समाज में भी कलह का कारण बन जाती हैं । मुक्त छन्द में लिखित इस गीतिनाट्य में निराला ने पौराणिक मिथक का प्रश्रय लेकर प्राचीन मानव मूल्यों को नए संदर्भ के अनुकूल नवीन व्याख्या प्रदान की है । निरालाजी एक ओर सीता के द्वारा नारी महिमा को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हैं दूसरी ओर शूर्पणखा के द्वारा नारी की गिरी हुई स्थिति को भी रेखांकित करते हैं । स्त्री में निहित दोनों तत्वों अर्थात सत् एवं तमोगुणों का रूप दिखाकर समकालीन संदर्भ में समाज में स्त्री के स्थान के बारे में सोचने केलिए निराला हमें प्रेरित करते हैं ।

स्वर्णविहान

सन् 1930 में मैथिलीशरणगुप्तजी के 'अनघ' की शैली पर लिखा गया गीतिनाट्य है 'स्वर्णविहान' । इसमें 'अनघ' की भाँति गाँधीवादी प्रभाव अधिक दृष्टव्य है । यह हरिकृष्ण प्रेमी की सर्वप्रथम रचना है । इस गीतिनाट्य में रचनाकार ने भारत की दुर्दशा का वर्णन तत्कालीन परिस्थिति के संदर्भ में किया है । यह गीतिनाट्य प्रेमीजी ने अपनी जननी और जन्मभूमि दोनों के लिए अर्पित किया है ।

प्रस्तुत रचना गाँधीजी के आदर्शों का मूर्त रूप है । प्रेमीजी ने अजमेर में 'त्यागभूमि' के संपादकीय विभाग में कार्य करते समय यह गीतिनाट्य लिखा था । जनता को अंग्रेज़ों के विरुद्ध अहिंसात्मक संग्राम करने की प्रेरणा देना इस का उद्देश्य है । प्रस्तुत काल्पनिक कथा के द्वारा तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति की ओर उन्होंने संकेत किया है । इस कारण से अग्रेज़ सरकार ने इसे जब्त कर लिया था । प्रेमीजी ने स्वयं कहा है "यह नाटिका अहिंसा और प्रेम के अमोघ अस्त्रों द्वारा अत्याचार, अन्याय और घृणा पर विजय पाने का मार्ग बताती है । इसलिए आज भी इसका उपयोग है । क्योंकि वे मानते हैं कि "गाँधी का मार्ग ही संसार को महाविनाश से बचा सकता है ।"[1]

गाँधीजी की राय में जिसप्रकार आग से आग बुझाना व्यर्थ है उसीप्रकार पाप से पाप मिटाना महा गलत है । उन्होंने रोषाग्नि से ज्वलित युवावर्ग को अहिंसा का पाठ पढाकर शांत कर दिया । प्रेमजी ने इसी आदर्श को लेकर प्रस्तुत गीतिनाट्य में यह दिखाया है कि अहिंसा और असहयोग आन्दोलन द्वारा जनता अत्याचारी और स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कैसे करती है ।

प्रस्तुत रचना का प्राणतत्व देशप्रेम है फिर भी व्यक्तिगत प्रेम भी उपलब्ध है । नाट्यकार ने व्यक्तिगत चाह को लोकप्रेम के अन्तर्गत रखकर देखा है । प्रेमीजी ने प्रेम की परिधि को व्यक्तिगत चाह से खींचकर पीडित जनता की सेवा तक व्यापक बना दिया । नायक के जीवन में संघर्ष का क्षण आता है, वह अनुभव करता है कि केवल आदर्श-देशसेवा, कर्मठता, प्राणों की भूख नहीं मिटा सकता-उसे कुछ और चाहिए । और जब यह 'कुछ और' उसे लालसा के द्वारा मिलता है तो कुछ देर के लिए उसके मन का संयम बह जाता है । प्रेमीजी ने निवेदन में कहा है कि "वे 'कला-कला के लिए हैं'। सिद्धान्त को मानने वाले हैं ।"[2]

जहाँ धर्म और सत्य है वहाँ ईश्वर होंगे। आज के लोग विशेषकर युवापीढी धर्म और सत्य से विच्छिन्न होकर ज़िन्दगी जी रही हैं । प्रेमीजी ने प्रस्तुत रचना के द्वारा उनको सत्य और अहिंसा के पथ पर चलने का सन्देश दिया है । इसमें अहिंसा के द्वारा हिंसा को जीतने का प्रयास है ।

---

1 स्वर्णविहान (1973) इस संस्करण के संबन्ध में पृ. 2

2. हिन्दी नाटक और रंगमंच पहचान और परख डॉ. गिरीश रस्तोगी पृ. 104-105

पात्रों के अंतःसंघर्ष भी सफलतापूर्वक चित्रित है । अन्योक्ति रूप में यह गीतिनाट्य विरचित है

"बाला-रणचण्डी खेल दिखा दूँ
मैं बाला सुकुमार ।
जीवन-मरण, जगत-अजगत है
मुझको एकाकार
मैं हिन्दू घर की विधवा हूँ
जो पृथ्वी पर भार
जो किसान से अधिक दुःखी है
जीना भी निस्सार ।"[1]

प्रारंभिक पंक्तियाँ किसान, विधवा और शोषित नारी के दुःख को प्रतिपादित करती हैं। तभी सन्यासी वहाँ प्रत्यक्ष-होता है

"माँ तुझ पर बलि हो वे प्राण
तुझे रिझाने ही तनता है
नभ में स्वर्णविहान
तुझे सजाने ही खिलती है
कुंजों में मुस्कान ।"[2]

सन्यासी स्वर्णविहान को अपनाने का मार्ग बताता है

"कहाँ कभी क्या है पशुबल की
तुम पर कहाँ तोप तलवार !
असहयोग का महामंत्र ही
हो जग के दुःख का उपचार।"[3]

---

1 स्वर्णविहान हरिकृष्ण प्रेमी पृ. 11
2. वही पृ. 14
3. वही पृ. 18

सन्यासी की वाणी में सचमुच गाँधीजी ही बोल रहे हैं ।

इसमें चित्रित अत्याचारी राजा रणवीर अंग्रेज़ों का प्रतिनिधि है और सेनापति बलवीर अंग्रेज़ी सरकार के अत्याचारी अफसर का प्रतीक है ।

भारतीय जनता के प्रतीक हैं इस गीतिनाट्य के अन्य मुख्य पात्र लालसा, मोहन और विजय । गाँधीजी का प्रतिरूप है इस नाटक का सन्यासी पात्र ।

तीसरे और चौथे दृश्य में श्रृंगार का वर्णन है । मन और शरीर की तृप्ति के लिए देशप्रेम, कर्मठता, कर्तव्य निष्ठा और आन्दोलन के अलावा अन्य वस्तु की भी ज़रूरत है जिससे जीवन की पूर्णता होगी । लालसा के कथन में यह बात स्पष्ट झलकती है

"चारु चन्द्र का चुम्बन करने
चंचल हैं उर के अरमान
किस बन्धन से बांधूँ अपने
आकुल यौवन का तूफान
एक अपरिचित को वीणा का
पड़ा सुनायी मुझको गान।
तन,मन, प्राण, हृदय का सब कुछ
किया अचानक उसको दान ।"[1]

पात्र लालसा अपने मन की अदम्य लालसा का प्रतीक है ।

पाँचवाँ दृश्य अत्यन्त प्रभावोत्पादक है । इस दृश्य में मोहन, विजय, सन्यासी और कृषकगण सभी उपस्थित हैं।

---

1 स्वर्णविहान हरिकृष्ण प्रेमी पृ. 27

मोहन कहता है

"आज युग युग का कटु अपमान
पूछता है तुमसे अनजान ।
भुगत सकते हो कारागार ?
चढा सकते हो क्या तुम प्राण ?
करो मत नृप सत्ता स्वीकार,
न दो अब पापों में सहयोग ।
न दो उसको कर कौडी एक,
सहो पशुबल के सकल प्रयोग ।"[1]

इस उत्साहपूर्ण कथन से सारी सभा उद्वेलित होती है और एक किसान यह नारा लगाता है जो 1947 से पूर्व अत्यधिक लोकप्रिय था । यह नारा "नहीं रखनी जालिम सरकार" स्वतन्त्रताप्राप्ति का प्रतीक था ।

"नहीं रखनी जालिम सरकार,
भले ही ले वह शीश उतार।
न देंगे उसको कभी लगान,
भले ही जलवा दे घर-द्वार ।" [2]

प्रस्तुत सभा हमें गाँधीजी की सभा की तरह लग रही है । गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन का प्रभाव किसान की वाणी से व्यक्त है ।

तभी गाँधीजी का प्रतिरूप सन्यासी कहता है

"अहिंसा और प्रेम से बन्धु
मिटाना है, यह अत्याचार
कभी तलवारों की कटु धार
काटने मत लेना तलवार।
प्रेम ही है वह शक्ति अपार
काटती जो शस्त्रों की धार ।"[3]

---

1 स्वर्णविहान हरिकृष्ण प्रेमी पृ. 42

2. वही पृ. 42

3. स्वर्णविहान हरिकृष्ण प्रेमी पृ. 43

देश की भलाई के लिए हमें अहिंसा और प्रेम को अपनाना चाहिए । अन्त में नृशंस, अत्याचारी, हिंसक विद्रोही शक्तियों पर अहिंसा शक्ति की विजय होती है । नेता लोग जेल मुक्त हो जाते हैं । प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होता है । स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है । हत्या और अत्याचार समाप्त हो जाते हैं ।

'स्वर्णविहान' में गाँधीजी का आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना निहित है । आदर्शवाद, मानवतावाद, नैतिकताबोध-, स्वतन्त्रता बोध, देशप्रेम आदि भावनाओं से ओतप्रोत यह रचना अत्यन्त सफल है । इसमें चित्रित आदर्शवाद में यथार्थता भी है । जो सत्य और अहिंसा के मार्ग को अपनाता है उनकी विजय ज़रूर होगी । प्रस्तुत गीतिनाट्य का यह सन्देश आज भी प्रासंगिक है ।

तारा

भगवतीचरणवर्मा जीवन के प्रति अडिग आस्था रखनेवाले गीतिनाट्यकार हैं । मुख्य रूप से वे उपन्यासकार हैं । उनके काव्य को छायावादोत्तर काव्य की कोटि में रखा जा सकता है । उनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं 'त्रिपथगा' भैंसागाडी 'आदि । 'तारा' एकांकी गीतिनाट्य है । यह भगवती चरणवर्मा के पहले काव्यसंग्रह 'मधुकण' में संग्रहीत है । इसका प्रकाशन 1932 ई. में हुआ । प्रस्तुत गीतिनाट्य पाप और पुण्य की समस्याओं को लेकर लिखा गया है ।

प्रथम दृश्य में वासना और धर्म कां संघर्ष है । युवती और सुन्दरी नारी तारा देवगुरु बृहस्पति की पत्नी है । वह अपनी अतृप्त कामनाओं की पूर्ति करना चाहती है । लेकिन धर्म, कर्तव्य भावना, पतिभक्ति आदि इसमें विघ्न डालते हैं । उसके मन में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि प्रकृति के सहज नियम को स्वीकार करे या स्वामी के पूज्य चरणरज को । तारा का अंतःसंघर्ष यहां स्पष्ट झलकता है । तारा का कथन है

"आराधना । अरे किसकी आराधना
मनोभाव की और प्रकृति के नियम की ?
या स्वामी के पूज्य चरण रज की ? "[1]

यह संघर्ष प्रकृति नियम और पति के प्रति आराधना का संघर्ष है ।

जब उसके मन में पति के प्रति अपनी कर्तव्य भावना जाग उठती है तब संयम का प्रयत्न वह करती है

"भ्रम है, भ्रम है, निपट पाप की प्रेरणा !
है कर्तव्य प्रधान और आराधना ।" [2]

वह अपने पति वृद्ध बृहस्पति को प्रेमपात्र के बदले पूज्य पात्र के रूप में मानती है । लेकिन तारा के मन में पावन प्रेम की और रस की चाह है जो बृहस्पति से प्राप्त नहीं हो सकता । वह कहती है

"मुझे चाह है रस की पावन प्रेम की ।" [3]

इस तरह स्त्री के मन में परपुरुष के प्रति उत्पन्न होने वाली आसक्ति सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन है और धर्म के विरुद्ध है । यह आकर्षण नैतिकता के पतन का कारण बन जाता है । फिर भी कभी कभी चरित्रवान् युवती भी परिस्थितिवश अपने मन में उदित वासना को रोक नहीं पाती । बृहस्पति तारा का वचन सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं और उसे समझाते हुए कहते हैं

"तृष्णा का प्राबल्य, पाप की वासना
इसका दमन हमारा कर्तव्य है ।"[4]

---

1 'तारा' भगवती चरणवर्मा पृ. 56
2. वही पृ. 56
3. वही पृ. 57
4. वही पृ. 57

"मृगतृष्णा सा यह संसार असार है ।
यह वासना इस जीवन के अध:पतन की मूल है ।"[1]

बृहस्पति का कथन सुनकर थोड़ी देर केलिए उसका चित्त स्थिर हो जाता है । यहाँ बृहस्पति संसार की नश्वरता के संबन्ध में बताते हैं । वे संसार की नश्वरता के कारण ऐश्वर्य, भोग और वासना को मानते हैं ।

दूसरे दृश्य में बृहस्पति अपने शिष्य चन्द्रमा के सवालों का जवाब दे रहे हैं । वे चन्द्रमा से पाप-पुण्य के बारे में कहते हैं

"पाप? पाप क्या है ? मनुष्य की भूल है
है समाज के नियमों की अवहेलना;
एक परिधि है आकांक्षा की, चाह की
उसके भीतर रहकर चलना पुण्य है,
उसके बाहर गए और बस पाप है ।" [2]

आकांक्षा या चाह की एक सीमा होती है । सीमा का उल्लंघन करने से वह पाप बनता है । मनुष्य अपने मन में उचित और अनुचित सारे सुखों की कामना रखते हैं । लेकिन सामाजिक नियम ही उचित-अनुचित को निर्द्धारित करता है ।

फिर बृहस्पति वासना की व्याख्या देते हैं

"इच्छा और वासना! जीवन क्रान्ति है !
मनोवृत्ति को प्रेरित करती वासना,
मनोवृत्ति आकांक्षा का आधार है,
आकांक्षा ही परिवर्तन का मूल है,

---

1 'तारा' भगवती चरणवर्मा पृ. 57
2. वही पृ. 59

परिवर्तन है अमिट नियम इस प्रकृति का
इसलिए वासना प्रकृति का अंश है ।
प्रकृति स्वयम् है पापपुण्य कुछ भी नहीं "।[1]

"प्रकृति स्वयम् है पापपुण्य कुछ भी नहीं" यह वाक्य चन्द्रमा को बार बार प्रभावित करता है और आगे की गतिविधि के लिए यह प्रेरक बन जाता है ।

बृहस्पति वासना को अभिशाप मानते हैं । बृहस्पति के कथन के माध्यम से गीतिनाट्यकार ने वासनारूपी अभिशाप को छोड़ने का उपदेश दिया है । वासनापूर्ति के लिए मानव उचित-अनुचित का विचार छोड़कर सामाजिक नियमों का उल्लंघन करते हैं ।

प्रथम दर्शन में ही परपुरुष चन्द्रमा के प्रति तारा के मन में अनुराग उत्पन्न होता है । जब चन्द्रमा उसे माता कहकर प्रणाम करता है तब उसकी वासना वृत्ति पर चोट लगती है । समस्त बुरी भावनाएँ नष्ट होकर सद्भावनाएँ जाग्रत होती हैं । आश्रम की सेवा का भार चन्द्रमा पर सौंपकर बृहस्पति चले जाते हैं । चन्द्रमा भी तारा के सौदर्य से मुग्ध हो जाता है ।

तृतीय दृश्य में वासना और धर्म के बीच का संघर्ष परम कोटि में पहूँचता है । इस दृश्य में 'इड' और 'सूपरईगो' के द्वन्द्व को सफलतापूर्वक दिखाया गया है । तारा और चन्द्रमा के मन में अदम्य इच्छा भरी पड़ी है । पाप-पुण्य को लेकर दोनों के मन में संघर्ष चल रहा है । यहाँ पापपुण्य की समस्या को चित्रित करने के लिए रचनाकार मनोवैज्ञानिक शैली को अपनाते हैं । निरंतर संघर्ष होने पर भी तारा अपने अदम्य काम वासना को रोक नहीं पाती । फिर भी धर्म भीरु बनकर वह चन्द्रमा से प्रार्थना करती है

"हाथ जोड़ती, इस निर्बल हृदय को
दिखलाओ सन्मार्ग, तुम्हारा धर्म है ।
पाप मार्ग की ओर न प्रेरित तुम करो।"[2]

---

1 'तारा' भगवती चरणवर्मा पृ. 59
2. 'तारा' भगवती चरणवर्मा पृ. 67

अंत में तारा अपनी वासनापूर्ति के लिए पाप को खुले मन से स्वीकार करके चन्द्रमा के सम्मुख आत्मसमर्पण करती है। इस प्रकार नैतिक मन की पराजय और इदम् की विजय होती है ।

तारा आधुनिक नारी का प्रतीक है । तारा की समस्या आधुनिक नारी की समस्या है । अपने कामवासना की पूर्ति के लिए परपुरुषों के सम्मुख आत्म समर्पण करनेवाली, नैतिकता का उल्लंघन करनेवाली आधुनिक नारी हमारे समाज में मौजूद है । साथ ही साथ वह अपने पति के प्रति कर्तव्य निष्ठ भी है । अपने पति से कामवासना की पूर्ति न होने पर स्त्री अपथ संचारिणी बनती है । जिस नारी को पति से प्यार के बदले अवहेलना मात्र प्राप्त होती है वह नैतिकता का उल्लंघन करे तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं । वृद्ध बृहस्पति से कामवासना की तृप्ति न होने के कारण ही चन्द्रमा के सम्मुख तारा सर्वस्व समर्पण करती है ।

चौथे दृश्य में बृहस्पति अपने ज्ञान से सबकुछ समझते हैं । वे दोनों को शाप देते हैं । डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में "यह एक समस्या प्रधान नाटक है । इसमें पति-पत्नी का प्रेम और ज्ञान के बीच में भ्रमित होना चित्रित किया गया है । इस गीतिनाट्य का सारा सौंदर्य उसके अन्तरद्धन्द्व चित्रण में दिखायी देता है।"[1]

इस गीतिनाट्य में तारा के चारित्रिक पतन का मूलकारण अपने पति वृद्ध बृहस्पति ही हैं जिसने नवयुवती और पत्नी तारा की सहज स्वाभाविक कामनाओं की पूर्ति नहीं की । प्रेम के बदले शुष्क और नीरस उपदेश दिए हैं। इसमें रचनाकार तारा के चरित्र चित्रण से नारी को दोषी नहीं ठहराते प्रत्युत उन्होंने नारी की विवशता का उल्लेख किया है । वे नारी के चारित्रिक पतन के मूलकारण के रूप में बृहस्पति जैसे पुरुष को दोषी कहते है । तारा का चारित्रिक पतन नैतिकदृष्टि से भारतीय संस्कृति और नारी धर्म के विरुद्ध होते हुए भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक है । नारी का मन हमेशा चंचल होता है । यही चंचलता उचितानुचित का निर्णय लेने

---

1 शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त; गोविन्द त्रिगुणायत पृ. 303

से उसे रोकती है । नारी की अस्वतन्त्रता का उल्लेख यहाँ मिलता है । चन्द्रमा आज के नारी शोषक का प्रतिरूप है । वह नारी की दुर्बलता को और अनुकूल परिस्थिति को तर्क वितर्क और सहज बुद्धि से अपनी लक्ष्य सिद्धि का माध्यम बनाता है । चन्द्रमा की तरह अनेक नारी शोषक ओर तारा जैसी कई शोषित नारियाँ वर्तमान युग में दृष्टव्य हैं । पुरुष अपने वाग्जाल की फाँस से स्त्री को आकर्षित करता है । चंचल हृदया रमणी जल्दी से जल्दी उस के जाल में फँस जाती है । इक्कीसवीं सदी में भी नारी की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आ गया है । नारी आज भी पुरुष के हाथ का खिलौना है ।

मत्स्यगन्धा

'मत्स्यगन्धा' उदयशंकर भट्ट द्वारा रचित सशक्त गीतिनाट्य है । 1934 में इसका प्रकाशन हुआ है । उदयशंकर भट्ट कवि, नाटककार और उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त रचनाकार हैं । मत्स्यगन्धा को कथा महाभारत से ली गयी है । इसमें मानव भावों की अभिव्यक्ति सशक्त रूप से हुई है । यह गीतिनाट्य पौराणिक पात्र मत्स्यगन्धा के अन्तर्द्वन्द्व पर आधारित है । इतिहास में मत्स्यगन्धा का नाम सत्यवती ही है । पौराणिक कथा में मत्स्यगन्धा चिरयौवन का प्रतीक है । 'मत्स्यगन्धा' में चित्रित नारी का अन्तःसंघर्ष संपूर्ण नारी समाज का संघर्ष है । उदयशंकर भट्ट के इस नारी प्रधान गीतिनाट्य में नर-नारी संघर्ष और उनके बीच उपजती प्रेम समस्या का सुन्दर चित्र अंकित है ।

मत्स्यगन्धा अत्यन्त सशक्त नारी पात्र है । प्रकृति का मादक सौंदर्य मत्स्यगन्धा को प्रलोभित करता है । वह उसके मन की भावुक भावनाओं को उद्वेलित करता है । यौवनयुक्ता नारी मत्स्यगन्धा के मन में यौवनसुलभ मधुर अभिलाषाएँ जागती हैं । हृदय में एक पीड़ा का अनुभव होता है । वह नख शिख आनन्द विभोर हो उठती है । वह ज़रा देर के लिए अपनी परिस्थिति को भूलती है । वह संपूर्ण धर्मनीतियाँ और सारे विश्व को भूल जाती है और

सामाजिक मर्यादाओं पर ध्यान तक नहीं देती । अचानक वह अपनी वास्तविक स्थिति के बारे में सोचती है । वह दरिद्र केवट की बेटी है । फिर भी उसके मन में मधुर कामनाएँ उभर आती हैं । मत्स्यगन्धा का अन्तःसंघर्ष इसमें विद्यमान है ।

तभी अनंग प्रवेश करता है । डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में"मनोविज्ञान की दृष्टि से मत्स्यगन्धा का मनोविचार ही यहाँ मूर्तिमान होकर सामने आता है ।"[1] सचमुच अनंग मत्स्यगन्धा की भावुक भावनाओं का प्रतिरूप है । अनंग मानव की उन्मुक्त कामनाओं का प्रतीक है जिसे वश में लाना मनुष्य केलिए असंभव है । अनंग उसे पूर्णयौवन प्रदान करना चाहता है । लेकिन मत्स्यगन्धा चौंककर कहती है

'ओ अनंग, ओ अनंग !
मैं दरिद्र केवट की बेटी हूँ उपायहीन ।
एक उल्कापात सी निरर्थक धरा धाम पर
छोड दो मुझे न व्यर्थ, पात्र करो है अनंग;
यौवन चषक का अनन्त मद नव-नव।
क्या करूँगी ले के इसे असहाय दीन-हीन
कहीं नाव डूबे न....." [2]

छायामय अनंग मत्स्यगन्धा को पूर्ण यौवन का वरदान देकर अदृश्य होता है । अनंग के प्रस्थान से मत्स्यगन्धा के हृदय की यौवन लालसा और भी उद्दीप्त होती है । अनंग से उसका संवाद ही मत्स्यगन्धा के मनोव्यापार की संपूर्ण अभिव्यक्ति है । "अनंग प्रदत्त अक्षय यौवन के वरदान की प्रथम अस्वीकृति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भोगवृत्ति का दमन है।" [3]

मत्स्यगन्धा की अदम्य लालसा से यौवन उसका साध्य बन जाता है । यौवन के शीतल स्पर्श से मत्स्यगन्धा आत्मविभोर होकर सामाजिक धर्मनीतियाँ विस्मृत करती है । उसके मन की

---

1 आधुनिक हिन्दी नाटक डॉ. नगेन्द्र पृ. 108

2. विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट पृ. 52

3. भारतीय नाट्य साहित्य लेख डॉ. विश्वनाथ भट्ट 'नाटककार उदशंकर भट्ट' पृ. 348

अदम्य दमित इच्छाएँ समुद्र में तरंगों की तरह फूट पडती हैं। इसकी चरम सोमा में वह उन्मादिनी-सी बनती है । यौवन जन्य अभिलाषाओं की चरमावस्था में नारी सबकुछ भूल जाती है फिर उसपर सामाजिक मर्यादाओं की चोट लगती है । मत्स्यगन्धा के माध्यम से भट्टजी ने नारी मन के मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्घाटन किया है । मानव मन में उद्भूत रोमैंटिक अभिलाषाएँ सारी बाधाओं का उल्लंघन कर आगे बढती हैं तब नैतिकता नष्ट हो जाती है । लेकिन मनुष्य सामाजिक प्राणी है । सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज से विच्छिन्न होकर जी नहीं सकता । उसे सामाजिक मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है ।

दूसरे दृश्य में वृद्ध ऋषि पराशर नदी पार करने को वहाँ पहूँचता है । नाव में पराशर कामान्ध होकर मत्स्यगन्धा के सामने रतिप्रस्ताव करते हैं । सामाजिक नैतिकता बोध और प्रवाद भीति से भयभीत होकर वह इस प्रकार कहती है

"यह तो अनय प्रभो, कैसे मान लूँ मैं यह,
हीन जाति तो भी है समाज का अनन्त भय"[1]

यहाँ मत्स्यगन्धा की विवशता और अदम्य लालसा का संघर्ष है । यह विवशता और संघर्ष संपूर्ण नारीवर्ग के हैं । पराशर की पाप-पुण्य, कर्म-अकर्म, ऊँच-नीच संबन्धी नवीन व्याख्या सुनकर उनसे मिले कन्यकात्व और अक्षय यौवन के वरदान से वह पूर्ण तृप्त हो जाती है । पराशर के माध्यम से मनुज कृत समाज विधान का परिचय भट्टजी देते हैं ।

मत्स्यगन्धा का सुन्दर रूप उसकेलिए वरदान के साथ साथ अभिशाप भी है । आधुनिक युग में भी नारी का सौन्दर्य कभी कभी उसकेलिए अभिशाप बन जाता है । इसी कारण से प्रायः नारी शोषण होता है । कामान्ध पराशर आज के कामान्ध पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । नारी को वश में लाने के लिए समर्थ पुरुष के रूप में वे हमारे सम्मुख आते हैं । समाज में नारी की स्थिति पर भट्टजी बोल उठते हैं

---

1 विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट पृ. 58

"नारी के स्वरूप सुख शोभा में छिपे हैं देव
संख्याहीन अभिशाप, संख्याहीन यातना ।
वासना का वेग बहता है अति भीम यहाँ
कुछ दमनीय वह प्रलोभन पुंज और
आकर्षक नारी एक श्वेततम पट सम
जिस पै तनिक बिन्दुपात भी कलंक है।" [1]

अपयश, अपलाप सब नारी के लिए सृष्ट हैं । ये सब नारी के जीवित रहते ही उसका मरण रच डालते हैं । समाज में नारी की शोचनीय स्थिति यहाँ चित्रित है । इक्कीसवीं सदी में भी इसमें कोई बदलाव नहीं आ गया है । अनादिकाल से ही ये बन्धन उनके पीछे पड़े हुए हैं । इनको तोड़कर आगे बढना नारी केलिए असंभव है ।

पराशर दुनिया के सामाजिक परिवर्तन के बारे में कहकर मत्स्यगन्धा को प्रेरणा देते हैं । वह पराशर के सम्मुख आत्मसमर्पण करती है । कामान्ध पुरुष अपनी बुद्धि और तर्क-वितर्क से स्त्री को अपनी भोग्या बनाता है ।

यहाँ पराशर के द्वारा गीतिनाट्यकार ने पुरुष के स्वार्थ को अभिव्यक्त किया है । नारी का हृदय कोमल और चंचल है । अतः नारी का हृदय जल्दी ही आत्मसमर्पण के लिए तैयार हो जाता है । मत्स्यगन्धा के आत्मसमर्पण द्वारा यह भाव व्यक्त किया गया है ।

चौथे दृश्य में अक्षय यौवन के वरदान से मदांध मत्स्यगन्धा का चित्र अंकित है । पाँचवें दृश्य में वह चिरयौवना सत्यवती के रूप में दिखाई देती है । दृश्यान्त में मृगया से लौटे महाराज शांतनु की विक्षिप्त संज्ञाहीन स्थिति की सूचना पाकर वह आशंकित हो उठती है । तब उसे प्राप्त अक्षय यौवन अभिशाप सा प्रतीत होता है ।

छठे दृश्य में सत्यवती विधवा के रूप में दिखाई पड़ती है । वह कराहती है

---

1. विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट पृ. 60

"ले लो यह वरदान।
लौटाओ प्रभु, क्षण भी युगान्त है।" [1]

तभी अनंग प्रवेश करके विधवा का परिहास करता है । वह अनंग से वरदान लौटाने की प्रार्थना करती है । अनंग उसकी परवाह न करके वहाँ से चला जाता है । अपने जीवन के इस अपमान पर व्याकुल होकर वह कहती है

"डूबो नभ डूबो रवि डूबो शशि तारिकाओ,
डूबो धरे वेदना में मेरी ही युगान्त की।"[2]

उसकी मूर्च्छा के साथ नाट्य का अंत होता है ।

मत्स्यगन्धा के माध्यम से उदयशंकर भट्ट जीवन की परिवर्तन शीलता के संबन्ध में बताते हैं । जीवन की गति हमेशा एक तरह नहीं होती । इसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है । परिवर्तन ही जीवन है ।

गीतितत्व, नाट्यतत्व और मनोवैज्ञानिक शैली से संपन्न यह रचना अत्यन्त सुन्दर और सफल है । भट्टजी ने 'काम' के स्वच्छन्द व्यापार को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है । पुरुष के नियामक शक्ति के सम्मुख विवश होनेवाली नारी के रूप में मत्स्यगन्धा का चित्रण हुआ है । महाराज शंतनु संसार का प्रतीक है; शंतनु की मृत्यु वासनापूर्ति के साधनों की समाप्ति का प्रतीक है । पराशर यौवन और मनुष्य की कमज़ोरी का प्रतीक है ।

डॉ. नगेन्द्र ने कहा, "यौवन की दुरभि आकांक्षा समस्त संसार को अपने में समा लेने की उत्कट अभिलाषा का नर्तन मत्स्यगन्धा की प्रेरक भावना है ।"[3]

समाज में विद्यमान नर-नारी संबन्ध का चित्रण भट्टजी पराशर और मत्यगन्धा के द्वारा करते हैं । भट्टजी की राय में शौशव के बाद यौवन का उदय होता है । यौवन में वासना का

---

1 विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट पृ. 73
2. विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट पृ 77
3. आधुनिक हिन्दी नाटक डॉ. नगेन्द्र पृ. 104

उदय होता है । यौवन की स्थिति में सर्वत्र सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है । वासना पूर्ति के लिए नारी पुरुष समागम चाहती है; उससे प्राप्त आनन्द से संसार आनन्दमय दीखता है, ये सब स्वाभाविक हैं । फिर यौवन की तृप्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाए तो मानवमन में जो हल चल होता है, संघर्ष होता है उसके प्रतीक रूप में चित्रित नाट्य कृति है 'मत्स्यगन्धा।"[1]

विश्वामित्र

'मत्स्यगन्धा' की शैली में लिखी गयी रचना है 'विश्वामित्र । सन् 1935 में इसकी रचना हुई । इस गीतिनाट्य के प्रमुख पात्र हैं विश्वामित्र, उर्वशी और मेनका । इसमें नर-नारी की चिरन्तन समस्या पर दृष्टि डालकर विश्वामित्र और मेनका की भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों पर नाटककार प्रकाश डाल रहे हैं । अहंकार, बल, शक्ति और अभिमान का प्रतीक है विश्वामित्र और मेनका प्रेम, कोमलता और स्फूर्ति का प्रतीक है । इन दोनों के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से कथा आगे बढ रही है । इसमें चित्रित नर-नारी संघर्ष संसार में अनादिकाल से चल रहा है ।

अहंकार और क्रोध क्षत्रिय वंशज विश्वामित्र में ज़्यादा विद्यमान हैं । फिर भी वे ब्रह्मर्षि बनना चाहते हैं । वे राजसी वृत्ति का प्रतीक हैं । पौरुष में वे बहुत आगे हैं । राजसी वृत्ति में मनुष्यत्व प्रधान है । अहंकार भावना से प्रेरित होकर विश्वामित्र कहते हैं

"रच दूँ अपर विराट ब्रह्म को में स्वयं,
रच दूँ हरि, हर और विधान इन्द्र भी,

कौन शक्ति,अन्य कौन चाह दुर्लभ-मुझे;
नहीं मुझे अब कुछ भी है अज्ञेय जग ।"[2]

विश्वामित्र के द्वारा मानव के अहंभाव का चरमविकास भट्टजी ने दिखाया है । "आज का मार्क्सवादी भी मानता है कि सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है । उससे ऊपर कोई नहीं ।

---

1 विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट पृ. फ
2. विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट -पृ. घ

'विश्वामित्र में यही भाव है "फैसिज्म" के रूप में ।" पुरुष के 'अहं' के संबन्ध में उदयशंकर भट्टजी का कथन है

"पुरुष का पौरुष तभी पूर्ण होता है जब उसका 'अहं' उसे सदैव जागरूक रखे और अहंभाव की पूर्ति के लिए क्रियाशीलता हो । यह क्रियाशीलता अहंकार के दबने पर क्रोध को जन्म देती है ।"[1]

पुरुष में हमेशा अहं की भावना है । पुरुष को पुरुष होने का दंभ है । विश्वामित्र के चरित्र से पुरुष के सामान्य स्वभाव का परिचय मिलता है । नारी पुरुष को हठात् आकर्षित करती है । नारी अपनी सुन्दरता से पुरुष को अपने वश में लाने में समर्थ बनती है । नारी के रूपसौन्दर्य के सम्मुख पुरुष के अहं की पराजय होती है । इसप्रकार चंचल पुरुषत्व के प्रतीक के रूप में विश्वामित्र का चित्र अंकित है ।

प्रथम दृश्य में विश्वामित्र तपस्या करते हैं । विश्वामित्र की तपोभूमि पर मेनका और उर्वशी प्रवेश करती हैं । प्रथम दृष्टि में ही उर्वशी के मन में तापस विश्वामित्र के प्रति घृणा होती है । विश्वामित्र सांसारिक सुखभोग को त्यागकर तपस्या में अतिलीन रहते हैं ।

एक ओर नारी अपनी कामपिपासा की पूर्ति पुरुष में मानती है और उसे अपनाती है । दूसरी ओर वह पुरुष के शासन से विवश भी है । इसमें मेनका पहलेवर्ग की है और उर्वशी दूसरे वर्ग की । उर्वशी को मानव के प्रति घृणा है । यह घृणा सिर्फ उसकी नहीं, संपूर्ण नारी समुदाय की घृणा है । उच्छृंखल नारीत्व का प्रतीक है उर्वशी । उर्वशी पुरुष को उपना प्रतिद्वन्द्वी मानती है । उर्वशी का स्वर आधुनिक नारी का तीव्र स्वर है । पुरुष द्वारा शासित रहने की इच्छा आधुनिक स्त्री को नहीं । यह कटु सत्य है । उर्वशी हीन भावना और पराजय भावना से पीडित है । मेनका शक्ति स्वरूपिणी नारी का प्रतिरूप है । वह पुरुष की दुर्बलताओं को अच्छी तरह जानती है । वह विश्वामित्र को वश में करके दिखलाना चाहती है कि नारी कौन है । पुरुष के

---

1 विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट-पृ. क

अहं को चकनाचूर करनेवाली नारी का प्रतीक है मेनका ।

मेनका का गान सुनकर विश्वामित्र की तपस्या में भंग होता है । उनका सारा क्रोध और अहंकार मेनका के दिव्य सौन्दर्य के सम्मुख नष्ट हो जाता है । मेनका के श्रृंगार और विलास के सामने वे अपने को रोक नहीं पाते । उनके ब्रह्मर्षी बनने का आग्रह भी लुप्त हो जाता है । उनके मन में द्वन्द्व उत्पन्न होता है ।

विष्णु-रमा, हर-पार्वती सभी तो भोगविलास में मग्न हैं; फिर क्यों यह तापस सांसारिक सुखों को भूल रहा है । विश्वामित्र मेनका के सौन्दर्य से प्रभावित होकर कहते हैं

"ठहर, ठहर, रे आँखों से क्यों खेलती
खेल अनूठे, वाणी के रस के मधुर
जाने जाने क्या सोता जागता
तुझे देखकर मन में लहरें उठ रहीं ।"[1]

तप का अस्तित्व भी उन्हें अस्थायी लगने लगता है । तृषार्त्त होकर वे मेनका का आलिंगन करने के लिए उद्यत हो उठते हैं लेकिन मेनका विश्वामित्र को प्रलोभन देकर वहाँ से अप्रत्यक्ष हो जाती है । विरहाग्नि से दग्ध कामान्ध विश्वामित्र उन्मत्त होकर सारी जगह मेनका को ढूँढते हैं । अन्त में आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाते हैं । तब मेनका प्रवेशकरके उनका हाथ पकड लेती है । यहाँ पुरुष पर नारी की विजय होती है । स्त्री के सम्मुख पुरुष दुर्बल होकर सिर झुकाता है । यहाँ पुरुष की कमज़ोरी भी दृष्टव्य है । मेनका विश्वामित्र के सम्मुख आत्मसमर्पण करती है ।

स्त्री में अपने सौन्दर्य और हृदय बल से पुरुष को नचाने की क्षमता है । मेनका के व्यवहार से स्त्री के इस रूप का पता चलता है ।

---

1 विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट-पृ. 18

मेनका नारी को शक्तिस्वरूपिणी मानती है तो उर्वशी इनकार करती हुई कहती है

"नारी प्राण विहीन चेतना
से रहित एक भावना पुंज पराई आस है ।"[1]

आधुनिक युग में भी उर्वशी का कथन प्रासंगिक है । अनादिकाल से ही स्त्री पुरुष की वासनापूर्ति का साधन है । वह स्वयं सुखहीना है । उसका जीवन दूसरों को सुख प्रदान करने के लिए है । वह पुरुष के प्राणों की मदिरा है । लेकिन कभी भी स्त्री को स्वयं नशा नहीं होती । नारी की ज़िन्दगी दूसरों के लिए अर्पित है, नारी की बुद्धि, मन, प्राण, शरीर, कर्म, धर्म आदि सब दूसरों के लिए ही हैं। उर्वशी के कथन से दुनिया में स्त्री की शोचनीय स्थिति प्रकट होती है । अपनी आवश्यकता की पूर्ति होने पर पुरुष स्त्री की उपेक्षा करता है और पुरुष का अहंभाव पुनः जागरित होता है ।

विश्वामित्र और मेनका के संयोग से पुत्री शकुन्तला का जन्म होता है । इससे मेनका अतीव सन्तुष्ट होकर अपने कर्तव्य को भूल जाती है । मेनका के सन्तान प्रेम से नारी सुलभ कोमलता, वात्सल्य आदि का परिचय मिलता है । मातृत्व से नारी का संघर्ष समाप्त होता है; लेकिन पुरुष में पुनः संघर्ष जाग उठता है ।

मेनका बालिका शकुंतला को विश्वामित्र को सौंपती है । विश्वामित्र उसे स्वीकार करने में संकोच प्रकट करते हैं । तब मेनका का कथन है

"ओ मानव, तेरी आशा का अन्त क्या,
तू विलास पर निज पौरुष के महल को
बनाबनाकर नारी को छलता रहा
तू उमंग ले विश्वविजय की चल रहा ।"[2]

---

1 विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट-पृ. 9
2. वही -पृ. 34

प्रस्तुत कथन के माध्यम से भट्टजी सारे पुरुष वर्ग पर आरोप लगाते हैं । पुरुष अपने पौरुष के बल पर स्त्री को आकर्षित कर छलमय प्रेम प्रकट करता है । यहाँ पुरुष वर्ग के सामान्य स्वभाव पर प्रकाश डाला गया है ।

नर-नारी दोनों एक दूसरे पर आरोप लगाते हैं । विश्वामित्र के व्यक्तिगत संघर्ष पर मेनका तीखा प्रहार करती है । विश्वामित्र भी पुरुष के प्रतीक के रूप में नारी पर दोषारोपण करते हैं । वे कहते हैं कि सब पर नर का शासन चल रहा है । इसपर उर्वशी पूछती है कि नर-नारी दोनों की सृष्टि ईश्वर ने की है । नर बड़ा और नारी छोटी यह कैसे हो सकता है? उर्वशी के सवाल के द्वारा भट्टजी वर्तमान भारतीय समाज में नारी की शोचनीय स्थिति पर व्यंग्य करते हैं । नर-नारी समत्व की समस्या आज भी ज्वलन्त समस्या है । आधुनिक युग में भी नर-नारी के समान अधिकार के लिए संघर्ष चल रहा है ।

अन्त में विश्वामित्र रुष्ट होकर बालिका को छोड़कर तपस्या के लिए वहाँ से चले जाते हैं । "पुरुष का यही पलायनवाद ही विश्वामित्र का अन्त है । अतः स्त्री-पुरुष संबंधों के संघर्ष की समस्या को कथा-बिना सुलझे ही यहाँ समाप्त हो जाती है । विश्वामित्र में जीवन के निषेधात्मक और स्वीकृत्यात्मक मूल्यों का संघर्ष है ।"[1]

मनुष्य अहंभाव से ग्रसित होकर स्वार्थी बनकर सबकुछ पाने की वाञ्छा रखता है । इसका प्रमाण विश्वामित्र के चरित्र से प्राप्त होता है । "विश्वामित्र सांसारिक सुखभोग से विरक्त, आनन्द से विमुख, कठोर तपस्या में संलग्न जीवन के निषेधात्मक मूल्यों के प्रतीक हैं और लौकिक सुख तथा आनन्द में विश्वास करनेवाली मेनका जीवन के स्वीकृत्यात्मक मूल्यों की प्रतीक है ।"[2]

नाटककार ने प्रस्तुत कथा के माध्यम से प्रतीक रूप में यह दिखलाया है कि मनुष्य में पहले अहंकार प्रबल रहता है; धीरे धीरे अहंकार कम होता है और उसके हृदय में प्रेम का उदय हौता है, फिर प्रेम की विजय होती है; विजय के बाद विलास होता है और उसके बाद मनुष्य के पुराने संस्कार फिर जागते हैं ।

---

1 हिन्दी साहित्य तृतीय खण्ड सं. धीरेन्द्र वर्मा पृ. 386

2. हिन्दी नाटक नया संशोधित संस्करण डॉ. बच्चन सिंह पृ. 15

राधा

उदयशंकर भट्ट का 1936 में प्रकाशित गीतिनाट्य है 'राधा' । यह प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है । इसका आधार राधा-कृष्ण प्रसंग है । यहाँ राधा और कृष्ण के बीच के प्रेम में विवेक और आवेग का संघर्ष है । अन्त में विवेक पर आवेग की विजय होती है । पात्र राधा इसमें अपने परंपरागत स्वकीय रूप से भिन्न परकीया है और कृष्ण भी लीला पुरुषोत्तम नहीं भगवद्गीता के योगेश्वर हैं जो कर्म और ज्ञान पर व्याख्यान देने वाले हैं ।

प्रथम दृश्य में राधा यमुना के किनारे स्वप्न में डूबी सी बैठी दिखाई देती है । राधा परिणीता है; फिर भी वह 'लाज-मर्यादा-बन्धन तोड' उन्मुक्त जीवन बिताना चाहती है । दूसरे दृश्य में बाँसुरी बजानेवाले कृष्ण को यमुनातट पर दिखाई पड़ता है । कृष्ण के बाँसुरी वादन में वह अपने को भूलती है । कृष्ण अपने अवतारोद्देश्य के बारे में राधा से कहते हैं । भावुक राधा उसका सिद्धान्त समझ नहीं सकती । वह युगयुगान्तर तक कृष्ण को अपनाना चाहती है । कृष्ण की बांसुरी की तान सुनकर राधा की अन्य सखियाँ भी नाचने गाने लगती हैं । तृतीय दृश्य में पुनः कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी राधा दिखाई देती है । कृष्ण देश की राजनीति, समाजोन्नति, धर्म और नीति पर व्याख्यान देते हैं । तब राधा विकल होकर मूर्च्छित हो जाती है । कृष्ण के चले जाने पर शोक और चिंता में डूबी राधा निर्जीव सी, उन्मत्त सी घूमती दीखती है । अंत में विरह दग्ध और मूर्च्छित राधा को कृष्ण दर्शन प्राप्त होता है । वह आनन्दविभोर होकर कृष्ण में विलीन हो जाती है । यह सिद्धान्त प्रधान गीतिनाट्य है । राधा सात्विक प्रेम का प्रतिरूप है, कृष्ण प्रेम और सौंदर्य के और नारद भक्ति के अहंकार के ।

राधा के मन में कृष्ण के प्रति समर्पण युक्त निष्काम प्रेमभावना है । वह कृष्ण प्रेम में पगी हुई है । वह उन्हीं में विलीन होना चाहती है । उसके निष्काम, अश्लीलता से परे, विवेकयुक्त और कर्तव्य निष्ठ प्रेम के सम्मुख कृष्ण को नतमस्तक होना पड़ता है ।"'राधा' "आवेग की प्रतिमूर्ति" और उपचार निरपेक्ष एवं प्रतिदान शून्य प्रेम की प्रतीक है।"[1]

---

1 हिन्दी नाटक डॉ. बच्चनसिंह पृ. 179

उदात्त गुणों से युक्त सात्विक नारीत्व रखनेवाली इसतरह की अनेक नारियाँ वर्तमान समाज में हैं जिन्हें ईर्ष्या, द्वेष, कपटता, घृणा आदि बुरी भावनाएँ ज़रा भी नहीं होतीं । सात्विक होकर भी राधा मानवीय धरातल पर खडी रहती है । पौराणिक पात्र होते हुए भी राधा में समसामयिकता का प्रभाव है ।

राधा के चरित्र के द्वारा नारी के हृदय का परिचय भी भट्टजी देते हैं । राधा की सखी विशाखा कहती है

"हाय, कितना सरल, कोमल, तरल है नारी हृदय यह
दूध सा मीठा, धवल, निश्छल बनाया कौन विधि ने ?"[1]

स्त्री का हृदय प्रेम और सौंदर्य के सम्मुख जल्दी ही पिघल जाता है । वह उस समय सांसारिक बन्धन को नहीं मानती ।

राधा के द्वारा नारी के स्वतन्त्रता बोध का परिचय प्राप्त होता है । वह किसी का बन्धन नहीं चाहती है, चाहे पति हो या परिवार । धर्म पालन को भी राधा बहुत महत्व नहीं देती । वह कहती है

"यही बस, मैं लाज तज मर्यादा बन्धन तोड़
त्याग सब कुछ, बन वियोगिनि मुक्त जीवन हो सकूँ री।
न कोई मेरा पति-न मैं किसी की नारी ।
मुझे किसी का बन्धन प्रिय नहीं।"[2]

राधा के माध्यम से वर्तमान युग की नारी मुक्ति की समस्या उभर आती है । नारी अनादिकाल से ही मुक्ति चाहती है । किसी न किसी बन्धन में फँसकर वह अपने वर्चस्व को खो देना नहीं चाहती । लेकिन समसामयिक युग में भी नारीमुक्ति एक प्रश्नचिह्न बन गयी है । इन सब में राधा में नारी का साधारणरूप विद्यमान है ।

---

1. विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट-पृ. 86
2. वही पृ. 89

राधा कृष्ण को समाज सुधारक के रूप में नहीं वंशी बजानेवाले मनमोहक कृष्ण के रूप में देखती है । वह सारी वस्तुओं में कृष्ण की छवि देखती है । वह उसी में तन्मय हो जाती है, तादात्म्य स्थापित करती है । इस तादात्म्य के द्वारा उसे मुक्ति प्राप्त होती है ।

नारद अहंभाव से युक्त साधारण मानव का प्रतिरूप है । एक ओर वह राधा में कृष्ण के प्रति विरक्ति और दूसरी ओर राधा का मान जागृत करना चाहता है । नारद को दूसरों की भलाई पर ईर्ष्या है । नारीत्व के ध्येय के संबन्ध में नारद बताते हैं कि नारीत्व की सफलता कन्यकात्व या पत्नीत्व में नहीं मातृत्व में हैं । राधा की अदम्य भक्ति और कृष्ण को राधा का सर्वस्व अर्पण करनेवाली के रूप में देखकर नारद का गर्व नष्ट हो जाता है ।

राधा अपने प्रेम के लिए प्रतिदान नहीं चाहती वह कहती है

"चाहिए मुझको न कुछ भी प्रेम का प्रतिदान उनके ।
वे महान् विभूति, मैं लघु, वे सरिता मैं लहर उनकी ।"[1]

युग युग तक वह उनकी मूर्ति को अपने में समाहित करना चाहती है ।

कृष्ण कर्तव्यपरायण, मोहमुक्त और ज्ञान संपन्न नर का प्रतीक है । नारी मन के चंचल भावों की अभिव्यक्ति, राधा के व्यक्तित्व के द्वारा भट्टजी ने अभिव्यक्त किया है ।"राधा में नारी अनुराग का आध्यात्मिक स्वरूप है प्रेम की पराकाष्ठा इतनी कि उसने जगत के सभी बंधन काट डाले.... सात्विकता इतनी कि बदले में कुछ नहीं चाहती है ।"[2]

उन्मुक्त

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सन् 1941 में प्रकाशित गीतिनाट्य है 'उन्मुक्त'। उसके प्रकाशन काल में गाँधीजी का युद्ध विरोधी आन्दोलन चल रहा था; उसके कारण गाँधीजी को

---

1 विश्वामित्र और दो भावनाट्य उदयशंकर भट्ट-पृ. 122

2. उदयशंकर भट्टः व्यक्ति और साहित्यकार संपादकः बांकेबिहारी भटनागरः पृ. 88-89

गिरफ्तारी हुई । 'उन्मुक्त' में रचनाकार सियारामशरणगुप्त ने युद्ध के प्रति विरोध प्रकट किया है । युद्ध और तज्जन्य दुष्परिणामों का उल्लेख इस रचना में प्राप्त होता है । 'उन्मुक्त' की भूमिका में लिखा है- "संसार में इस समय जो घोर हिंसाकांड हो रहा है, जिसप्रकार निरीह नागरिकों की हत्या की जा रही है और विज्ञान का दुरुपयोग करके जैसे पैशाचिक प्रलय मचाया जा रहा है उसे देखकर जिसने अपने मारक रोग की उपेक्षा करके उसके विरुद्ध अपने पाठकों की सहानुभूति प्रबुद्ध करने का प्रयास किया है ।"[1] गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव इसमें दृष्टव्य है । द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका ने जापान के दो नगरों पर अणुबम का प्रयोग किया और उसी के कारण जापान का पतन हुआ और वह युद्ध समाप्त हुआ । इसप्रकार के शस्त्रों के कारण मनुष्य का व्यक्तिगत शौर्य फीका पड़ गया । विज्ञान की प्रगति के साथ साथ मानव विज्ञान का दुरुपयोग भी करने लगे । इस शोचनीय स्थिति को देखकर नाटककार ने 'उन्मुक्त' के द्वारा इस बात पर बल दिया कि हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल । आज बड़े बड़े राष्ट्र इसकी परवाह नहीं कर रहे हैं । वे नये नये शस्त्र सज्जा में मग्न हैं । अगले युद्ध में विजयी बनने के प्रयत्न में वे व्यस्त हुए हैं ।

गीतिनाट्यकार गाँधीजी की तरह विश्वशांति की स्थापना करना चाहते हैं । अहिंसा से शांति स्थापना होगी ।

"हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल"[2] और "हिसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।"[3] यही विचारधारा इस कल्पित कथा का केन्द्रबिन्दु है । लौहद्वीप के आक्रमण से ताम्रद्वीप और रौप्य द्वीप पदाक्रान्त हो चुके हैं । कुसुम द्वीप पर आक्रमण करने का समाचार रानी कुसुमावती को जयकेतु से प्राप्त होता है । रानी जयकेतु को युद्ध की आज्ञा देती है । इसकी उपक्रम कथा यह है । इसके बाद पुष्पदंत ओर गुणधर के बीच का संवाद है । पुष्पदंत दीप वाहिनी का सेनापति है । वह हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा से देने के पक्ष में हैं । पुष्पदंत की बहन है मृदुला वह समाज सेविका है इसलिए ही वह हिंसा का विरोध करती है । परिस्थितिवश उसे भी हिंसा का

---

1 उन्मुक्त (स्थापना) सियारामशरण गुप्त पृ. 2

2. वही पृ 157

3 वही

आश्रय ग्रहण करना पड़ता है । मृदुला का पति गुणधर अहिंसा का पक्षधर है । वह एक सफल सेनापति है । गुणधर युद्ध के परिणामों पर विचार करते हैं तो पुष्पदंत कहते हैं कि अब सोचने का समय नहीं है ।

गुणधर के विचार से

"लगता मुझे तो यह आत्मघात अपने
आयुधों से करते हमीं है स्वयं अपना ।"[1]

वे गाँधीजी की तरह अहिंसावादी हैं। वे युद्ध को आत्मघात मानते हैं । विवश होकर लौहद्वीप से कुसुमद्वीप को युद्ध की घोषणा स्वीकार करनी पड़ती है । भयंकर युद्ध होता है । कुसुमद्वीपवासी इस युद्ध में तन, मन और धन से सहायता करते हैं । हँसते हुए जन्मभूमि के लिए बलिदान देते हैं । बलात्कार, बर्बरता और विनाश का प्रारंभ होता है । लेखक ने युद्ध की विभीषिका का चित्र प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है । अत्याचार, बलात्कार, विध्वम्स और विकरालता के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए गए हैं । एक ओर देश के लिए आत्मसमर्पण करनेवाले धीर सेनानी खड़े हैं तो दूसरी ओर देश के विरुद्ध बंर्बरता का संहार ताण्डव करनेवाले । युद्ध की विभीषिका का चित्र गुणधर के कथन में अंकित है

"प्रतिहिंसा की होड़ कठिनतर दुस्तर दुष्कर
करने में असमर्थ हमारे हैं सब साधन।
अर्पित हम कर चुके न जाने कितने जन-तन।
गिनती इसकी नहीं । बधिक की बलिवेदी से
कितने हुए गृहीत, मृतोपम ही अधपीसे
छिन्न-भिन्न विकलांग पड़े हैं बाहर कितने।
आहुति के भण्डार हमारे थे जो जितने,
दिखलाई पड़ रहे आज के दिन सब सूने।"[2]

---

1 उन्मुक्त -सियारामशरण गुप्त पृ. 23
2. वही. पृ. 117-118

गुणधर के पुत्र ज्ञानधर की मृत्यु युद्ध क्षेत्र में होती है । अन्त में पुष्पदंत भस्मक नामक मारक अस्त्र का निर्माण करता है । वे गुणधर से भस्मककिरण का प्रयोग करने के लिए कहते हैं । लेकिन गुणधर पुष्पदंत का साथ नहीं देते । उसका कथन है

"मेरा मत जानते है आप, फिर सुनिए,-
वैसे मारकास्त्रों का प्रयोग रणस्थल में
वीरोचित कार्य नहीं; यह है अधम की
हिंसानीति; शूरता जो दीखती है इसमें
वह छलना है, भीरुता है छद्मरूपिणी।"[1]

गुणधर इसे अधम की हिंसानीति और छद्मरूपिणी भीरुता कहकर गाँधीजी के अहिंसावादी सिद्धान्त पर दृढ रहते हैं । पुष्पदंत गुणधर को विद्रोही घोषित करते हैं । वे उसे मृत्युदंड देने की आज्ञा देते हैं । मृदुला पुष्पदंत की सहायता करती है । पुष्पदंत स्वयं भस्मक का प्रयोग करने में प्रवृत्त हो जाते हैं । लेकिन दौर्भाग्य वश भस्मक किरण शत्रुओं के हाथ लगता है । उन्हीं के द्वारा कुसुमद्वीप की पराजय होती है । हिंसावादी पुष्पदंत और अहिंसावादी गुणधर के बीच का संघर्ष इस गीतिनाट्य में है । पुष्पदंत हिंसाप्रेमी और आसुरीवृत्ति के मानव का प्रतिरूप है तो गुणधर अहिंसावादी गाँधीजी का प्रतिरूप है ।

इसमें बाह्यसंघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष मुख्य है । इस रचना में चित्रित तीनों पात्रों मृदुला, पुष्पदंत और गुणधर की मनोवृत्तियाँ भिन्न भिन्न हैं । मृदुला मध्यममार्गी है । वह अहिंसावादी है फिर भी अवसर के अनुकूल हिंसा का सहारा लेने में नहीं हिचकती । मृदुला में साहस, धैर्य और बुद्धि के साथ साथ करुणा, ममता, दया आदि सद्गुण भी हैं ।"पुष्पदंत उग्र राष्ट्रीयता का प्रतीक है । वह राष्ट्रीयता जो हिटलर के मन में थी, मुसोलिनी के मन में थी।"[2] गुणधर रचनाकार सियाराम शरण गुप्त का प्रतिरूप है ।

कुसुमद्वीप के पराजय से प्रतिहिंसा पराजित होती है । पुष्पदंत अंत में गाँधीवादी बन जाते हैं । वे कहते हैं

---

1 उन्मुक्त सियारामशरण गुप्त पृ. 125
2. गीतिनाट्य शिल्प आरे विवेचन शिवशंकर कटारे पृ. 106

"इसका भय क्या ? रक्तपात हम नहीं करेंगे,
झेलेंगे सब स्वयं, अहिंसक मरण वरेंगे ।
हिंसक भी है नहीं निरा दानव ही दानव;
सोया है अज्ञान दशा में उसका मानव।"[1]

जब हिंसावृत्ति मानव मन में जागृत होती है तब मानव दानव बन जाता हैं ।

प्रस्तुत गीतिनाट्य के द्वारा नाट्यकार ने अहिंसा से विश्व बन्धुत्व की स्थापना की है । इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय युद्ध की समस्या है । यह मानवता के सन्देश से संपुष्ट है । युद्ध की समस्या का हल करने के लिए अहिंसा को अपनाने का उपदेश रचनाकर ने हमें दिया है । शांतिस्थापना ही मानव धर्म है । रोष को त्यागकर प्रेमपूर्वक कर्म करने से हमारी उन्नति होगी । यहाँ अहिंसावादी सिद्धान्त पर ज़ोर दिया गया है ।

"सब के हित में लाभ करो नव विजयश्री का।"[2]

हमें लोकहित को मानना चाहिए जिससे विजय प्राप्त होगी । लोक हित केलिए काम करने का सन्देश गुप्तजी देते हैं ।

लौहद्वीप की ताम्र, कुसुम आदि द्वीपों पर विजय साम्राज्य वाद की विजय है । देशप्रेम, राष्ट्रीयता, त्याग, बलिदान आदि से ओतप्रोत यह गीतिनाट्य आज के जनसमाज को मानवता का सन्देश देते हैं । हिंसानल का शमन अहिंसा से ही संभव है यह बात जब पुष्पदंत और मृदुला समझते हैं तब दोनों उन्मुक्त हो जाते हैं ।

आज का मानव युद्ध की विभीषिकाओं से संत्रस्त है । फिर भी बडे बडे राष्ट्र अणु आयुधों के निर्माण के चंगुल में फँसे हुए हैं । लेकिन सामान्य जन निरायुधीकरण और भाईचारा चाहते हैं । युद्ध के दुष्परिणामों को सहन करने की ताकत उनमें नहीं है । युद्ध की समस्या

---

1 उन्मुक्त सियाराम शरण गुप्त पृ. 158
2. उन्मुक्त सियाराम शरण गुप्त पृ. 160

वर्तमान युग की जटिल समस्या है । युद्ध में अनेक निरीह जनों की हत्या होती है । अनेक जन विकलांग बन जाते हैं । इन सबका अंदाज़ा हम नहीं लगा सकते । युद्ध हमारे शान्तिपूर्ण और सुखमय जीवन के बिल्कुल विरुद्ध है । आधुनिक दुनिया को अब भी इससे मुक्ति नहीं मिली है । अमरीका जैसे संपन्न राज्य आज भी अणुबम के निर्माण में लगे हुए हैं जिससे देश की हानि सुनिश्चित है । भविष्य में आणवयुद्ध की संभावना है । वर्तमान जनता तीसरे विश्वयुद्ध के बारे में सोचकर आशंकित है ।

"वास्तव में उन्मुक्त प्रतीक है उन घटनाओं और भावनाओं का जो युद्ध के नृशंस समाचारों से जागृत हुई । युद्ध का प्रत्युत्तर युद्ध से देने और बाद में विनाश को देखकर पछताने की प्रवृत्ति मानव में अनादिकाल से रही है । लौहद्वीप के बर्बर आक्रमण का सामना कुसुमद्वीप के कर्णाधार हिंसा और युद्ध से करना चाहते हैं । परिणाम स्वरूप देश, जाति और सभ्यता के नष्ट हो जाने पर वे पछताते हैं ।"[1] "शास्त्र प्रतिकार में पराजित होकर कुसुमद्वीप की आत्मा ने जिस सत्य की उपलब्धि की थी, जान पड़ता है उसे ही भावी संसार को ग्रहण करना पड़ेगा ।"[2]

"उन्मुक्त' गीतिनाट्य का मुख्य उद्देश्य युद्ध से दूर रहना, अहिंसा का प्रश्रय लेना, गाँधीवादी विचारों का प्रचार प्रसार आदि हैं । लोकमंगल की भावना से युक्त प्रस्तुत गीतिनाट्य के माध्यम से नाट्यकार सबकी भलाई चाहते हैं । समसामयिक युग में इस नाटक का प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

स्नेह या स्वर्ग

सेठ गोविन्ददासजी हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ नाटककार हैं । उन्हें राजनैतिक जीवन से धनिष्ठ संबन्ध है इसलिए ही वे सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को अच्छी तरह जान सकते हैं । "स्नेह या स्वर्ग' उनका एक मात्र समस्यात्मक गीतिनाट्य है । इसकी कथा यूनान के महाकवि होमर के महाकाव्य 'इलियड की ऐतिहासिक कथा पर आधारित है । इसका

---

1 गीतिनाट्य शिल्प आरे विवेचन शिवशंकर कटारे पृ. 104
2. सियाराम गुप्त रचनावली संपादक ललित शुक्ल खण्ड चार पृ. 148

वातावरण भारतीय है । पात्रों को उन्होंने भारतीय नाम दिए हैं । इस नाटक के माध्यम से गोविन्ददासजी ने प्रेम के प्रति नारी के मनोभाव और प्रतिक्रियाओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखा परखा है । नारी हृदय के कोमल और रहस्यमय भावों के मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्‌घाटन भी है यह गीतिनाट्य । इसमें लोककल्याण की भावना निहित है ।

सन् 1946 में लिखित इस रचना में प्रेम को लेकर अंतःसंघर्ष प्रचुर मात्रा में है । इसके प्रमुख पात्र हैं जयन्त, अजेय और स्नेहलता । प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में स्वर्ग के देवता जयन्त और उसकी बहन शुचिता के बीच का संवाद है । देवता जयन्त मानवी स्नेहलता को अपनाना चाहता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह शुचिता को मर्त्यलोक भेजता है । जयन्त और शुचिता में सुर होने का दंभ है । जयन्त से शुचिता का कथन इसका प्रमाण है

"मर्त्य नर है वह, अमर्त्य सुर तुम हो,
स्पर्द्धा क्या उससे है, सफलता तुम्हारी है।"[1]

समाज में रहनेवाले वैभव संपन्न वर्ग के प्रतिनिधि हैं देवता जयन्त और शुचिता । संपन्न वर्ग हमेशा अपने से निम्न लोगों को तुच्छ मानते हैं ।

द्वितीय दृश्य में अजेय के मन का संघर्ष चित्रित है । उसके मन में सुर जयन्त के प्रति स्पर्द्धा है । वह सुर से किसी बात में अपने को हीन दीन नहीं मानता । वह शूर वीर है । मृत्यु से वह नहीं डरता । उसका विचार यह है कि मृत्यु अवश्यंभावी है । उसका प्रभाव शूरों पर नहीं पड़ेगा । उनकी राय में जयन्त और अजेय में अमर्त्य और मर्त्य होने का भेद मात्र है । अजेय के द्वारा आत्मनिर्भर शूरवीर और साहसी मानव का चित्र अंकित है । इस दृश्य में स्नेहलता के साथ बिताए बाल्यकाल के सुन्दर और सुखद क्षणों की याद, अजेय की कामुकता और उसके आत्मीय प्रेम की झलक प्राप्त होती है । अजेय की राय में जयन्त का प्रेम सच्चा प्रेम नहीं है । उसको स्नेहलता के प्रति मात्र लालसा है । अपनी क्षणिक लालसा की पूर्ति होने पर जयन्त स्नेहलता

---

1 स्नेह या स्वर्ग सेठगोविन्ददास पृ. 4

को त्याग देगा । स्नेहलता के प्रति अपने मन के अगाध प्रेम को अजेय अपने मित्र प्रभाकर के द्वारा स्नेहलता को समझाना चाहता है । इस दृश्य में स्नेहलता के लोभी पिता का परामर्श भी है ।

तीसरे दृश्य में स्नेहलता अपनी सखी चपला के साथ उद्यान में घूमती है । वह जयन्त में देवता होने के कारण दिव्यता और अजेय में अद्‌भुत देखती है । शुचिता प्रवेश करके स्नेहलता के सम्मुख जयन्त के लिए प्रेमभिक्षा माँगती है । शुचिता की बातें स्नेहलता बेपरवाही से सुनती है । स्वर्ग की सुन्दरता और वैभव के बारे में कहकर वह स्नेहलता को अपने वश में लाने का प्रयत्न करती है । स्नेहलता साधारण, सरल, भोली भाली नारी का प्रतिरूप है । साधारण नारी अपने जीवन में प्राप्त सुखों से बिलकुल तृप्त होती है । उसके मन में जीवन की सुखसुविधाओं के प्रति अदम्य लालसा नहीं है । किसी भी प्रकार के प्रलोभन में वह फँसना नहीं चाहती ।

अपने जीवन के प्रति आधुनिक नारी का स्वतन्त्रताबोध स्नेहलता के कथनों से स्पष्ट है

"देवी, यह आप की
अतिकृपा भूलूँगी न जीवन में मैं कभी।
किन्तु निज जीवन के धन के विषय में
भद्रे, भद्र सम्मति जो होगी वही दूँगी मैं
हूँगी किसी अन्य से प्रभावित नहीं कहीं ।"[1]

"अबला नहीं मैं जो पिताश्री बिना सोचे ही,
मेरे मन और विपरीत रीति नीति के
पशु-सा किसी के हाथ यों ही मुझे सौंप दें।"[2]

न्याय और स्वसम्मति के बिना पशु के समान अपने को दूसरों को देने के लिए आज की आधुनिक नारी तैयार नहीं होती । वैसी आधुनिक नारी का प्रतिरूपहै स्नेहलता । विवाह विषय को

---

1 स्नेह या स्वर्ग सेठगोविन्ददास पृ. 24-25
2. वही पृ. 46

लेकर स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार वर्तमान नारी में बड़े पैमाने पर मौजूद है । आज की नारी अबला और चपला नहीं है । अपने निर्णय को दूसरों के लिए बदलना वह नहीं चाहती । आज की नारी जागृत और शक्तिस्वरूपिणी है । आज का ज़माना स्त्री शाक्तीकरण का ज़माना है ।

दूसरे अंक का प्रथम दृश्य स्नेहलता के आगे अजेय की प्रेमाभ्यर्थना, स्नेहलता का अंतःसंघर्ष और स्नेहलता की असीम पितृभक्ति से संपन्न है । दूसरे दृश्य में जयन्त और स्नेहलता के पिता अक्षय के संवादों से अक्षय के लोभी हृदय का परिचय प्राप्त होता है । जयन्त के दिव्यत्व और वैभव से वह सचमुच प्रभावित होता है । तीसरे दृश्य में मृत्युसंबन्धी दार्शनिक विचार प्रकट है । दृश्यान्त में स्नेहलता का अन्तःसंघर्ष दर्शनीय है । मुख्य पात्र स्नेहलता के सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि वह महेन्द्र और शची के पुत्र अमर जयन्त को स्वीकार करे या बाल्यकाल सखा मर्त्य अजेय को स्वीकार करे ।

चतुर्थ दृश्य में महेन्द्र और शची के बीच का युद्ध संबन्धी संवाद है । तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में नागरिकों का वार्तालाप है । उनके कुछ संवाद ध्यान देने योग्य हैं

एक- "वह गुण-गेह, किन्तु कैसी यह मूर्खता
प्राण एक रमणी पर देने जा रहा जो ?"
दूसराः- "कौन जाने कितने तरुण गुण गेहों ने
इन प्रमदाओं पर प्राण दिये अपने।"
तीसराः- "नारी प्राण ग्राहक सदा से रही नर की।"
चौथा 'और अधिकांश मूल विग्रहों की विश्वके।"[1]

उपर्युक्त कथन आधुनिक समाज के लिए भी अनुकूल है । स्त्रियों को अपनाने केलिए परिवार में, समाज में, विश्व में अब भी कई संघर्ष हो रहे हैं । 'मलयालम' में इसके संबन्ध में एक कहावत भी है । कनक और कामिनी के कारण दुनिया में झगडे ज़्यादा बढ रहे हैं । नारी की प्राप्ति के लिए मूर्ख मानव प्राण तक देने के लिए तैयार हो जाता है । विश्व की अधिकांश समस्याओं का मूल कारण स्त्री ही है ।

---

1 स्नेह या स्वर्ग सेठ गोविन्ददास पृ. 71

कुछ स्त्रियाँ स्नेहलता को मानवी नहीं राक्षसी कहती हैं । सुर-नर युद्ध को देखने में वे अधिक दिलचस्पी रखती हैं । संसार में ऐसी समस्याएँ जहाँ जहाँ उत्पन्न होती हैं वहाँ वहाँ इन्हें देखकर आनन्दित होने वाली अनेक दुष्भावनाएँ रखनेवाले दर्शक भी होते हैं । इस तरह इस दृश्य में लौगों की भिन्नभिन्न मनोवृत्तियों का चित्रण है ।

दूसरे और तीसरे दृश्य में युद्ध का वर्णन है । युद्ध में किसी की जीत नहीं होती । महेन्द्र आकर युद्ध को रोकते हैं । निर्णय लेने का अधिकार वे स्नेहलता को सौंपते हैं । स्नेहलता में पुनः अन्तःसंघर्ष होता है ।

तभी लोभी अक्षय कहते हैं कि विवाह तो कुशल कुटुम्बों के बीच होना चाहिए । तब महेन्द्र का कथन है

"परन्तु पूर्व इस के
आप वह देखता है वंशलाभ तब तो
निकला कुटुम्ब शब्द मुँह से तुम्हारे हैं
सबसे प्रथम । किन्तु भूलो नहीं इसको
वंशों का विवाह नहीं । व्यक्तियों का होता है,
है व्यापार थोड़े, वह नेह का ही नाता है ।
धातकारिणी हैं जो पुरानी रूढ़ रीतियाँ
छोड उन्हें धर्म है बनाना नयी नीतियाँ ।"[1]

प्रस्तुत कथन के द्वारा परंपरागत रूढि रिवाज़ों को तोड़ने का आह्वान है । वर्तमान युग में भी विवाह आदि विषयों में मानव समुदाय परंपरागत रीति नीतियों को अपनाते हैं । व्यक्तियों की इच्छाओं पर ध्यान देकर वंश लाभ मात्र को वे लक्ष्य करते हैं । तब विवाह एक व्यापार के रूप में बन जाता है । विवाह तो दो वंशों के बीच नहीं दो व्यक्तियों के बीच होता है । उसकी

---

1 स्नेह या स्वर्ग सेठ गोविन्ददास पृ. 88-89

सुदृढ़ दीवार है स्नेह । विवाह व्यापार नहीं बल्कि स्नेह का ही रिश्ता है । पुरानी रूढ़ रीतियाँ इसके लिए बाधा बनती हैं। उन्हें छोड़कर उसकेलिए नयी नीतियों को अपनाना ही धर्म है । महेन्द्र का उपर्युक्त कथन आज भी प्रासंगिक है । युवापीढी का प्रतिनिधि अजेय के आत्मीय और सच्चे प्रेम की झलक इस दृश्य में दृष्टिगत होती है ।

चौथे दृश्य में स्नेहलता का अंतःसंघर्ष परम कोटी पर पहूँचता है । अन्त में स्नेहलता अजेय के सात्विक, सच्चे और अगाध प्रेम को अमर मानकर, लालसा और वैभव को तुच्छ समझकर अजेय का वरण करती है । इस संबन्ध में स्नेहलता कहती है

"एक ओर हो अमर और उसका
वैभव अपार, किन्तु अल्पजीवी लालसा,
अन्य ओर अल्पजीवी नर, चल संपदा,
किन्तु है अमर प्रेम ।"[1]

"प्रेम नहीं मृत्युजयी, दुःख जयी भी नहीं,
जीवन जयी है, सब तुच्छ जिसके बिना ।
स्नेह बिना वर नहीं शाप है अमरता,
ऐसा शाप, अन्तहीन और चिरस्थायी जो ।"[2]

यहाँ स्वर्ग पर प्रेम की विजय होती है । सच्चे प्रेम से स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है । यहाँ निस्वार्थ प्रेम की विजय ही हमेशा होती है । इस बात को नाट्यकार स्पष्ट करना चाहते हैं । अजेय यथार्थ और निस्वार्थ प्रेम का प्रतिरूप है तो जयन्त कपटी या छलमय प्रेम का । छलमय प्रेम में व्यक्ति शारीरिक बाह्य सौन्दर्य से आकृष्ट होता है । इन दोनों पात्रों के माध्यम से यथार्थ प्रेम को पहचानने का उपदेश गीतिनाट्यकार देते हैं । समसामयिक युग में अधिकांश प्रेम छलमय है; विश्वास करने योग्य नहीं । नाटकांत में उपसंहार के द्वारा स्वर्ग की अपेक्षा स्नेह के महत्व को स्पष्ट किया गया है ।

---

1 स्नेह या स्वर्ग सेठ गोन्दिदास पृ. 95
2. स्नेह या स्वर्ग सेठ गोविन्ददास पृ. 96

प्रेम के संबन्ध में नारी की प्रतिक्रियाओं को समझने का प्रयत्न अनादिकाल से हो रहा है । इसमें प्रेम विषय को लेकर नारी के मन में उपजते द्वन्द्व का सफलतापूर्वक निर्वाह रचनाकार ने किया है । "इसमें मनुष्य जीवन के उस शाश्वत तत्व का विवेचन है जो एक ही स्वर्ग या नरक बना सकता है ।"[1] नाटककार का आशावादी दृष्टिकोण इस रचना में प्रकट है । "देवताओं की अपेक्षा उसने मानवत्व को महत्व प्रदान किया है । सेठजी का आशावाद कर्तव्य बुद्धि पर निर्भर है । वे बन्धनों, कष्टों और दुःखों को स्वीकार करते हैं; पर उनसे घबराते नहीं । मानव गौरव ही उनके आशावाद की जननी है ।"[2]

दिवोदास

दिवोदास पौराणिक कथा को आधार बनाकर सन् 1947 में लिखित गीतिनाट्य है । इसका रचनाकार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हैं । वे महात्मागांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि महद्व्यक्तियों के आदर्शों से प्रभावित हैं । दिवोदास के माध्यम से उन्होंने मानव को देवता बनाया है ।

दिवोदास का आदि नाम रिपुंजय है । वह गंगा के किनारे बने आश्रम में घोरतपस्या करता है । इससे संप्रीत होकर ब्रह्मा उससे वर माँगने को कहते हैं । रिपुंजय उनसे मनुष्यत्व की माँग करता है । ब्रह्मा कहते हैं

"मेरी कृति में मनुष्यत्व से श्रेष्ठ नहीं कुछ अन्य ।"[3]

यहाँ गुप्त जी ब्रह्मा के माध्यम से मनुष्यत्व के महत्व के बारे में बताते हैं । उनके अनुसार मनुष्यत्व से बढकर कोई धर्म नहीं । दिवोदास के माध्यम से गुप्तजी पशुता धारण करने वाले मर्यादाहीन मानव का उल्लेख भी करते हैं ।

दिव भी तुम्हारा दास कहकर प्रजापति ब्रह्मा उसे दिवोदास नाम प्रदान करते हैं । ब्रह्मा उसे अकालपीडित काशी राज्य की रक्षा करने का भार भी सौंपते हैं । दिवोदास ब्रह्मा के सम्मुख

---

1 सेठ गोविन्ददास नाट्यकला तथा कृतियाँ रामचरणमहेन्द्र पृ. 179

2. वही

3. दिवोदास मैथिलीशरण गुप्त पृ. 10

यह शर्त रखता है कि अपनी धरती से सारा सुरसमुदाय चला जाय । यह सुनकर ब्रह्मा आश्चर्यचकित हो जाते हैं । क्योंकि पृथ्वी में देवों के कारण से ही असुरों का निग्रह हो सकता है । देवों पर दिवोदास को समुचित श्रद्धा भक्ति है । किन्तु वह चाहता है कि मानव आत्मनिर्भर बने । वह कहता है

"हम पृथ्वी के पुत्र, हमीं पर निज भू माँ का भार ।
कर दी है, देवावलम्ब ने नर की निजता नष्ट,
अमृतपुत्र होकर भी हम हैं पौरुष-पद से भ्रष्ट।
किन्तु आत्मविश्वासी हूँ मैं पाकर दुर्लभ देह ।"[1]

वह चाहता है कि देवताओं की सहायता के कारण मानव का निजत्व नष्ट न हो जाए । अंत में ब्रह्मा उसी की प्रार्थना को स्वीकार करके वहाँ से अप्रत्यक्ष हो जाते हैं ।

दिवोदास के माध्यम से गुप्तजी ने मनुष्य को आत्मनिर्भर और कर्मनिरत होने, मर्यादा का अवलंब लेने और पशुता को छोडने का उपदेश दिया है । मानव को हमेशा अपनी शक्ति को पहचानना चाहिए । गुप्तजी का यह उपदेश युगानुकूल भी है । मानवतावाद का दर्शन इस रचना में है । आधुनिक मानव स्वार्थी, ममत्व हीन, आलसी और मर्यादा का उल्लंघन करने वाले हैं ।

'दिवोदास' में गुप्तजी विज्ञानमय भविष्य की प्रशंसा करते हैं

"हम मनुष्य होकर क्या चाहें ?
देवों से भी अधिक क्यों न यह अपना भाग्य सराहें
निज सुयोग पर गर्व जनावें
इस जीवन को पर्व बनावें ।"[2]

आधुनिक मानव को अपने अस्तित्व और क्षमता पर विश्वास नहीं है । मानव को अपने अस्तित्व का बोध कराना ही इसगीतिनाट्य का उद्देश्य हे ।

---

1 दिवोदास मैथिलीशरण गुप्त पृ. 12
2. वही पृ. 20

नागराज पुत्री अनंग मोहिनी को देखकर उसका हृदय झुक जाता है । वह काशी शिव के दर्शन करने के लिए आयी थी । लेकिन पृथ्वी में कोई देव शेष नहीं रह गया था । वह बताता है राज्य के अकाल को दूर करने के लिए मनुष्य को स्वयं प्रयत्न करना चाहिए । दिवोदास यहाँ भी यह इच्छा प्रकट करता है कि मनुष्य आत्मनिर्भर बने ।

"यही क्षुधा भी शान्त करेंगी और हरेंगी श्रान्ति,
ऊपर शून्य तको क्यों नीचे भरे सिन्धु गंभीर,
करो सींचने के उपाय ही; अक्षय है निज नीर ।
सुजला अब भी भूमि हमारी, चलो, करें उद्योग
सुफला इसे बना लें मिलकर सम भोगी हम लोग।"[1]

मनुष्य को भाग्य के भरोसे जीने और अन्धविश्वास पर विश्वास रखने से कोई फायदा नहीं । मनुष्य को अपनी शक्ति पर विश्वास रखना चाहिए, सदा दैव दैव पुकारना व्यर्थ है । प्रस्तुत रचना के माध्यम से गुप्तजी मनुष्य को आलस्य छोड़कर जागृत होने की प्रेरणा देते है । पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए ही ईश्वर ने मानव का सृजन किया है । 'दिवोदास' के माध्यम से गुप्तजी ने देशप्रेम, आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, कर्मोन्मुखता आदि सद्भावनाओं को अपनाने का उपदेश दिया है । इन सद्भावनाओं को अपनानेवाले लोग ही आधुनिकयुग में विजय प्राप्त कर सकते हैं। जीवन में होनेवाली विपत्तियों का मूलकारण ईश्वर नहीं मानव का निष्क्रियत्व है । इसी तथ्य का उद्घाटन भी गुप्तजी करते हैं ।

स्वतन्त्रतापूर्व गीतिनाट्यों के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहूँचते हैं कि स्वतन्त्रतापूर्व गीतिनाट्यों ने पौराणिक और ऐतिहासिक मिथकों का प्रश्रय लेकर समसामयिक ज्वलन्त समस्याओं का उद्घाटन किया है । इनमें नरबली, नारी मुक्ति, नारी शोषण, नैतिक पतन, नर-नारी संघर्ष, पुरुष की अधिकार लिप्सा, मूल्यशोषण, हिंसात्मक वृत्ति, युद्ध आदि से संबन्धित अनेक वर्तमान सामाजिक समस्याओं को सुलझाकर मानवकल्याण, और विश्वशांति की स्थापना गीतिनाट्यकार चाहते हैं ।

---

1. दिवोदास मैथिलीशरण गुप्त पृ. 18

चौथा अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकतत्व

(1947 से - 1965 तक)

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथक तत्व
(1947 से 1965 तक)

स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक गीतिनाट्य रचे गए । ये रचनाएँ गीतिनाट्य के तत्वों की दृष्टि से देखें तो अत्यन्त सफल हैं । ये काव्यत्व, नाट्यत्व और संगीतत्व का त्रिवेणी संगम हैं । इन गीतिनाट्यों की यही विशेषता है कि उस काल के प्रयोगवादी लेखक नये नये प्रयोग गीतिनाट्यों में लाये । इस काल में विरचित गीतिनाट्य कल्पना से उतरकर यथार्थ की भूमि पर समस्याओं की जांच करते हैं । मानव जीवन से अधिक संबन्ध रखनेवाले अनेक गीतिनाट्य इस काल में लिखे गए । इनमें हृदय और बुद्धि का समन्वय प्राप्त है । ये गीतिनाट्य समाज में, वर्तमान युग में प्रचलित सामाजिक ज्वलन्त समस्याओं का उद्‌घाटन करते हैं । इन पर फ्रायड के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ा है । हृदय के कोमल भावों की अभिव्यक्ति करने में ये गीतिनाट्य सक्षम हैं । अभिनेयता और मंचीयता की दृष्टि से भी ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इनके छोटे छोटे संवादों में नाटकीयता है । अतुकान्त छन्द के बदले मुक्त छन्द का प्रयोग इनमें अधिक दृष्टव्य है । यही इन का खास शिल्पपरक वैशिष्ट्य है । इनमें लय का विशेष महत्व है । इस काल की सबसे प्रमुख रचना है धर्मवीर भारती द्वारा रचित 'अन्धायुग' । अन्य प्रमुख रचनाकार हैं जानकीवल्लभ शास्त्री, दुष्यन्तकुमार, दिनकर, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरणवर्मा आदि । इनमें हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करने में प्रसिद्ध एवं सक्षम गीतिनाट्यकार हैं भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट आदि । लोकनाट्यों का प्रभाव भी कुछ रचनाओं पर हम देख सकते हैं । लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित 'सूखा सरोवर' इसकेलिए अच्छा उदाहरण है । "घटनाओं की अलौकिक दुनिया के पात्रों के बाहरी संघर्ष के बजाय लौकिक दुनिया के पात्रों के भीतरी संघर्षों, प्रश्नाकुलताओं और युग की समस्याओं को प्राथमिकता देते हुए इस युग के कवि ने कथासंयोजन को बहुत ही क्षीण तन्तु से बांधा है।"[1] आधुनिक गीतिनाट्यकार परंपरागत मूल्यों की स्थापना के बदले नए मूल्यों की तलाश करने के प्रयत्न में व्यस्त हैं ।

---

1 'सूर्यपूत्र' जगदीश चतुर्वेदी पृ. 57-58

कर्ण

सन् 1953 में भगवतीचरणवर्मा द्वारा रचित गीतिनाट्य है 'कर्ण' । प्रस्तुत गीतिनाट्य का प्रारंभ महाभारत युद्ध से होता है । युद्ध में भीष्म धराशायी हो चुके और गुरु द्रोण की मृत्यु हुई । शल्य को सारथी बनाकर कौरवपक्षधारी कर्ण दुर्योधन की सहायता करने केलिए उपस्थित होता है । महाभारत कथा को आधार बनाकर लिखे गए इस गीतिनाट्य में पराक्रमी, शूरवीर और दानी कर्ण के उदात्त और उज्वल चरित्र का अंकन रचनाकार ने किया है । इसमें वैयक्तिकता की प्रधानता है और मानव मन के मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्‌घाटन भी प्राप्त है । कर्ण के मन की कुंठा, निराशा, अपमान, हीनता बोध आदि भिन्न-भिन्न भावनाओं और उसके व्यक्तिगत जीवन से संबन्धित अनेक घटनाओं का वर्णन इसमें मौजूद है । अन्यायी कौरवों का पक्ष लेने की वजह से लोग उसे भी अधर्मी समझते हैं । अपनी वीरता और बाहुबल पर उसे संपूर्ण भरोसा था । पौरुष, साहस और शक्ति के प्रतिरूप कर्ण में स्वाभिमान की भावना कूटकूटकर भरी थी । प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों के कारण ही उसके जीवन में कटुता हुई । चमकदार व्यक्तित्व होने पर भी नियति ने उसके प्रति अन्याय किया । अपने संपूर्ण जीवन में आद्यन्त उसे अन्याय का शिकार होना पड़ा । सूर्यपुत्र होने पर भी सूतपुत्र बनकर, पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता होते हुए भी दुर्योधन का घनिष्ठ मित्र बनकर और राजपुत्र होते हुए भी अंगराज बनकर उसे जीना पड़ा ।

अविवाहित कर्ण को द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार जानकर उसका वरण करने की इच्छा हुयी । बड़ी आशा के साथ स्वयंवर सभा में आए कर्ण को द्रौपदी की अवहेलना सहनीं पड़ी । स्वयंवर की भरी सभा में जब वह लक्ष्यवेध के लिए आगे बढ़ा तब द्रौपदी ने सूतपुत्र कहकर उसे रोक दिया । उस समय अपमानित होते हुए भी संयमी बनकर बैठे कर्ण के मन में उस दिन से अर्जुन के प्रति विद्रोह, घृणा और क्रोध के भाव जाग उठे । अर्जुन के कारण ही वह द्रौपदी का वरण न कर सका ।

राजसुता होने के कारण द्रौपदी में अहं की भावना है । जिसतरह उन्नत कुल जात व्यक्ति निम्नजाति की अवहेलना करता है उसी प्रकार द्रौपदी कर्ण की अवहेलना करती है । वह कहती है

"कर्ण ! रुको तुम सूतपुत्र क्या कर्ण हो ?
मुझको वरने का अधिकार तुम्हें नहीं,
राजसुता मैं कुष्णा हूँ, यह जान लो ।
वर्णहीन तुम केवल दर्शक भर रहो।"[1]

भारतीय समाज में अब भी जाति-पाँति की व्यवस्था मौजूद है । उच्च-निम्न भेदभाव है । उच्चवर्ग निम्नवर्ग को घृणित मानता है । यहाँ द्रौपदी उच्चवर्ग की प्रतिनिधि बनकर सामने प्रत्यक्ष होती है । प्रचीन काल सेही संसार में चली आयी उच्च-नीच भेदभावना या वर्ण व्यवस्था द्रौपदी के कथन से स्पष्ट है । द्रौपदी का व्यंग्य वचन महाभारत युद्ध का कारण बन जाता है । कहा जाता है कि संपत्ति और स्त्री कलह की वजह बनती है । यहाँ स्त्री महाभारत युद्ध का कारण बनती है ।

महाभारत के समय सूत वर्णहीन समझा जाता था । समाज में सूतवंश को खास स्थान नहीं मिला था । शूद्र के प्रति जिसतरह समाज व्यवहार करता था उसीतरह का व्यवहार था सूत के प्रति भी । सूतपुत्र होने के कारण उसे अपने जीवन में हमेशा अवहेलना मात्र मिली । कहीं से उसे प्रेम नहीं मिला । उसका जीवन कटुता और निराशा से ग्रस्त था । उसे आजीवन अविवाहित रहना पड़ा । वह अपने को निम्न समझता है और क्षत्रियों को सबके लिए अधिकारी मानता है । शल्य से उसका कथन है

"हिंसा मुझमें? इस सूतपुत्र में हिंसा ?
हिंसा पर केवल है अधिकार तुम्हारा
तुम जो क्षत्रिय हो, जो कुलीन, जो शासक
जिसकी श्वासों में बही धर्म की धारा ।"[2]

---

1 "त्रिपथगा' कर्ण भगवतीचरणवर्मा पृ. 17
2. "त्रिपथगा' कर्ण भगवतीचरणवर्मा -पृ. 15

सूतपुत्र होने की विवशता, अपमान और हीनता उसके वचनों से स्पष्ट हैं । सवर्ण लोगों के प्रति उत्पन्न ईर्ष्या भी इन वचनों में निहित है । जन्म से कर्ण सवर्ण था; लेकिन समाज के सम्मुख वह सूतपुत्र था ।

कुन्ती को सुर्यदेव से प्राप्त अवैध सन्तान था कर्ण । लोकलाज के भय से कुन्ती ने उसे त्याग दिया । सूतवंशज अतिरथ और राधा ने उसका लालन पालन किया । अवैध सन्तान होने की वजह से वह सदा माता-पिता की ममता से वंचित रहा । लोकापवाद के भय से स्वसन्तान को त्यागनेवाले कितने ही माता-पिता आज भी हमारे समाज में हैं । कुन्ती ऐसी माता का प्रतिरूप है । कर्ण अपनी जन्मसंबन्धी बात जानकर अत्यधिक कठोर बन जाता है । उसकी कटुता गहरी और भयानक बन जाती है । स्वयं अपमानित होकर वह कहता है

"यह सूतपुत्र है नहीं शूद्र तक- जारज
जारज समाज का कुष्ठ, और मानवता
का एक घृणित अभिशाप, जिसे वर्जित है
अपनी माता की या कि पिता की ममता ।"[1]

यहाँ गीतिनाट्यकार कर्ण के माध्यम से समाज में जारज सन्तानों की शोचनीय स्थिति का उल्लेख करते हैं । जारज सन्तान समाज और मानवता का अभिशाप है । अपने माता-पिता के मधुर स्नेह से वे सदा वंचित रहते हैं । उन्हें सामाजिक तिरस्कार का अनुभवकर और प्रिय जनों की ममता से वंचित होकर जीने की नौबत आती है । कर्ण आगे कहता है

"जारज जो लम्पट पुरुष अभद्रा कन्या
की कामुकता का मूर्तिमान पातक है
जारज हैं जिसके स्वजन, न जिसका कुल है,
जो मानव की मर्यादा का धातक है।"[2]

---

1 "त्रिपथगा' 'कर्ण' भगवतीचरणवर्मा -पृ. 21

2. वही पृ. 21

यहाँ कुन्ती के माध्यम से स्त्री के नैतिकमूल्यों का पतन भी दिखाया गया है । जब कुन्ती कुमारी थी तभी उसके मन में सूर्य के प्रति आसक्ति जगी और मन्त्रबल से सूर्य को आमंत्रितकर अपनी अभिलाषा की पूर्ति की । इसके फलस्वरूप कर्ण का जन्म हुआ । आज भी संसार में जारज सन्तानों की संख्या कम नहीं । आधुनिक युग में भी स्त्री-पुरुष संबन्ध को तुच्छ समझकर उसके महत्व को न जानकर अवैध संबन्ध स्थापित करनेवाली अनेक स्त्रियाँ हैं ।

कर्ण अमरत्व या देवत्व से अंधिक प्रधानता मनुष्यत्व को देता है । अपने देवत्व के प्रतीक कवच और कुण्डलों को वह इन्द्र को दान में देता है । वह कहता है

"अमरत्व और देवत्व अरे वह धिक है-
हो महापातको इन्द्र कि जिसका स्वामी।
छल, कपट, भोग, तृष्णा देवों के गुण हैं
मैं मनुज, सत्य का, संयम का अनुगामी!"[1]

प्रस्तुत कथन में मनुज की महानता को महत्व दिया गया है । मानव सत्य, संयम और दानधर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ है। साधारण भले मानव की तरह मानवता कर्ण में मौजूद है । शल्य से कर्ण का कथन भी मानवतावाद को प्रकाशित करता है

"मैं सूतपुत्र ? मैं हूँ मनुष्य, मैं पावन,
मैं निष्कलंक, मैं अकलुष, मैं व्रतधारी,
मैं जीवित हूँ निज भुजदण्डों के बल पर
मैं राज्य लोभ से बना कभी न भिखारी।"[2]

शूर-वीर, पराक्रमी, निष्कलुष और निर्भीक व्यक्तित्व वाले साधारण मानव के प्रतिरूप कर्ण में साधारण मानव की विवशता भी मौजूद है ।

---

1 "त्रिपथगा' 'कर्ण' भगवतीचरणवर्मा -पृ. 28

2. वही पृ. 18

प्रस्तुत गीतिनाट्य में गीतिनाट्यकार ने दानशील कर्ण का परिचय भी दिया है । कर्ण ने अपना जीवन जनकल्याण के लिए समर्पित किया; विपक्षी होने पर भी कौरवों के लिए अपना जीवन दान दिया । त्याग, प्रेम और ममता की भावना से भरा था उसका हृदय । इस कारण सेउसमें हम गाँधीजी का प्रतिरूप देख सकते हैं । लेकिन सूतपुत्र होने के नाते उसके प्रेम, त्याग, आदर्श आदि अनेक उदात्त गुण निरादृत हुए । कर्ण के महान व्यक्तित्व में दूसरों की भलाई करने की सात्विकता थी । उसने अपने कवच और कुण्डल इन्द्र को दान में दिए जो उसे अमरता प्रदान करते थे । यह दानकर्म दधीचि के हड्डीदान से कम नहीं था । यह दानशीलता उसके मनुष्यत्व का प्रदर्शन करती है ।

कर्ण अपने मृत्यु की अन्तिम वेला में भी एक भिखारी को अपने स्वर्णदांत तोड़कर दान देता है । कुन्ती अपने पुत्रों के प्राणों की भीख माँगने कर्ण के सम्मुख आयी थी । उसने पार्थ को छोड़कर अन्य सभी भाइयों को अभय दान देने का वादा किया । लेखक ने कर्ण की महानता और दानशीलता के प्रति अतीवश्रद्धा दिखाई है । कर्ण का चरित्र मानवीय गुणों से उदात्त और पूर्ण है । "अतिशय वीर, पराक्रमी, उदार और दानी" इन शब्दों में कर्ण के संपूर्ण चरित्र का विश्लेषण किया जा सकता है।"[1] कर्ण जैसे दानशील, दूसरों के लिए जीनेवाले और लोककल्याण की भावना से संपन्न व्यक्ति वर्तमान समाज में बहुत विरले ही मिलते हैं ।

शौर्य और पराक्रम में अर्जुन के समकक्ष कर्ण का निधन श्रीकृष्ण के कौशल और कूटनीति के कारण ही हुआ था । कृष्ण कर्ण को प्रतिहिंसा और घृणा का प्रतीक मानकर उसकी मृत्यु जनकल्याण के लिए आवश्यक मानते हैं । छल और कपटता भरे व्यक्तित्व के प्रतीक के रूप में कृष्ण का चित्रण गीतिनाट्यकार ने किया है । कर्ण की हत्या के लिए कृष्ण अधर्म मार्ग को स्वीकार करते हैं । कृष्ण की यह अधम और अधर्म वृत्ति हमारे मन में कृष्ण के प्रति

---

1. "त्रिपथगा' कर्ण भगवतीचरणवर्मा -लोखक के कर्ण के प्रति विचार -पृ. 9

विद्यमान परंपरागत संस्कार जन्य पूज्य भाव पर चोट पहूँचाती है । लेकिन कृष्ण इसका समर्थन करते हुए शल्य से कहता है

"वह कब विनयी बन सका और कब कोमल?
वह अहम्भाव का था उद्दाम पूजारी!
उसमें कब ममता, दया या कि करुणा ?
केवल विनाश का ही था वह अधिकारी ।
अन्याय हुआ था उसपर मैं ने माना,
था नहीं व्यक्ति, दोषी समाज था सारा !"[1]

कृष्ण कर्ण के अहम्भावी, विनम्रताहीन और कठोर व्यवहार केलिए समाज को उत्तरदायी और दोषी मानते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में समाज का योगदान महत्व पूर्ण है । समाज ही, व्यक्ति में कटुता की सृष्टि करता है । प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों में पलनेवाले व्यक्ति के व्यक्तित्व में कर्ण की जैसी कटुता उत्पन्न होने की संभावना है । कृष्ण के माध्यम से इसी तथ्य का उद्घाटन लेखक करते हैं । अपनी शक्ति पर अदम्य विश्वास रखनेवाले व्यक्ति के मन में ईर्ष्या और प्रतिहिंसा की भावना अधिक होती है । इसलिए उसका विनाश अनिवार्य जान पड़ता है । इसकारण से ही कर्ण का वध भगवान करते हैं ।

आदि से अन्त तक कर्ण साहसी, संयमी और दानी बनकर हमारे सम्मुख जाज्वल्यमान रहता है । समाज के तिरस्कार को और अपने पथ में आए रोड़ों को तृणवत्-मानकर चलनेवाले कर्ण का चरित्र अत्यन्त उज्वल बन पड़ा है । इस गीतिनाट्य का प्रतिपाद्य विषय आज के युग के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है ।

---

1 "त्रिपथगा' 'कर्ण' भगवतीचरणवर्मा पृ. 39

द्रौपदी

महाभारत के प्रसंग को आधार बनाकर श्री. भगवतीचरण वर्मा से लिखा गया गीतिनाट्य है द्रौपदी । धर्म और मर्यादा की उपासिका द्रौपदी के मन की सारी वेदनाएँ इस में अंकित हैं । "महाभारत का युग हिंसा, प्रतिहिंसा का युग है, वह अपमान का युग है, वह अहम्मन्यता और घृणा का युग है । कोई भी तो चरित्र महाभारत का ऐसा नहीं है एक युधिष्ठिर को छोड़कर जो युग की हिंसा से बचा हो।"[1] "द्रौपदी महाभारत की सर्वप्रसिद्ध नारी थी । वह महाभारत युद्ध का कारण थी । महाभारत का पूर्ण दायित्व लेखक के अनुसार संपूर्ण रूप से द्रौपदी पर पड़ता है।"[2] जिस दिन द्रौपदी ने सुयोधन को "अन्ध' का सुत है अन्धा' कहकर अपमान किया था उस दिन महाभारत युद्ध की नींव डाली थी । द्रौपदी को हमेशा कुंठा, निराशा और प्रतिहिंसा के वातावरण में जीना पड़ा । प्रस्तुत गीतिनाट्य में द्रौपदी के कुंठाग्रस्त जीवन और उसके जीवन के प्रति किए गए अत्याचारों का वर्णन रचनाकार ने किया है ।

द्रौपदी के जन्म और शादी असाधारण परिस्थिति में संपन्न हुए थे; इस कारण से उसके मन में कटुता और प्रखरता थी ।

द्रौपदी का स्वयंवर उसकी इच्छा के विरुद्ध संपन्न हुआ था । प्रत्येक नारी के मन में तरह तरह की मधुर अभिलाषाओं और भावनाओं का होना स्वाभाविक है । लेकिन अपने मन के प्रेम को उसे पिता की प्रतिहिंसा की भावना के आगे समर्पित करना पड़ा । वह अपने को विक्रय वस्तु समझ कर कहती है

> "मैं ही वह स्वयंवरा जिसके विक्रय को ही
> पूज्य पिता मेरे ने रचा एक महापर्व।"[3]

---

1 त्रिपथगा 'द्रौपदी' भगवतीचरणवर्मा के उद्‌गार, पृ. 68

2. त्रिपथगा 'द्रौपदी' भगवतीचरणवर्मा के उद्‌गार, पृ. 65

3. वही पृ. 74

आज भी पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए विक्रयवस्तु बनने की विवशता नारी को होती है । प्राचीन युग में नारी संपत्ती थी । इस कारण से ही मानव के अधिकारों से वह सदा ही वंचित रही । अधिकार सब उससे छीन लिया गया । वह स्वयं कहती है

"मैं ही वह स्वयंवरा, जो है संपत्तिमात्र
जो कि वीरता पर, जो शौर्य पर समर्पित है;
मैं ही वह स्वयंवरा, मूर्ति भावना की, पर
जो है अस्तित्वहीन, जिसे प्रेम वर्जित है ।"[1]

प्राचीन युग में नारी को संपत्ती मानकर नारी का अपमान होता रहा । लेकिन आधुनिक युग में स्त्री को उपभोग योग्य संपत्ति मानकर समाज उसे टालता रहता है । द्रौपदी की तरह वर्तमान युग में भी नारी सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक प्रतिबन्धों के सम्मुख सिर नवाती है । जिसप्रकार द्रौपदी के मान और मन, नारीत्व और कोमलता आहत हो जाते हैं उसी प्रकार पिता की इच्छा पूर्ति के लिए नारी को हमेशा शिकार बनना पड़ता है । पिता की इच्छा को वह सबसे प्रथम स्थान देती है । अपने पिता के प्रण की पावनता को कायम रखने के लिए वह बलिहारी होती है ।

"नारी का दासीत्व सदा से धर्म है ।"[2]

किसी न किसी व्यक्ति की इच्छा पूर्ति के लिए नारी सदा माध्यम बन जाती है चाहे पिता हो या पति या अन्यव्यक्ति । नारी को कभी भी दासीत्व से मुक्ति नहीं मिली है । द्रौपदी इस तरह की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है । द्रौपदी का कथन है

1.त्रिपथगा, 'द्रौपदी' भगवतीचरणवर्मा पृ. 74
2. वही पृ. 83

"यह नारी है भोग्य और संपत्ति है,
यह नारी है व्यंग्य मात्र अस्तित्व की।"[1]

"नारी को वर्जित है निज की भावना
वर्जित उसको मान और अपमान है
वर्जित उसको स्वयं एक अस्तित्व निज
वर्जित उसके स्नेह, प्रेम ममता यहाँ ।"[2]

समाज में नारी का अपना अस्तित्व नहीं; नारी को मान और अपमान वर्जित हैं; प्रेम और ममता से वह सदा वंचित रहती है ।

राजकुल में जन्म लेने के कारण द्रौपदी अहं की भावना से ग्रस्त नारी बनी। दर्प से प्रेरित होकर उसने सूतपुत्र कहकर कर्ण का अपमान किया । निम्नजाति में जन्म लेने के कारण जिसतरह कर्ण को द्रौपदी द्वारा अपमानित होना पड़ा उसी तरह समाज में आज भी निम्नजाति के लोगों का अपमान नित्य होता ही रहता है । वे सदैव कई अधिकारों से वंचित रह जाते हैं ।

इस गीतिनाट्य में कर्ण के पौरुष का परिचय भी प्राप्त होता है । वह कहता है

"मैं कर्ण और मैं हूँ मनुष्य की संज्ञा
कुल परंपरा के नहीं लिये मैं बन्धन;
मेरे भुज-दंडों में ही मेरी सेना,
मेरा पौरुष है महाप्रलय का वाहन।
मैं निष्कलंक, मैं निर्भय, मैं अपराजित
मैं सदा धर्म पर दृढ़ जैसे ध्रुवतारा ।
मैं नहीं जानता जात-पाँत का कारा ।"[3]

---

1 त्रिपथगा, 'द्रौपदी' भगवतीचरणवर्मा पृ. 86
2. वही
वही पृ. 80

कर्ण के कथन में जाति-पाँति की प्रथा का खण्डन है । समसामयिक युग में भी जाति-पाँति की व्यवस्था मौजूद है । जाति-पाँति का शिकार बनकर कई अवसर मानव से छूट जाते हैं ।

अर्जुन ने द्रौपदी का विवाह किया । फिर भी द्रौपदी को पाँच पतियों की पत्नी बननी पड़ी । पाँच पतियों की पत्नी बनकर भी धर्म और मर्यादा से उसका विचलन कभी नहीं हुआ । पतियों के सुख को वह सबसे श्रेष्ठ समझती थी । वह कुन्ती से कहती है

'माता मुझको अपना आशीर्वाद दो
जिससे दृढ़ रह सकूँ सदा मैं धर्म पर।"[1]

उसमें यातनाएँ सहने की ताकत है

"मैं नहीं हूँ कोमल मेरा अंग पर
प्राणों में है कुलिश समान कठोरता ।"[2]

द्रौपदी में संयम की कमी न थी । इसी संयम के कारण वह अपने मन में उपजे विद्रोह और कटुता की भावना को दबाती है । द्रौपदी के माध्यम से भगवतीचरणवर्माजी नारी के उदात्त गुण संयमशीलता की सराहना करते हैं । वे द्रौपदी के चित्रण से पतिव्रता पत्नी का परिचय भी देते हैं । वह अपने पतियों के अपमान को अपना अपमान समझती है । धर्म, मर्यादा और संयमशीलता के पथ पर अग्रसर होनेवाली पतिव्रता पत्नी का रूप द्रौपदी में दृष्टव्य है ।

भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण, आचार्य कृप आदि उपस्थित भरी सभा में कौरवों ने द्रौपदी का अपमान किया था । यह सबसे दुःखदायक था । नारी का अपमान कभी भी क्षम्य नहीं है । मनुस्मृति में नारी की प्रशंसा करते हुए स्मृतिकार ने लिखा है

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

---

1 त्रिपथगा, -'द्रौपदी' भगवतीचरणवर्मा पृ. 87

2. वही पृ. 83

इस प्रगतिशील आधुनिकयुग में भी नारी का अपमान यत्रतत्र हो रहा है । नारी का अपमान मानवता के विरुद्ध होता है । यह बर्बरता है । अपमानित नारी घृणा और प्रतिहिंसा की मूर्ति बन जाती है । द्रौपदी के चरित्र में यह बात स्पष्ट झलकती है ।

युद्ध आज भी एक प्रहेलिका है । युद्ध में निरीह व्यक्तियों का संहार होता है । महाभारत युद्ध इसका अप्रतिम उदाहरण है । कई लोग युद्ध में मारे जाते हैं और अनेकों का अंग-भंग हो जाता है । आज भी हमारा समाज युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त है । महाभारत का युग हिंसा-प्रतिहिंसा और मान-अपमान का युग है । वर्तमान युग भी वैसा ही है ।

द्रौपदी के हृदय में नारी सहज कोमलता भी विद्यमान थी । इसी कोमलता के कारण ही वह महाभारत युद्ध के बाद भीषण नरसंहार पर पश्चाताप प्रकट करती है । द्रौपदी के संबन्ध में युधिष्ठिर का कथन है

"तुम हो निष्पाप, निष्कलंक और दोष रहित,
पावन हो पूज्य हो, सुयश का तुममें प्रकाश।"[1]

कोमल हृदय वाली स्त्री में कठोरता प्रतिकूल परिस्थिति के कारण उत्पन्न होती है । द्रौपदी का चरित्र इसका प्रमाण है ।

अन्त में द्रौपदी के द्वारा नियतिवादी लेखक का रूप उभर आता है । द्रौपदी नियतिवाद का समर्थन करती हुई कहती है

"साधन थी नियति की, समर्पित मैं उसके हूँ ।
नत हूँ श्री चरणों पर मेरे शत शत प्रणाम।"[2]

---

1 त्रिपथगा, -'द्रौपदी' भगवतीचरणवर्मा पृ. 112

2. वही पृ. 114

"यही भाग्य का खेल यहाँ मानव का जीवन
इसी भाग्य का रूप यहाँ पर पुलकन क्रन्दन ।"[1]

मानव नियति के पथ पर चलनेवाले हैं । नियति के सम्मुख उनको सर्वस्व समर्पित करना पड़ता है । इसमें नारी की विवशता का रचनाकार ने सुन्दर चित्र अंकित किया है । इस में युद्ध व्यक्तिगत कारण से हुआ है । इसकी विडम्बना का परिणाम महाभारत में है ।

पाषाणी

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री से विरचित 'पाषाणी' पौराणिक कथा पर आधृत एक मनोवैज्ञानिक गीतिनाट्य है । इसका रचनाकाल सन् 1953 ई. है । स्त्री के मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्‌घाटन यहाँ युवती अहल्या के माध्यम से रचनाकार ने किया है । यहाँ युवती अहल्या और वृद्ध तापस गौतम के बीच का अनमेल विवाह और उससे उत्पन्न समस्यायें ही प्रमुख हैं। फ्रायड के सिद्धान्त का गहरा प्रभाव इस कथा पर पड़ा है । मानव अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति स्वप्न के माध्यम से करते हैं । अहल्या काम पिपासा से कुंठाग्रस्त थी । उसकी दमित इच्छाएँ स्वप्नावस्था में पूर्णता प्राप्त करती हैं ।

एक दिन राजकुमारी मल्लिका गौतम के आश्रम में आती है । युवती अहल्या को वृद्ध तापस के आश्रम में देखकर वह आश्चर्य चकित हो जाती है । अहल्या अपनी कथा मल्लिका को सुनाती है । अहल्या के माता-पिता निःसंतान थे । वे राजकाज संभालते संभालते ऊब उठे थे । महामुनि गौतम की कृपा से उन्हें सन्तान मिली । लेकिन गौतम को पहली संतान देने की प्रतिज्ञा के कारण माता-पिता को पहली संतान अहल्या को गौतम को समर्पित करना पड़ा । माता-पिता ने गौतममुनि की शर्त सहर्ष स्वीकार की है क्योंकि वे संतान के लिए बहुत आतुर थे । अहल्या के माता-पिता वंश विस्तार मात्र चाहते थे । उन्होंने प्राणों को कोई महत्व नहीं दिया ।

---

1 त्रिपथगा, 'द्रौपदी' भगवतीचरणवर्मा पृ. 102

वे बोल उठे

"प्राणों के बदले भी वांछित हमें
यहाँ माता-पिता की इच्छा पूर्ति केलिए वंशविस्तार।"[1]

यहाँ माता-पिता की इच्छा पूर्ति केलिए अहल्या को अपनी इच्छा के विरुद्ध गौतम मुनि की पत्नी बनकर नीरस जीवन बिताना पड़ा । आज भी नारी किसी न किसी कारण से दूसरों की इच्छा पूर्ति का साधन बन जाती है ।

गौतम सदा तपश्चर्या में लीन रहते थे । उनके लिए यज्ञ के साधन जुटाने का काम अहल्या को था । अहल्या के मन में तपस्विनी का श्रेष्ठ और संयत जीवन बिताने की ज़रा भी इच्छा नहीं थी । वह गौतम से कहती है

"तपते-तपते मन ऊबा है।
मेरे जीवन का फुल्ल कमल
आँसू के सर में डूबा है !
तरुणाई मन की कोमलता,
तो क्यों इतना तन तनता है ?
क्यों भवें रिंवची रहतीं ? दृग से
सीधा न देखते बनता है!"[2]

यौवनयुक्त नारी की सहज कामना, अभिलाषा आदि यहाँ अहल्या के माध्यम से रचनाकार व्यक्त करते हैं । तप करते करते अहल्या का मन ऊब जाना, अपनी इच्छा के विरुद्ध तपस्विनी बनने की शोचनीय स्थिति आदि अहल्या के चरित्र में अंकित हैं । गीतिनाट्यकार ने अहल्या की वेदना की अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीतिनाट्य में की है ।

---

1 'पाषाणी' आचार्य जानकीवल्लभ -शास्त्री पृ. 80
2. 'पाषाणी' आचार्य जानकीवल्लभ -शास्त्री पृ. 83

अपने विरस जीवन का परामर्श करती हुई अहल्या गौतम से कहती है

"सात्विकता छुईमुई ऐसी
जीवन कठोर, नीरस ऐसा !
ऐसे में कैसे हो विकास ?
गतिहीन हृदय परवश कैसा ! "[1]

वह पूछती है कि नीरस जीवन में विकास कैसे होगा ?

वृद्ध जरा-जर्जरित तापस को स्वीकार करने की विवशता युवती अहल्या को होती है । वह गौतम से कहती है

"मैं युवती, तुम जरा जर्जरित, इस जलते-से सत्य को
धर्म, ज्ञान, तप बुझा न पाए; जला न पाए तथ्य को

वृद्ध तापस के साथ जीनेवाली अहल्या की विवशता आज की दुनिया में अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह के लिए सिर झुकानेवाले अनेक नारियों की विवशता है । अनमेल विवाह से उत्पन्न विषमताओं का अंकन यहाँ किया गया है ।

एक रात निद्रा में डूबी अहल्या एक स्वप्न देखती है । वह नींद में कुछ बड़-बड़ाती है । यह.सुनकर गौतम जग जाते हैं और अहल्या को जगा देते हैं । वह कहती है कि वह स्वप्न में इन्द्र को देख रही थी । यह जानकर गौतम क्रुद्ध हुए । अहल्या को कलंकिनी मानकर उसे पत्थर बनने का शाप देते हैं । नारी की विविशता यहाँ अहल्या के माध्यम से स्पष्ट झलकती है । स्वप्न में इन्द्र से बातें करने के कारण ही उसे पत्थर बनना पड़ा । अस्वतन्त्र नारी की स्थिति का उल्लेख यहाँ प्राप्त होता है । वर्तमान युग में भी नारी किसी न किसी कारण से अस्वतंत्रा है ।

---

1 पाषाणी आचार्य जानकीवल्लभ -शास्त्री पृ. 86
2. वही पृ. 100

गौतम विरक्त जीवन बिता रहे हैं । उनके आश्रम में अहल्या तिल तिल जल रही है । गौतम अहल्या के मनोव्यापार को समझने का श्रम नहीं करते । युवती अहल्या की मानसिकता सहज स्वाभाविक है । उसने अपने यौवन, जीवन और सौदर्य को गौतम की यज्ञ वेदी पर न्योछावर कर दिया । गौतम यहाँ स्वार्थी पुरुष का प्रतिनिधित्व ग्रहण करते हैं ।

वे अपनी स्वार्थ पूर्ति मात्र चाहते हैं । पुरुष वर्ग का सहज स्वभाव यहाँ अंकित है । पुरुष के साध्य के लिए साधन है नारी । स्त्री को अपना अस्तित्व नहीं । वह अपनी इच्छानुकूल कार्य नहीं कर सकती । जब स्त्री पुरुष की इच्छा के विरुद्ध कार्य करती है तब पुरुष उसको दण्ड देता है । इस गीतिनाट्य में पत्नी अहल्या को पाषाणी बना देना इसके लिए उत्तम उदाहरण है । इक्कीसवीं सदी में भी नारी की इस स्थिति में परिवर्तन नहीं आया है । अधिकांश नारियों को अपने पारिवारिक जीवन में पाषाणी बनकर जीना पड़ता है । नारीवाद की दृष्टि से इस गीतिनाट्य का अपना महत्व है ।

अन्धायुग

धर्मवीर भारती का बहुचर्चिच गीतिनाट्य है 'अन्धायुग' । सन् 1955 में इसका प्रकाशन हुआ । इसकी कथा महाभारत पर आधारित है । ' महाभारत युद्ध के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभासतीर्थ में कृष्ण की मृत्यु तक की कथा इसमें अंकित है । 'अंधायुग' पर टी.एस इलियट की 'वेस्टलैंड' कविता का ज़्यादा प्रभाव पड़ा है । 'वेस्टलैंड" में युद्धोपरान्त विध्वंस, यूरोप की कुंठा, निराशा आदि का अंकन है । द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त लिखे गए "अंधायुग' में समसामयिक अंधत्व की अभिव्यक्ति है । 'युद्धोपरान्त विराचित 'अन्धायुग' में मनोवृत्तियाँ, स्थितियाँ और आत्माएँ विकृत थीं। आज भी वैसी स्थिति है । धर्मवीर भारती ने युद्धोपरान्त

उत्पन्न अंधी मनोवृत्तियों को चित्रित किया; आलोचक भी समसामयिक युग के अन्धत्व के मूल में युद्ध को देखने लगे । 'अंधायुग' के मुख्य पात्र हैं अश्वत्थामा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि । इसमें युद्धजन्य प्रतिहिंसा, घृणा, क्रूरता और विविध अमानवीय कृत्यों का वर्णन है । इनके द्वारा आधुनिक जीवन की समस्याओं का उद्‌घाटन हुआ है ।" 'अन्धायुग' पौराणिक आख्यान के माध्यम से वर्तमान जीवन के ह्रास और विघटन की यथार्थ स्थिति का साक्षात्कार करता है ।"[1]

प्रथम अंक में संजय से युद्धसमाचार की प्रतीक्षा करते हुए विदुर, गाँधारी और धृतराष्ट्र बैठे हैं । दूसरे अंक का शीर्षक है 'पशु का उदय'। तीसरे अंक 'अश्ववत्थामा का अर्द्धसत्य' में गीतिनाट्यकार महाभारत कालीन स्थितियों की तुलना वर्तमान युग से करते हैं । चौथे अंक में गाँधारी कृष्ण को शाप देती हैं जिसे विनम्रतापूर्वक श्रीकृष्ण स्वीकार करते हैं । पाँचवें अंक में युयुत्सु , कुन्ती, धृतराष्ट्र, गाँधारी आदि की मृत्यु है । युधिष्ठिर युद्ध के परिणामों से विक्षुब्ध होकर जीवन का अन्त करने के लिए हिमालय के शिखरों पर जाते हैं । अंत में वृद्ध व्याध के बाणों द्वारा कृष्ण की मृत्यु होती है ।

इस गीतिनाट्य में धृतराष्ट्र स्वार्थ वृत्ति का प्रतीक है । उनके कथन से ही यह स्पष्ट है

"मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म
बिल्कुल मेरा ही वैयक्तिक था ।
उसमें नैतिकता का कोई मापदंड था ही नहीं।"[2]

कौरवों के प्रति उनके मन में ज़्यादा ममता थी ।

वे कहते हैं-

---

1 'नये कवि एक अध्ययन डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी पृ. 134

2 अन्धायुग धर्मवीर भारती पृ. 9

"कौरव जो मेरी मांसलता से उपजे थे
वे ही थे अन्तिम सत्य
मेरी ममता ही वहाँ नीति थी,
मर्यादा थी।" [1]

धृतराष्ट्र व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए मोहांध है । इसी मोहांधता से प्रेरित होकर वे युद्ध करते जाते हैं; लेकिन इस बर्बरता से आम आदमी संभीत और उदासीन हैं । बड़े बड़े शासक अपने व्यक्तिगत हितों के लिए स्वार्थ से प्रेरित होकर लड़ते हैं; किन्तु आमजनता को ही युद्ध के बुरे परिणामों को भोगना पड़ता है । वे अपने जीवनमूल्यों से वंचित हो जाते हैं । युद्ध से भयभीत वे नए शासन को स्वीकार करने में विमुखता प्रकट करते हैं । घृतराष्ट्र में पुत्रों के प्रति अतीव ममता थी । लेकिन इसी ममता ने उन्हे अन्धा बना दिया । धृतराष्ट्र जैसे आज के शासक वैयक्तिक प्रेम और स्वार्थ के सम्मुख सामाजिक यथार्थ भूल जाते हैं ।

गाँधारी अन्धी नहीं थीं । फिर भी उन्होंने जानबूझकर अपनी आँखों में पट्टी बाँधी थी । गाँधारी इस संसार को अन्याय का केन्द्र समझती है । उनके मतानुसार बाहर देखनेवाले धर्म, नीति, मर्यादा येसब दिखावे हैं, आडम्बर मात्र हैं । वे सबकुछ व्यर्थ मानती हैं । निर्णय लेते समय भी लोगों के विवेक और मर्यादा नष्ट हो जाते हैं । उनकी राय में धर्म कहीं भी नहीं था। सब लोग अपने अपने स्वार्थ और अन्धी प्रवृत्तियों से परिचालित हैं । सब नैतिकता और मर्यादा का उल्लंघन करते हैं । गाँधारी का कथन आज के युग के लिए भी लागू है । सब अपने मर्यादा को अपनी इच्छानुसार बदल लेते हैं । गांधारी का अन्धत्व धृताराष्ट्र के अन्धत्व से भिन्न है । धृतराष्ट्र दृष्टिहीनता के कारण वस्तु जगत को न पहचानते तो गांधारी ने वस्तुजगत के खोखलेपन को जानते हुए भी उससे पलायन करने के लिए स्वयं अपनी आँखों को बन्द कर दिया । गांधारी कहती है

---

1 अन्धायुग धर्मवीर भारती पृ. 9

"धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब हैं केवल आडम्बर मात्र,
मुझको इस झूठे आडम्बर से नफरत थी
इसलिए स्वेच्छा से मैं ने इन आँखों पर
पट्टी चढ़ा रखा थी ।"[1]

धर्म पर गांधारी विश्वास रखती है । आज के युग की धर्मच्युति का संकेत गांधारी के कथन में है । वे धृतराष्ट्र से कहती हैं-

"मैं ने कहा था दुर्योधन से
धर्म जिधर होगा ओ मूर्ख
उधार जय होगी ।
धर्म किसी ओर नहीं था । लेकिन
सब ही थे अन्धी प्रवृत्तियों से परिचालित ।"[2]

गांधारी के कथन के माध्यम से धर्मवीर भारती युगीन सत्य का उद्‌घाटन करते हैं । मानव मन के अंध गह्‌वर में एक अंधा बर्बर पशु निवास करता है । उस बर्बर पशु में मौजूद घृणा, हिंसा प्रतिहिंसा, बर्बरता जैसी बुरी वृत्तियाँ युद्ध को जन्म देती हैं । गांधारी का कथन है

"हम सब के मन में कहीं एक अन्ध गह्‌वर है ।
बर्बर पशु अन्धा पशु वास वहीं करता है ।"[3]

मानव मन की यही बर्बरता, उन्हें धर्म, नैतिकता मर्यादा, मानवता आदि सद्‌वृत्तियों से अलग कर देती है । गांधारी मानवता, धर्म, नीति आदि में आस्था रखनेवाली सद्‌नारी का प्रति-रूप है । गाँधारी वात्सल्यमयी माँ का प्रतिरूप भी है । पत्नीत्व और मातृत्व के रूपों में वे नारी

---

1. 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 12
2. वही पृ. 13
3. वही पृ. 12

की सार्थकता की पहचान कराती है । किन्तु पुत्रशोक से उनकी मनोवृत्ति में बदलाव आता है । अन्त में वे भी वर्तमान युग की अन्ध मनोवृत्तियों का प्रतीक बन जाती हैं । इसका मूलकारण उनका आहत मातृत्व है । वे भी पाशविक वृत्ति का प्रतिनिधित्व ग्रहण करती हैं । उनका आचरण भी अश्वन्थामा से मिला जुला रहता है । कृष्ण के प्रति उनके मन में गहरी ममता थी । इस ममता को भूलकर वे कृष्ण को शाप देती हैं, युयुत्सु की भर्त्सना करती हैं और अश्वत्थामा के अत्यन्त निकृष्ट कर्म के बारे में सुनने के लिए अतीव व्यग्र हो जाती हैं । लेकिन जब कृष्ण गाँधारी को माँ कहकर पुकारता है तब गाँधारी पश्चाताप विवश हो जाती हैं । गांधारी के माध्यम से गीतिनाट्यकार निर्भीक, सबला, मातृवात्सल्य और ममता से युक्त नारी की पहचान कराते हैं । परिस्थितियाँ किस तरह एक व्यक्ति के हृदय को प्रभावित करती हैं इसका उत्तम उदाहरण है गांधारी का चरित्र ।

इस गीतिनाट्य में चित्रित कई पात्र अधत्व रूपी गहवर में पड़े हुए हैं । धृतराष्ट्र अज्ञानी, विवेकरहित और स्वार्थी शासक एवं पिता का प्रतीक है । इस तरह के शासक की मनोवृत्ति महायुद्ध की सृष्टि करती है जो राज्य के सर्वनाश का कारण बन जाता है ।आधुनिकयुग की शासनव्यवस्था में इस तरह का अंधत्व हम देख सकते हैं । हिटलर एवं मुसोलिनी के व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं ने विश्वयुद्ध का सृजन किया । यहाँ गीतिनाट्यकार स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में शासन करनेवाले शासकों की ओर संकेत करते हैं । महाभारत युग अमर्यादा और अनैतिकता का युग था । द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का युग भी वैसा था । आज दुनिया को रक्तपात, कुरूपता, कुंठा, अमर्यादा, अन्धापन आदि घेरे हुए हैं । इसके संबन्ध में 'स्थापना' शीर्षक के अन्तर्गत कहा गया है

> "युद्धोपरान्त यह अन्धायुग" अवतरित हुआ ।
> जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं "[1]

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 2

पहले अंक की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए

"अन्धों से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन।"[1]

गीतिनाट्य के अन्त में इस सत्य को आधुनिक युग से जोड़ते हुए कहा गया है

"उस दिन जो अन्धायुग अवतरित हुआ जग पर
बीतता नहीं रह-रह कर दोहराता है
हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं
हर क्षण अँधियारा गहरा होता जाता है
हम सब के मन में गहरा उतर गया है युग।"[2]

स्वतंत्र भारत आज अराजकता, भ्रष्टाचार आदि का केन्द्र बन गया है । इनके चंगुल में फँसकर जनता विवश हो गयी है ।

पात्र संजय आधुनिक युग के बौद्धिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । वह अपने दायित्वों के प्रति निरपेक्ष है । वह सत्य को महत्व देता है । जहाँ असत्य है वहाँ पराभव होना स्वाभाविक है । आज की दुनिया में सत्य का कोई मूल्य नहीं रह गया है । युधिष्ठिर ने विजय की प्राप्ति केलिए असत्य को स्वीकार किया । वर्तमान जीवन में आधुनिक मानव अपनी महत्वाकाँक्षा की पूर्ति के लिए सत्य को छिपा देता है । यह असत्य कभी कभी महायुद्ध का कारण बन जाता है जिससे नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन भी होता है । युधिष्ठिर की तरह सत्य से पालित व्यक्ति को भी कभी कभी असत्य और अधर्म के मार्ग को स्वीकार करने की नौबत

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 3
2. वही पृ. 108

आती है और अन्त में पीड़ा प्राप्त होती है ।

इस गीतिनाट्य में चित्रित दो प्रहरी सामान्य जन की उदासीनता के प्रतिनिधि हैं । वे जीवन के अर्थहीन सूने गलियारे में थक चुके हैं । यहाँ शासक के अधीन निरर्थक सेवाकार्य करनेवाले प्रहरियों का संवाद अत्यन्त महत्वपूर्ण है

प्रहरी । "मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का,
साहस का,
श्रम का,
अस्तित्व का हमारे
कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था

प्रहरी 2 अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गलियारे में
पहरा दे देकर
अब थके हुए हैं हम
ऊब चुके हुए हैं हम ।"[1]

उनका संवाद आधुनिक प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर लगा हुआ कठोर प्रहार है । सेवकों का प्रमुख कर्तव्य केवल अन्धे शासकों की आज्ञाओं को वहन करना है । उनके जीवन में

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 5

आस्था का कोई महत्व नहीं । उन्हें अपने निर्णय का कोई स्थान नहीं । यहाँ शासक वर्ग और शासित वर्ग के बीच की दूरी चित्रित है । शासित वर्ग के अस्तित्व का कोई मूल्य नहीं रह गया है । वे अपने जीवन में निरर्थकता महसूस कर रहे हैं । जब व्यक्ति समाजोपयोगी कोई कार्य करता है तब उसका जीवन सार्थक बन जाता है । उसके जीवन से समाज को कोई प्रयोजन न मिले तो उसका जीवन निरर्थक बन जाता है । यह निरर्थकता अमानवीयता के कारण पैदा हुई है । शासकों के बदल जाने पर भी प्रहरियों की स्थिति में परिवर्तन नहीं आता । युधिष्ठिर की शासन व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए प्रहरियों का कथन है

प्रहरी 1 "हम जैसे पहले थे

प्रहरी 2 वैसे ही अब भी हैं ।

प्रहरी 1- शासक बदले

प्रहरी 2 स्थितियॉ बिल्कुल वैसी हैं

प्रहरी 1 इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे

प्रहरी 2 अन्धे थे

प्रहरी 1 लेकिन वे शासन तो करते थे...."[1]

आज की शासन व्यवस्था भी अंधी बन गयी है । शासक बदलने पर भी वर्तमान समाज के निम्नवर्ग की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है । इसका संकेत उपर्युक्त वार्तालाप में मिलता है ।

बर्बरता एवं प्रतिहिंसा का जीताजागता प्रतिरूप है अश्वत्थामा । महाभारतयुग के सबसे अन्यायी और पाशविक वृत्ति का प्रतीक था अश्वत्थामा । अश्वत्थामा के मन में धर्माधर्म का संघर्ष निहित है । युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य या असत्य ने अश्वत्थामा की आस्था को नष्ट कर दिया और उसे एक बर्बर पशु बना दिया । प्रतिहिंसा की आग में झुलसकर उसने पाण्डवपुत्रों की

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 87

हत्या की । उसकी पशविक वृत्ति का अन्त यहीं तक नहीं हुआ था । वह सबका संहार करने के लिए ब्रह्मास्त्र भी छोड़ देता है । अपने पिता की हत्या से उद्‌भूत अश्वत्थामा की प्रतिहिंसा की भावना उसे पागल बना देती है । मनुष्य से पशु बने अश्वत्थामा पहले संजय की हत्या करने का श्रम करता है और फिर वृद्ध याचक का गला दबाकर उसे मार डालता है । पहले अश्वत्थामा के मन में कोमलता थी । पर युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य के कारण उसका कोमलत्व नष्ट हुआ और इसके स्थान पर पशुता जाग उठी । अश्वत्थामा आधुनिक मानव का प्रतीक है । अपने अर्थरहित अस्तित्व से बचने के लिए वह आत्महत्या करने को उद्यत हो जाता है । आधुनिक मानव भी अपना अस्तित्व खो जाने पर जीवन से मुक्ति पाना चाहता है । परिस्थिति के कारण ही सदाचरण करने वाले अश्वत्थधामा असद् वृत्तियों को अपनाता है । हर एक व्यक्ति की ज़िन्दगी में परिस्थिति खास प्रभाव डालती है । इसका जीवन्त उदाहरण है अश्वत्थामा । अश्वत्थामा को आधुनिक युग के दलित अथवा शोषित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में भी मान सकते हैं । दलितों का जीवन हमेशा कुंठा, निराशा और पीड़ा से भरा है । अश्वत्थामा की प्रतिहिंसा समूचे मानवजाति के नाशका कारण बन जाती है । वह अपने व्यक्तिगतस्वार्थ के सम्मुख मानवजाति के प्रति अपने उत्तरदायित्व के बारे में ज़रा भी नहीं सोचता । कायरता और विवशता से उसके मन का सन्तुलन नष्ट हो जाता है । उसका कथन है

"मैं क्या करूँ
मुझको विवश किया अर्जुन ने
मैं था अकेला और अन्यायी कृष्ण पाण्डवों के सहित
मेरा वध करने को आतुर थे ।"[1]

अश्वत्थामा के मन का अन्तःसंघर्ष यहाँ अंकित है ।

पात्र विदुर और वृद्धयाचक के चरित्र में भी निजी महत्व है । विदुर के माध्यम से

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 76

रचनाकार ने समाज के कल्याण के लिए मर्यादित आचरण की महत्ता का प्रतिपादन किया है । आधुनिक युग में मानवजाति मर्यादा का उल्लंघन कर रही है । मर्यादाविहीन आचरण से समाज में अमंगल होने की संभावना है । पीड़ा और पराजय से व्यक्ति ज्ञानी बन जाता है । इसी तथ्य का उद्‌घाटन भी विदुर के माध्यम से रचनाकार करते हैं । पीड़ा और पराजय से मानव मन सुदृढ हो जायेगा । विदुर आगे कहता हैं

"भय है तो
ज्ञान है अधूरा अभी ।"[1]

यहाँ भयरहित जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है ।

"अन्धायुग' के पात्र वृद्ध याचक के माध्यम से भारतीजी ने मानवनिर्णय की महत्ता का प्रतिपादन किया है । याचक के माध्यम से वे इसे व्यक्त करते हैं

"नियति नहीं पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है।"[2]

मानव को अपने निर्णय लेने में पूर्णतः स्वतन्त्रता है । वृद्धयाचक के माध्यम से रचनाकार ने कर्म को प्रधानतादी है । केवल कर्म ही सत्य है । कर्म ही मानवधर्म है । कर्म ही मनुष्य के भाग्य का निर्णय करता है । इसलिए मनुष्य को कर्मपरायण बनना अत्यन्त आवश्यक है । फलेच्छा के बिना कर्म करने में ही मानव का महत्व है । वृद्धयाचक कहता है

"केवल कर्म सत्य है
मानव जो करता है, इसी समय
उसी में निहित है भविष्य
युग-युग तक का!"[3]

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 11
2. वही पृ. 16
3 वही पृ. 30

"वह मानव अस्तित्व की सार्थकता आचरण में मानता है, निष्क्रियता में नहीं"।1

इस गीतिनाट्य में संजय की तरह युयुत्सु भी न्याय और सत्य के पक्षधर हैं । युयत्सु को अत्यन्त कारुणिक पात्र के रूप में इस में चित्रित किया गया है । उसने अपने परिवार के विरुद्ध होकर पाण्डवों के न्याय का पक्ष लिया । लेकिन दोनों पक्षों से उसे अपमान ही मिला । अन्त में वह आत्महत्या कर लेता है । वह आज के उपेक्षित मानव का प्रतीक है । उसमें आधुनिक मानव की पीड़ा है । आज का पीड़ाग्रस्त मानव अन्त में आत्महत्या में शरण लेता है । आत्महत्या आज की ज्वलन्त समस्या है । वर्तमान युग में सत्य के पक्षधर का अंत कभी कभी ऐसा ही होता है । कृष्ण यहाँ आस्था की ज्योति का प्रतीक है । कृष्ण का व्यक्तित्व गाँधी एवं ईसा मसीह के व्यक्तित्व के समान है । कृष्ण ने सबका दायित्व अपने ऊपर ले लिया था ।

"अन्धायुग' की प्रमुख समस्या है युद्ध । युद्ध मानव के अन्दर और बाहर चलता है । दो विश्वयुद्धों के फलस्वरूप मानव में कुंठा, निराशा, अनास्था, अविश्वास आदि छा गए और मानव का मानवत्व भी नष्ट हो गया । व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर घटित युद्ध था महाभारत युद्ध । स्वार्थ भावना से प्रेरित होकर मनुष्य उचित-अनुचित भूल जाते हैं । उनके नीरक्षीर-विवेचन की शक्ति नष्ट हो जाती है । युद्ध में विजय की प्राप्ति के लिए धर्म और सत्य की बलि होती है । आधुनिक युग का भी अभिशाप है युद्ध । इस तथ्य का उद्‌घाटन गीतिनाट्यकार करते हैं । आज के युग के विज्ञान की प्रगति ने दुनिया को खतरे में डाला है । तरह तरह के आयुधों के निर्माण और उनके प्रयोग से निरीह जनों की हत्या होती है । निरायुधीकरण आज एक स्वप्न मात्र रह गया है । युद्ध हमेशा शासकों की इच्छा के अनुसार मानव हित के विरुद्ध होता है । भारतीजी 'अंधायुग' के प्रारंभ में अपना युद्ध विरोध प्रकट करते हैं

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 31

"यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है ।
यह अजब युद्ध है नहीं किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना ही खोना है ।"[1]

अश्वत्थामा और अर्जुन के बीच युद्ध होता है । अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र भेजता है । आणवयुद्ध से उत्पन्न विपत्तियों का संकेत इसमें प्राप्त होता है । दोनों के युद्ध को रोककर व्यास कहते हैं "ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का ?

यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नरपशु!
तो आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्ठग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी"[2]

आज भी हिरोषिमा और नागसाकी में गिरे हुए अणुबम के फलस्वरूप अनेक निरीह जन वहाँ विकलांग बनकर जीते हैं । विकलांग शिशुओं का जन्म होता है । आगमी आणवयुद्ध के भीषण परिणाम की सूचना व्यास के कथन में मौजूद है । शासक यानेता अपने अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर युद्ध का आदेश देते हैं । किन्तु इसका दुष्परिणाम निरीह जनता को भोगना पड़ता है । मानवता यहाँ नष्ट हो जाती है । आज के युद्धों का मूलकारण कुंठा एवं प्रतिशोध की भावना है । न्याय-अन्याय का यहाँ कोई महत्व नहीं है । आदर्शवान् लोगों का भी इस दुनिया में कोई महत्व नहीं । अनैतिक आचरण करनेवालों की विजय होती ही रहती है ।

महाभारत युग में कोई नैतिक मर्यादा नहीं थी, मूल्य नहीं था, लोभ, मोह और स्वार्थ वृत्ति ने सबको अन्धा बना दिया था । इस तरह की मनोवृत्तियाँ आज भी हम देख सकते हैं । कुछ

---

1 'अन्धायुग' धर्मवीर भारती पृ. 3
2. वही पृ 75

आलोचकों ने महाभारत युद्ध को देशविभाजन के परिप्रेक्ष्य में देखा और कुछ ने इसे द्वितीय विश्वयुद्ध के संदर्भ में । आज़ादी के पहले भारत देश में विद्यमान अहिंसा, सत्य, तपस्या, त्यागभावना, बलिदान आदि आज़ादी के बाद नष्ट हुए और इनके स्थान पर स्वार्थ, बेईमानी, छल, हत्या, झूठ आदि का प्रचार प्रसार होने लगा । इसतरह मानवीय मूल्यों का विघटन हुआ । इन सब के फलस्वरूप मानवजाति के मन में असन्तोष, निराशा, कुंठा आदि भावनाएँ उभरने लगीं । 'अंधायुग' में इन सबका परिचय रचनाकार देते हैं । इस कृति के माध्यम से रचनाकार भविष्य को पतनोन्मुख संस्कृति से बचाने का सन्देश देते हैं । साथ ही साथ आधुनिकयुग के अंधत्व की ओर भी इशारा करते हैं।

अशोकवन बन्दिनी

यह गीतिनाट्य सन् 1955 में लिखा गया है । इसकी कथा का आधार 'रामचरितमानस' है । उदात्त चरित्रवाली सीता का सफल चित्रण प्रस्तुत गीतिनाट्य में हुआ है । सीता हमारी भारतीय संस्कृति का प्रतीक है । गीतिनाट्यकार ने सीता के माध्यम से नारी के अन्तर्मन का परिचय दिया है । सीता राम की अर्द्धांगिनी थी । सुख-दुःख और हर्ष-विषाद में वह हमेशा राम की सहचारिणी थी । राम के जीवन में जो अप्रिय बातें घटित हुई हैं उन सबके मूल में सीता थी । सीता को अपने जीवन में अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं । राजमहल में पलने पर भी उसे अपवाद और अपमान का शिकार बनना पड़ा । स्वयं राम के मन में भी सीता के प्रति शंका उत्पन्न हुई । फिर भी नारी का नारीत्व सीता में स्पष्ट झलकता है । पारदर्शी मणि की तरह पवित्र और स्वच्छ हृदयवाली सीता के चरित्र को भारतीय संस्कृति में अमर और श्रेष्ठ स्थान मिला है । अशोकवन में बन्दिनी सीता के अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत गीतिनाट्य में स्पष्ट किया गया है । अन्तःसंघर्ष और बाह्य संघर्ष इसमें मौजूद हैं ।

अशोकवन की सीता निडर और वाक्पटु है । प्रियवियोग के कारण उसमें अत्यधिक

दुःख है । त्रिजटा उसे लंका के वैभव और महिमा का गुणगान गाकर शोक रहित होने का उपदेश देती है । सीता के प्रति त्रिजटा के मन में सहानुभूति जाग्रत होती है । अन्य राक्षसियाँ इसे राजाज्ञा का उल्लंघन मानती हैं; लेकिन त्रिजटा उनके कथन को नहीं मानती । वह दृढ़चित्त रहती है । राक्षसी होते हुए भी त्रिजटा के मन में नारी सहज प्रेम और सहानुभूति हैं ।

रावण सीता का निर्णय जानना चाहता है । सीता रावण के 'अहं' पर प्रहार करती है । 'अशोकवन बन्दिनी' में स्त्री का शक्तिस्वरूपिणी और साहसी रूप सीता के माध्यम से उभर आता है । सीता की वाक्पटुता और दृढ़ता के सम्मुख राक्षसियाँ सिर नवाती हैं । सीता उनको प्रेम का महत्व बताती है

"प्रेम देह का नहीं, प्राण का योग है
और चमकता है अधिकाधिक कष्टपा।"[1]

इसमें प्रेम को लौकिकता के धरातल से ऊपर उठाकर अलौकिकता प्रदान की गयी है । वियोगदशा में प्रेम अत्यधिक तीव्र, गहरा और चमकदार होता है ।

सीता अपनी वाक्पटुता और धैर्य से रावण को धुंधला करती है । रावण के अहं की भावना को चकनाचूर कर वह कहती है

"पीटता जो ढोल अपनी कीर्ति का,
और बल पुरुषार्थ का, मद गर्व का,
शून्य है वह, सत्य ही उससे रहित,
बोलता वह पात्र जिसमें अल्प जल।"[2]

रावण अधिकार प्रमत्त शासक का प्रतिनिधि है । अधिकार लोलुप मनुष्य बिना सोचे

---

1. 'अशोकबन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' उदयशंकर भट्ट पृ. 33
2. वही पृ. 13

अनुचित कार्य करता है । वह अपने को दुनिया के सर्वेसर्वा और नियामक मानता है । रावण का कथन इसके लिए उत्तम उदाहरण है

"हस्तामलक विश्व रावण को मुझे शोभित शासन;
मैं ने विनय नहीं सीखी है, सीखा करना शासन ।
जो आज्ञा देता है, करता इंगित से संचालन,
मेरी भ्रूभंगी पर रचनाकाल नाश और पालन ।"[1]

अधिकार लोलुप व्यक्ति सब पर अधिकार जमाना चाहता है । आधुनिक युग में रावण जैसे शासकों की कमी नहीं है ।

रावण के अमानवीय प्रवृत्ति पर सीता तीखा प्रहार करती है

"साँप बिच्छू भी मनुज के काल हैं,
और यह नर सिंह का भी भक्ष्य है,
श्रेष्ठतर है क्या इसी से हिंस्र पशु-
और हैं उत्कृष्टतर भी वे सभी ?"[2]

सीता रावण को हिंस्र पशु से हेय समझती है । सीता का उपर्युक्त कथन वर्तमान काल के अमानवीय आचरण करनेवाले, नृशंस और कामांध पुरुषों की ओर संकेत करता है । सीता से रावण का कथन उसकी कामांधता का द्योतक है-

"रूप और सौंदर्य जीवन के लिये,
और जीवन भोगने के हित बना,
भोग ही सौन्दर्य का मधु फल अमल,

---

1. 'अशोकबन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' उदयशंकर भट्ट पृ. 11-12
2. वही पृ. 14

इसी से जीवन सफल होता सुमुखि !
स्वर्ण में ही जटित मणि श्रृंगार है,
कांचन का और मणि का योग है।"[1]

रावण उपर्युक्त कथन से सीता को वश में लाने का प्रयत्न करता है । कामांध पुरुष हमेशा नारी जनोचित तरल हृदय को अपने वाक्जाल से फँसाना चाहता है । दुर्बल नारी हृदय उसके सम्मुख जल्दी ही झुक जाता है । लेकिन यहाँ सीता अबला और चपला नारी के रूप में अवतरित नहीं है, प्रत्युत सबला और साहसी नारी के रूप में अवतरित हुई है ।

जगत की भलाई विवेकी मानव के हाथ में हैं । हमें जीना है तो दूसरों के हित के लिए जीना है । ऐसे मानव का जीवन ही सफल है । इसी तथ्य का उद्घाटन गीतिनाट्यकार ने किया है । रावण से जानकी का कथन यहाँ ध्यान देने योग्य है

"शक्ति उनकी ही भली है, धन्य वे
जो विवेकी चाहते जग का भला।
किया करते जो अपर का हित लिए,
सफल जीवन है वही सत् जीव है ।"[2]

आज के अनेक मानव परार्थ को नहीं स्वार्थ को प्रधानता देते हैं । जब तक हम दूसरों की भलाई के लिए सर्वस्व समर्पित नहीं करते तब तक हमारा जीवन विफल है ।

कामांध बनकर, दर्प से उद्धत होकर, क्रुद्ध होकर रावण जानकी को मारने लगता है तब मंदोदरी रोकती है । मंदोदरी अबला नारी पर होने वाले अत्याचार के प्रति रोष प्रकट करती है । उसका कथन है

---

1 'अशोकवन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' उदयशंकर भट्ट पृ. 18
2. वही पृ. 21

"जिसके चरणों पर वसुधा हो विश्व की,
इन्द्र, चन्द्र, रवि, मरुत्, वरुण, यम भृत्य हों,
एक तुच्छ नारी के प्रति यह मोह क्या
कीर्ति कलंकित कर देनेवाला नहीं ?" [1]

मंदोदरी का उदात्त चरित्र यहाँ स्पष्ट झलकता है । वह सद् नारी का प्रतीक है जो सबकी भलाई मात्र चाहती है । अपने पति को अन्याय करने से वह रोकती है । अपने पति को सद्पथ की ओर ले जानेवाली ममतामयी और कर्तव्य निष्ठ नारी का प्रतिरूप है मंदोदरी । आधुनिकयुग में भी कई पुरुष कामांध-बनकर नारी की हत्या करने तक का अमानवीय आचरण कर रहे हैं । पुरुष की यह दुर्वृत्ति अक्षम्य है ।

सीता की पतिभक्ति असीम है । अपने पति की शक्ति पर उसे पूर्ण विश्वास है । सीता राम को अपना सर्वस्व समझती है । राम के बिना इस संसार को ही वह शून्य समझती है । सीता का पतिव्रताधर्म यहाँ दर्शनीय है

"आज मुझे लगता है सबकुछ तुच्छ है,
स्वर्ग और अपवर्ग राम के सामने ।
जैसे मेरे प्राण एक उनकेलिए
मेरे पूरक वे उनसे मैं पूर्ण हूँ ।"[2]

सीता के कथन के द्वारा पातिव्रत्य और प्रेम के महत्व को गीतिनाट्यकार स्पष्ट कर देते हैं । सीता के माध्यम से भट्टजी पति-पत्नी संबन्ध की महानता पर भी प्रकाश डालते हैं । सीता कहती है

---

1 'अशोकवन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' उदयशंकर भट्ट पृ. 25
2. वही- पृ. 33

"पति चरित्र की दृढ़ता पत्नी में निहित,
कमज़ोरी पत्नी की पति का अहित है।"[1]

"नारी को क्या तू साधारण मानती,
वह अजेय, अज्ञेय शक्ति की स्वामिनी,
भ्रूकटाक्ष से विह्वल जिसके निखिल जग,
और नाचते संकेतों पर सुर, असुर
रूप मोहिनी से जिसके पागल सकल,
वही चाहने पर क्या कर सकती नहीं? "[2]

सीता के प्रस्तुत कथन से स्पष्ट है कि नारी शक्ति स्वरूपिणी है ।

पुरुष के अहं को अपने प्यार से नष्टभ्रष्ट करनेवाली है नारी । पुरुष के दानवत्व को मानवत्व में बदलने की शक्ति स्त्री को है । अहं की भावना मानव को विनाश की ओर ले जाती है ।

प्रस्तुत गीतिनाट्य के प्रमुख पात्र सीता, रावण और मंदोदरी के माध्यम से पति-पत्नी संबन्ध, नारी की शक्ति आदि का विस्तृत प्रतिपादन किया गया है । नारी चेतना और नारी स्वतंत्रता पर आज पहले से ज़्यादा विचार किया जा रहा है । इस संदर्भ में नारी चरित्र के सूक्ष्म अंशों को उजागर करनेवाला यह गीतिनाट्य समकालीन संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक दिखाई देता है ।

---

1 'अशोकवन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' उदयशंकर भट्ट पृ. 39
2. वही पृ. 39

गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण

'गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण' सन् 1959 में रचित गीतिनाट्य है । पौराणिक कथा पर आधारित प्रस्तुत गीतिनाट्य गुरु द्रोण के जीवन से संबन्धित है । वे अपने पूर्वकृत दुष्कर्मों के बारे में सोचकर विचारमग्न हैं । अतीत में किए गए पाप उन्हें पश्चात्ताप विवश बना देते हैं । उनके दुष्कर्मों में स्वार्थ भावना थी, छल और अविवेक थे । "महाभारतकाल आत्मदंभ का काल था; सामाजिक संकीर्णताओं का समय था, द्रोणाचार्य भी उन्हीं संकीर्णताओं के शिकार हुए ।"[1] कवि ने गुरुद्रोण के अन्तर्मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । महाभारत युद्ध में कौरवों के सेनापति थे गुरु द्रोण । लेकिन वे अपने शरीर से कौरवों के साथ हैं तो मन से पाण्डवों की विजय चाहते हैं । दुर्योधन यह कौशल समझकर गुरु की भर्त्सना करते हैं । गुरुद्रोण को दुर्योधन के अनेक कटुवचनों को सहना पड़ा । दुर्योधन द्रोण को पक्षपाती कहते हैं । उनकी राय में ब्राह्मण हमेशा पक्षपात करते हैं । दुर्योधन के कटुवचन सुनकर द्रोण के मन में अन्दर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है । शिष्य द्वारा फटकारने की प्रवृत्ति और गुरु का पक्षपात आज के युग में भी प्रासंगिक है । अपने पाप के बारे में सोचकर वे स्वयं व्याकुल हो जाते हैं ।

'गुरुद्रोण का अन्तर्निरीक्षण' में द्रोणाचार्य के मन में उठनेवाले अन्तर्द्वन्द्व का यथार्थ चित्रण सुन्दर ढंग से किया गया है । दुर्योधन धर्माधर्म की अपेक्षा शक्ति को प्रधानता देते हैं । उनकी राय में शक्ति, बुद्धि और बल से राज्य को प्राप्त करना है । इसमें धर्म और अधर्म की बात नहीं है । द्रोण युद्ध को विनाशकारी मानते हैं । द्रोण के द्वारा लेखक युद्ध के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं । दुर्योधन हिंसा प्रिय है; अतः वे युद्ध चाहते हैं और युद्ध के शुभाशुभ परिणाम के बारे में नहीं सोचते । इस प्रकार यहाँ हिंसाऔर अहिंसा के बीच के संघर्ष की ओर संकेत करके गीतिनाट्यकार ने वर्तमान युग में भी मौजूद युद्ध की समस्या की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है ।

---

1 'अशोकवन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' 'गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण' उदयशंकर भट्ट पृ. ग

द्रोण ने अपने जीवन में अनेक अन्याय किए । गुरु के मन में अपने शिष्यों के प्रति पक्षपात होना पाप है । लेकिन द्रोण ने निषाद राजसुत एकलव्य को निम्नजाति में पले होने के कारण शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया । लेकिन एकलव्य ने गुरुभक्ति से, निष्ठा और एकाग्रता से द्रोण की मूर्ति को सामने रखकर धनुर्विद्या सीखी । पक्षपाती गुरु के प्रति भी असीम भक्ति रखनेवाले अनेक शिष्य हैं । गुरुद्रोण ने एकलव्य से गुरुदक्षिणा के रूप में अंगूठा माँगकर अमानवीय आचरण किया । गुरु द्रोण की तरह अमानवीय आचरण करनेवाले गुरु और एकलव्य जैसे गुरु के प्रति निष्ठा रखनेवाले शिष्य हमारे समाज में आज भी हैं । गुरु द्रोण के माध्यम से वर्तमान युग में मौजूद दलित और पीड़ित निम्नवर्ग के प्रति प्रकटकरनेवाले अन्याय का परिचय मिलता है । एकलव्य के प्रति दुराचरण करने से गुरुद्रोण घृणित और पतित बन गए हैं । वे अपने कर्म को पाप नहीं मानते; प्रत्युत वे कहते हैं कि इसतरह का भेदभाव उस समाज की देन थी । उससमय आर्यों की सत्ता ही विशिष्ट थी । गुरु द्रोण के मन में उत्पन्न यही ऊँच नीच भेदभाव किसी भी गुरु के मन में नहीं होना चाहिए । गुरु ने अर्जुन को धनुर्विद्या सिखायी थी; और अश्वत्थामा को विशेष ज्ञान दिया था ।

अपने अन्याय के बारे में सोचकर वे अतीव दुःखी हैं । वे अपने जीवन को व्यर्थ समझते हैं । क्योंकि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने पर भी ब्राह्मणत्व का पालन वे न कर सके । आत्मग्लानि के कारण वे गंगा तट पर खड़े होकर मृत्यु का आवाहन कर आत्म बलिदान करने का निश्चय करते हैं । द्रोण के मन का अन्तर्द्वन्द्व निम्न लिखित पंक्तियों में स्पष्ट रूप से झलकता है

"आता है याद आज शूल मर्म मूल तक
छद जाता मेरा मन, घृणा होती मुझको ।
कितना पतित बना, कितना मैं हेय बना,

स्वार्थ पुञ्ज बन गया मैं, हाय क्यों उस काल
क्षुद्र वह रूप मेरा याद आता है जब-
अपने को मानता हूं सचमुच ही हीनतर ।"[1]

गुरु द्रोण अपने को पापी और हीन समझते हैं । पश्चात्ताप मनुष्य को हमेशा गुणवान बनाता है । छाया का कथन है

"किन्तु आत्मचिन्तन से होता अघ दूर है ।"[2]

पश्चाताप ही सर्वश्रेष्ठ है । वह मानव के अघ को दूर करता है । प्रस्तुत गीतिनाट्य में गुरु द्रोण के माध्यम से पश्चाताप की महिमा का प्रदर्शन भी किया गया है । मानव प्रारंभ में उचितानुचित विचार को छोड़कर कई अन्याय करता है । फिर उनके बारे में सोचकर वह अत्यन्त व्याकुल हो जाता हैं । आत्मचिंतन से मन पवित्र हो जाता है और अघ दूर हो जाता है ।

फिर छाया कहती है-

"भूल गए दर्प मनमोद में निजस्वरूप
बहुत कुकर्म हुए, बहुत अधर्म हुए- इस महाभारत में यद्यपि सभी वे
केवल महान् दो पातक अनश्वर हैं,
जिसमें तुम्हारा हाथ अविवेक में सना ।"[3]

छाया के प्रत्युत्तर के रूप में पश्चाताप विवश होकर वे कहते हैं

"मनुष्यत्व खो दिया, खो दिया विवेक भी ।"[4]

---

1 'अशोकबन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' 'गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण' उदयशंकर भट्ट पृ. 93
2. वही पृ. 94
3. वही पृ. 102
4. वही पृ. 103

जिस व्यक्ति का विवेक खो जाता है उस व्यक्ति का ह्रास सुनिश्चित है । गुरु द्रोण ने आचार्य होने पर भी अनाचार ग्रहण किया । योग्य और अयोग्य को पहचानने का विवेक उन्हें नहीं हुआ । निष्ठा के भ्रम में उन्होंने अधर्म किया । द्रोणाचार्य जैसे विवेकहीन, अन्यायपूर्ण और अमानवीय आचरण करनेवाले गुरुओं की संख्या में आज भी कमी नहीं हुई है ।

अश्वत्थामा

उदयशंकर भट्टजी के सभी गीतिनाट्यों का आधार मनोविज्ञान है । गीतिनाट्य विधा की लोकप्रियता को बढाने का मुख्य श्रेय भट्टजी को देना है । अन्तर्द्वन्द्व की स्पष्ट झलक "अश्वत्थामा' में विद्यमान है । अश्वत्थामा अपने पिता के वध का मूलकारण पाण्डवों को मानता है । प्रतिहिंसा की आग में झुलसकर वह पाण्डवों का वध करना चाहता है । कृतवर्मा सिर्फ दुर्योधन को युद्ध का मूल हेतु समझता है । अश्वत्थामा का कथन है

"कहाँ धर्म, कैसा धर्म,
किसने बनाया उसे"[1]

कृतवर्मा की राय में हम सब निमित्त हैं । धर्म स्वयं ही सब फल देता है । अश्वत्थामा इसका खण्डन करते हुए बताता है

"भाग्य का स्वनिर्माण पौरुष ही करता है,
भाग्य है मनुष्यकृत, जीवन भी मनुष्यकृत"[2]

यहाँ कृतवर्मा भाग्य का पक्षधर हैं तो अश्वत्थामा भाग्य को मनुष्यकृत समझता है । वह भाग्य के भरोसे जीना नहीं चाहता । अपने बाहुबल से सब कुछ प्राप्त कर अपनी नियति को बदलना चाहता है । वह पाण्डवों के कर्म में धर्म और न्याय नहीं मानता है ।

---

1 'अशोकवन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य' 'अश्वत्थामा' उदयशंकर भट्ट पृ. 114
2. वही पृ. 115

कृपाचार्य के द्वारा गीतिनाट्यकार ने हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठायी है । कृपाचार्य के निम्नलिखित कथन से यह स्पष्ट होता है

"हम तो फिर ब्राह्मण हैं कर्म यह हमारा नहीं,
हारा नहीं ब्राह्मण है कभी भी निज धर्म से"[1]

"यह है अनार्य कर्म राक्षसों का कार्य सुत-"[2]

अश्वत्थामा राक्षसत्व और देवत्व को कोरी कल्पना मानता है । वह कहता है कि अनर्थ को देखकर शांति की उपासना करना व्यर्थ है । अश्वत्थामा शत्रु का विनाश देखना चाहता है । कृपाचार्य इस क्रूर कर्म को अधर्म, अनार्य और जधन्य कहते हैं। कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनों अश्वात्थामा से अपने निर्णय से दूर रहने की प्रार्थना करते हैं । लेकिन अश्वत्थामा अपने निर्णय पर अटल रहता है । यहाँ कृपाचार्य और कृतवर्मा अहिंसा और धर्म के प्रतीक हैं तो अश्वत्थामा हिंसा और अधर्म का प्रतीक है । प्रतिहिंसा का भाव मानव के मन में विषबीज बो देता है । इससे प्रेरित होकर मानव उचितानुचित और धर्माधर्म के बारे में बिल्कुल भूल जाते हैं । आश्वत्थामा आज के अन्ध मानव का प्रतिरूप है । प्रतिहिंसा की भावना से मानव ज्ञानांध बन जाता है । वह सृष्टि नहीं संहार चाहता है । मोहवश कृपाचार्य और कृतवर्मा अश्वत्थामा का साथ देते हैं । अश्वत्थामा नींद में पड़े निरीह पांचालों की हत्या करके अपनी प्रतिहिंसा राक्षसी का पेट भर देता है ।

अर्जुन और अश्वत्थामा के बीच संघर्ष होता है । अश्वत्थामा ब्रह्मशिरा अस्त्र और अर्जुन प्रलयमाल अस्त्र का प्रयोग करते हैं । व्यास मुनि आकर दोनों दुर्निवार अस्त्रों को रोकने का उपदेश देते हैं । अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा की ज्ञानमणि छीन ली जाती है । यहाँ अधर्म पर धर्म की विजय होती है । वर्तमान युग में भी प्रतिहिंसा की पूर्ति के लिए और अपनी स्वार्थ लिप्सा

---

1 'अशोकबन बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाट्य'- 'अश्वत्थामा' उदयशंकर भट्ट पृ. 119-120
2. वही

के लिए बड़े बड़े राष्ट्रों के बीच संघर्ष हो रहा है । वे विज्ञान की प्रगति का दुरुपयोग कर रहे हैं । प्राचीन काल के ब्रह्मशिरा अस्त्र और प्रलयमाल अस्त्र के बदले आज अणुबम और आणवास्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं ।

मस्तिष्कमणि के नष्ट हो जाने पर आश्वत्थामा इधर उधर भटकता है । उसे अपना ज्ञान नष्ट हो जाता है । ज्ञान न होने पर भी अश्वत्थामा की प्रतिहिंसा की आग नहीं बुझती थी । उसने अपने मन में जागी हुई प्रतिहिंसा की भावना को दूर भगाने की कोशिश की । अन्त में अपने दुष्कृव्य का परिणाम देखकर वह विक्षिप्त बन जाता है ।

पराजय मनुष्य को दुःखी बनाती है और पराजय से मनुष्य क्रुद्ध और निर्दय बन जाता है । आश्वत्थामा के माध्यम से गीतिनाट्यकार ने मानव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । प्रतिहिंसा की भावना जब मनुष्य में जाग्रत होती है तब उसका सर्वनाश संभव है। अश्वत्थामा इसकेलिए अप्रतिम उदाहरण है । इस पात्र के माध्यम से प्रतिहिंसा की भावना को रोकने का उपदेश गीतिनाट्यकार देते हैं । इस दुष्भावना से प्रेरित होकर मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है । क्रोध, पराजय और प्रतिहिंसा के भाव मानव को पागल बना देते हैं । पागल व्यक्ति की स्मृति नष्ट हो जाती है । स्मृति विभ्रम से उसका बुद्धि नाश होता है; बुद्धि नाश से उस का सर्वनाश होता है । गीताकार ने इसके संबन्ध में लिखा है । अश्वत्थामा आज के अन्ध युग का प्रतिरूप है । आज के कई मानव ज्ञानांध हैं । उन्हें विवेक नहीं है । ऐसे ज्ञानांध और विवेकहीन मानव दुनिया के सर्वनाश का कारण बन जाते हैं। प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर मानव को भी अश्वत्थामा की तरह न्याय और मर्यादाओं का उल्लंघन करना पड़ता है ।

हिमालय का संदेश

श्री. रामधारी सिंह दिनकर द्वारा सन् 1954 में विरचित गीतिनाट्य है हिमालय का सन्देश' । यह 'नीलकुसुम' काव्य संग्रह में हैं । इस गीतिनाट्य का मुख्य पात्र हिमालय है । नाटक के अन्य पात्र हैं कवि, जनता और युद्धदेवता । कवि विज्ञान के दुष्परिणाम और ज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव से डूबे हुए संसार की शोचनीय स्थिति देखकर चिन्ताग्रस्त हैं । वे इस प्रकार कहते हैं

"बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान
चेतना तब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान?"[1]

सब कहीं तर्क से तर्कों का रण, विचारों से विचारों की लडाई चल रही है । इन सबके कारण परिणाम उलटा होता है । बुद्धि का ज़ोर जितना बढ़ता है उतना आदमी का मन कठोर बन जाता है । कवि के कथन से यह स्पष्ट होता है

"और सबका उलटा परिणाम, बुद्धि का जितना बढ़ता ज़ोर,
आदमी के भीतर की शिरा हुई जाती कुछ और कठोर"। [2]

विज्ञान की प्रगति के साथ साथ संसार का नाश भी संभव है । विज्ञान वरदान मात्र नहीं, अभिशाप भी है । मृत्यु का सेवक है विज्ञान; तृष्णा की दासी हैं बुद्धि । बुद्धि के विकास के साथ साथ मनुष्य के मन का कोमलत्व नष्ट हो जाता है । हृदय संकुचित हो जाता है । समकालीन संदर्भ में यह बिलकुल सही सिद्ध होता है ।

जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले सात व्यक्तियों के स्वर वहाँ गूँज उठते हैं । जनता यहां अपने तरह तरह की मनोवृत्तियाँ प्रकट करती है । कुछ लोग हिंसा को अपनाना चाहते हैं तो कुछ अहिंसा या शांति चाहते हैं । तीसरा वर्ग हिंसा और प्रतिहिंसा की भावना का विरोध करता है । उसका कथन है

---

1 नीलकुसुम 'हिमालय का संदेश' रामधारीसिंह दिनकर पृ. 92
2. वही

"करके दलन नर में जगाओ बन्धु प्रतिहिंसा नहीं
हिंसा नहीं, हिंसा नहीं।"[1]

चौथा हिंसा को अनिवार्य मानकर अहिंसा के उपदेश को नकारता है । उनके अनुसार जहाँ विनय या क्षमा श्री हत हो जाती है वहाँ हिंसा आवश्यक बन जाती है । मानव में विद्यमान पशुत्व के कारण ही वे हिंसा को स्वीकार करते हैं । हिंसा पशुता का द्योतक है । मानव के मन में हिंसात्मक वृत्ति आग के समान छिपी हुई है । उसे उत्तेजित करने से संसार का सर्वनाश संभव है । आधुनिक मानव में हिंसात्मक वृत्ति या पाशविक वृत्ति चरम कोटि पर है । हिंसा नर की मलिन वृत्ति है ।

"हिंसा है तब तक जब तक नर में पशुत्व
व्यर्थ है यह पावन उपदेश।"[2]

पाँचवाँ वर्ग जो दर्शनशास्त्र और ललित कलाओं को व्यर्थ समझता है, उसकी राय है

"सच तो, रोटियाँ नहीं तो क्या ये कविता खाएँगे ?
थाली में धरकर विराट कवियों के गीत चबाएँगे ?"[3]

छठा वर्ग केवल रोटियों से सन्तुष्ट नहीं होता । उसके मत में मनुष्य का एक मात्र लक्ष्य क्षुधा निवारण मात्र नहीं ।

सातवाँ वर्ग जीवन से संबन्धित एक नया सिद्धान्त रखता है ।

दुनिया का सबसे बड़ा दुःख है भूख । इस संसार में सबकी भूख मिटाने के साधन उपलब्ध नहीं हैं । यह आधुनिक भावबोध निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है

---

1 नीलकुसुम 'हिमालय का संदेश' रामधारीसिंह दिनकर पृ. 94
2. वही पृ. 94
3. वही पृ. 95

"कहीं दूध के बिना तरसती मानव की संतान,
कहीं क्षीर के मटके खाली करते जाते श्वान ।
कहीं वसन रेशम के सस्ते, महँगी, कहीं लँगोटी,
कोई घी से नहा रहा, मिलती न किसी को रोटी ।
इस समाज की एक दवा है आग और उत्क्रान्ति ।"[1]

संसार में अधिकांश लोग भूख से पीड़ित हैं । वे सिर्फ अपनी उदर पूर्ति और पहनने के लिए वसन चाहते हैं । हिंसा-प्रतिहिंसा का यह खटराग वे नहीं जानते । समसामयिक युग में भी सबसे बड़ा दुःख है भूख । भूख से पीड़ित लोगों की भूख मिटाना ही सब से बड़ा मानव धर्म है । आज के मानव अपने सर्वश्रेष्ठ मानवधर्म को भूलकर अमानवीय बन गए हैं । दरिद्र राष्ट्र की पुकार संपन्न राज्य सुन नहीं पाता । वे अपनी स्वार्थलिप्सा से प्रेरित होकर अणुबम और आणवास्त्रों के निर्माण में व्यस्त हैं । रोटी और अभय के लिए भूखे जनों द्वारा की गयी पुकार वे सुन नहीं पाते ।

"तन-मन दोनों बढें अगर तो चमक उठे, सचमुच संसार।"[2]

युद्धदेवता संग्राम करने के लिए तैयार होकर प्रवेश करता है । वह अपने जीवन के लक्ष्य के सबंध में कहता है

"नर के मन को विद्वेष, घृणा, तृष्णा से भरने आया हूँ ।"[3]

विश्व में अशान्ति के कारणों पर युद्धदेवता जो विचार रखता है वह आधुनिक युग के लिए ज़्यादा अनुकूल है । जब अपने धर्म, जाति और राष्ट्र को सर्वेसर्वा समझकर, बाकी राष्ट्रों को अपने से तुच्छ मानकर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से युद्ध करने केलिए उद्यत होता है तब विश्व अशान्ति का केन्द्र बन जाता है । युद्धदेवता का कथन है कि जब तक राष्ट्रीयता की महत्ता

---

1. नीलकुसुम 'हिमालय का संदेश' रामधारीसिंह दिनकर पृ. 93
2. वही पृ. 97
3. वही पृ. 98

मानवता से ऊपर मानी जाएगी तब तक विश्वमानव को कहीं स्थान नहीं मिल सकेगा । वह कहता है

'मैं राष्ट्रवाद का सखा, कौन तोड़ेगा मेरा सम्मोहन?"[1]

युद्ध देवता के अट्टहास से पृथ्वी कराहने लगती है । पृथ्वीमाता के क्रन्दन से कविमन विचलित हो उठता है । कवि का विश्वास है कि भारत देश ही संसार की अशांति को मिटा सकेगा । कवि योगेश्वर हिमालय से प्रार्थना करता है । हिमालय इसमें आदर्श पात्र बनकर विश्व की अशान्ति के कारणों का विश्लेषण करते हुए कहता है

"आज जो लगी हुई है आग, ज्ञान के घर से आई है,
जगत की आँखों पर रोशनी, अंधता बनकर छाई है।"[2]

हिमालय कहता है कि युद्ध के विविध कारणों का मूल वैज्ञानिक अनुसंधान की अभिवृद्धि के साथ साथ मन की कोमलता का विनाश है । हिमालय की दृष्टि में भारत वहाँ विद्यमान है "जहाँ त्याग माधुर्यपूर्ण हो, भोग निष्काम हो और कामना समरस हो"।[3]

हिमालय का अंतिम संदेश यह है कि धर्म को और श्रद्धा को अपनाना चाहिए । इसमें हिमालय विश्व को शान्तिस्थापना का संदेश देता है ।

आज के मानव धर्म, श्रद्धा और त्याग भावना से विलग होकर स्वार्थ के दायरे में जीवन बितानेवाले हैं । वे व्यक्तिस्वातंत्र्य का दुरुपयोग कर रहे हैं । जिस संसार में व्यक्ति स्वातंत्र्य अधिक है वहाँ नाश का होना भी स्वाभाविक है । बिना अनुशासन के आधुनिक युग में व्यक्ति की उन्नति असंभव है । इससे मानव का विनाश सुनिश्चित है । समसामयिकता का प्रभाव इस गीतिनाट्य में स्पष्ट झलकता है । वर्तमान युग में भी मानव युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त हैं । युद्ध

---

1 नीलकुसुम 'हिमालय का संदेश' रामधारीसिंह दिनकर पृ. 99
2. वही पृ. 101
3. वही पृ. 105

और शांति की समस्या आज की बहुचर्चित समस्या है । पृथ्वी पर पड़े विज्ञान के नये आलोक से अंधकार फैल जाता है और संसार का शान्तिभंग हो जाता है । आधुनिक युग में भी विज्ञान की प्रगति संसार के नाश का कारण बन जाती है । हाल ही में घटित बातें भी इसकेलिए उदाहरण हैं । लेबनन देश पर इस्रायेल का अणुबम आक्रमण विज्ञान की प्रगति के दुरुपयोग से घटित हुआ है । विज्ञान की प्रगति से आधुनिक मानव अमानवीय आचरण कर रहा है ।

सूखा सरोवर

'सूखासरोवर' सन् 1960 में लिखित गीतिनाट्य है । इसके रचनाकार श्री. लक्ष्मीनारायण लाल हैं । प्रस्तुत गीतिनाट्य काल्पनिक लोककथा पर आधारित है । इस प्रतीकात्मक गीतिनाट्य में आज के जीवन रूपी सरोवर के सूख जाने की प्रतीकात्मक व्यंजना की गई है ।

राजा और रानी सरोवर में जलविहार करते समय अचानक ही सरोवर सूख जाता है । राज्य में कोलाहल मच उठा । राजा के साथ सारी प्रजा भी सरोवर की शरण में विलाप करने लगी । सरोवर का देवता प्रत्यक्ष हुआ और उन्होंने कहा कि जब सतवन्ती नारी मेरे सरोवर में मंगलघट डालेगी, तब मैं फिर पानी दूँगा । रानी ने मंगलघट डाला; लेकिन जल नहीं निकला । रानी की चेरी ने घट डाला और जल भर गया । राजा ने रानी को मार ड़ाला और चेरी से शादी की । "सूखासरोवर' की कथा इससे प्रेरित होकर भी इससे भिन्न है । छोटा राजा अपने अग्रज बड़े राजा से राजसिंहासन छीनना चाहता है । दोनों के बीच संघर्ष होता है । बड़ा भाई विजयी होने पर भी सिंहासन छोड़कर सन्यासी बन जाता है । महत्वाकांक्षी छोटा भाई राजा बन जाता है । बड़ा राजा अपने को खासमहत्व न देकर सारा महत्व प्रजा को देता है । छोटे राजा में अधिकार लोलुपता है तो बड़े राजा में सात्विकता का अंश है । छोटे राजा का कथन है

"जो कायर है
यह सिंहासन उसका नहीं है
जो धर्म समझाता है
उसका भी नहीं है
केवल उसका है
जिसमें निजत्व है
अधिकृत है जो
परंपरा से
पिता से, पितामह से।"[1]

छोटा राजा अपनी स्वार्थवृत्ति से प्रेरित होकर मैनापुरी राजा से अपनी बेटी की शादी कराना चाहता है । लेकिन राजकुमारी अपने प्रेमी पुरुष के साथशादी न होने पर सरोवर में कूदकर आत्महत्या कर लेती है । इसके फलस्वरूप सरोवर सूख जाता है । राजकुमारी का प्रेमी पुरुष जब अपने प्राणों की आहुति करता है तब सरोवर जल से भर जाता है । यहाँ छोटा राजा अधिकार लिप्सु और स्वार्थी शासक का रूप ग्रहण करता है तो प्रेमी पुरुष सद्वृत्तियों का प्रतीक है जो असली जनप्रतिनिधि है । हमारे समाज में धर्म और राजनीति में शक्तिशाली सत्ताधारी वर्ग है जो अहं की भावना में आकंठ मग्न हैं और पूर्णतः स्वार्थी हैं । इसतरह के सत्ताधारी स्वार्थी जनों से सद्वृत्तियाँ दूर हो जाती हैं । वे, सद्वृत्तियों वाले अच्छे जनों को बंदी बना लेते हैं । जंब शासक लोग सत्य का तिरस्कार करते हैं तब जीवन रूपी सरोवर सूख जाता है । आज का जीवन नीरस और सूखा होने के कारण इसमें प्रेम का अभाव है । प्रेम के बदले घृणा, कलह, अधिकार लिप्सा आदि का प्रभाव ही प्रबल है ।

इस गीतिनाट्य में सत्ता को लेकर प्रजा के बीच संघर्ष होता है । जब मानव मर्यादा का

---

1 'सूखा सरोवर' लक्ष्मीनारायण लाल पृ. 49-50

उल्लंघन करना है तब सरोवर सूख जाता है । जब व्यक्ति अपने स्वार्थवृत्ति को छोड़कर आत्मबलिदान करता है तब सरोवर जल से भर जाता है । डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने लिखा है

"अन्धायुग की भाँति ही 'सूखा सरोवर' में भी युद्ध, प्रतिहिंसा, आत्महत्या, मर्यादाहीनता और विघटन आदि की समस्याओं को कथानक में गुम्फित किया गया है ।"[1]

इस गीतिनाट्य का पात्र वृद्ध वर्तमान समाज के साधारण जन का प्रतीक है । वृद्ध राजा को बड़े नहीं मानते । समाज में हर एक व्यक्ति को वे समान स्थान देते हैं । वे कहते हैं

"राजा भी हमारी तरह व्यक्ति है
हम समाज हैं एक से एक मिलकर
इसलिए हर व्यक्ति राजा है।"[2]

सत्य कहने के कारण यौवन से लेकर वृद्धावस्था तक राजा ने वृद्ध को बंदी बना दिया । समसामयिक युग में सत्य का कोई मूल्य नहीं रह गया है ।

सत्ता और वैभव की लालच में अपने सगे भाइयों की हत्या करने वाले लोग दुनिया में बहुत हैं । छोटा राजा एक ऐसा स्वार्थी पुरुष है जो अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए आदर्श भाई की हत्या करने में ज़रा भी नहीं हिचकता ।

'सूखा सरोवर' गीतिनाट्य का पुरोहित ढोंगी, कपटी और छली धर्माचार्य का प्रतिनिधित्व ग्रहण करता है । वह पेड के पीछे छिपकर जनता को भ्रम में डालने का प्रयत्न करता है । वह बताता है

---

1. डॉ. हरिश्चन्द्र "नयी कविता के नाट्य काव्य' पृ. 220
2. 'सूखा सरोवर' लक्ष्मीनारायण लाल पृ. 14

"मैं धर्मराज हूँ इस नगरी का
तुम सब धीरे धीरे धर्मच्युत हो गये,
राजा से तर्क करने लगे तुम
ईश्वरपर शंका करने लगे तुम"[1]

पुरोहित कहता है कि दान पुण्य, लोकाचार, धर्माचार आदि सबको लोग भूल गये । सबको अंधज्ञान और आडम्बर कहकर स्वयं लोग ज्ञानी बन गये । इसके फलस्वरूप धर्म ने सरोवर को सोख लिया ।

प्यार का जल भरा एक सरोवर है हमारा हृदय । जब मानव के मन से 'सत्' चला जाता है तब हृदय-सरोवर सूख जाता है । इस गीतिनाट्य का असली राजा सन्यासी है जो छोटे राजा की करतूतों को असह्य मानकर सन्यासी बन जाता है । यह पात्र निडर और जनता के हित को महत्व देनेवाला है । इसतरह के लोकमंगल की भावना रखनेवाले हितैषी लोग आधुनिक युग में बहुत कम हैं ।

डॉ. ओझा का कथन है-

"इस नाटक में सरोवर जीवन है, और सरोवर का जल जीवन के स्वास्थ्य का प्रतीक है । आधुनिक प्रणयादि की निस्सारता का प्रतीक है, राजकुमारी की आत्महत्या, जिसके कारण जीवन की वास्तविक रसमयता समाप्त हो जाती है ।"[2]

सरोवर मानवजीवन का प्रतीक है; सरोवर के सूख जाने का मतलब है मानव मन में विद्यमान सद्वृत्तियाँ, प्रेम, करुणा आदि सात्विक भावों का खो जाना । आज के युग का मानव स्वार्थवृत्ति में पगा हुआ है । समाज में, राजनीति और धर्म में भी यह स्वार्थ वृत्ति व्याप्त है । इस गीतिनाट्य का प्रतिपाद्य विषय समसामयिक युग के लिए ज़्यादा प्रासंगिक है । प्रस्तुत गीतिनाट्य में आज के जीवन में व्याप्त कुंठा, निराशा, नैतिकपतन, मूल्यच्युति आदि का वर्णन है ।

---

1 'सूखा सरोवर' लक्ष्मीनारायण लाल पृ. 20
2. डॉ. दशरथ ओझा 'हिन्दी नाटक उद्भव और विकास' तृ. सं., पृ. 4 33

नहुषनिपात

'नहुष निपात' उदयशंकर भट्टजी द्वारा सन् 1961 में रचित अन्तिम गीतिनाट्य है । उदयशंकर भट्टजी सृजनात्मक चातुर्य की दृष्टि से अत्यन्त सफल नाटककार हैं । 'नहुष निपात' उनका यथार्थवादी शैली में लिखा गया गीतिनाट्य है । इसका आधार पौराणिक कथा है । 'नहुष निपात' का पौराणिक पात्र नहुष कामांध नर का प्रतीक है । कामांध नर अपने कर्तव्य से विचलित होकर उचितानुचित का ज्ञान तक खो देता है । इसका सजीव चित्रण पात्र नहुष के माध्यम से उदयशंकर भट्टजी ने किया है । "आज के जीवन में नहुष की चेतना, उसका कार्यकलाप, उसका प्रच्छन्न लक्ष्य जैसे मनुष्य का अवान्तर रूप बन गया है जिसे वह अपने अन्तरतम अवचेतना में सहज आबद्ध पाता है ।"[1] अहंकार ग्रस्त नहुष का अन्तर्द्वन्द्व यहाँ दर्शनीय है ।

अहंकार ग्रस्त नहुष को कठिन तपस्या के फलस्वरूप इन्द्र पद प्राप्त होता है । नहुष इन्द्रपुरी अमरावती में पहूँचता है । अमरावती के वैभव, सुख सुविधाएँ और शान्तिपूर्ण वातावरण देखकर वह आश्चर्यचकित हो जाता है । स्वर्गलोक में कहीं भी नहुष को दुःख दिखाई नहीं पड़ता । सब पूर्णतः तृप्त हैं । इन्द्रलोक में पहूँचकर उसके अहं की भावना चरमकोटि पर पहुँचती है । विश्वामित्र की भाँति वह कहता है

"चाहूँ तो मैं स्वर्ग करूँ नरक लोक को,
और स्वर्ग को नरक बना दूँ "[2]

नहुष देवताओं पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करता है । वह उनको अपने अधीन मानता है । देवलोक के देवों को अपने इशारे पर नचाना चाहता है । स्वर्गलोक में सब अपने अपने कार्य में स्वामी हैं । उन्हें सारे कार्य में एकेच्छा है । सृष्टिक्रम में यहाँ कोई भेद नहीं है । ऐसे

---

1 'नहुष निपात' आमुख (भूमिका) उदयशंकर भट्ट
2. 'नहुष निपात' उदयशंकर भट्ट पृ. 12

देवताओं को नहुष अपने आज्ञानुसार चलाना चाहता है और ब्रह्म बनने का स्वप्न भी देखता है । देवताओं से वह कहता है

"एक बात मैं और लूँगा आप से
मेरी आज्ञा बिना न कोई कार्य हो ।
नहुष सभी तो विधिविधान है जानता
कोई उससे गोप्य नहीं है चर अचर ।"[1]

सब पर अधिकार जमाने की अहंकार ग्रस्त मानव की कामना नहुष के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है । अधिकार की प्राप्ति होने पर अधिकार लोलुप मनुष्य सबकुछ भूल जाता है । उचितानुचित का विचार छोडकर वह अपने कर्तव्य से च्युत होकर चर अचर सबको अपने अधीन मानता है । अधिकार प्रमत्त मनुष्य किसी वस्तु को अपने लिए अप्राप्य नहीं समझता ।

बृहस्पति से संवाद करते समय नहुष का अहंकार चरम कोटि पर पहूँचता है । गर्व से प्रेरित होकर सांसारिक नियम को भूलकर वह स्वयं विश्वविधाता मानता है । वह स्वयं विश्वास करता है कि सारी दुनिया को अपने इंगित पर नचाने की क्षमता उस में है । नहुष का कथन इसका प्रमाण है

"ब्रह्म बनने की मुझमें कामना
उदित हुई है ब्रह्म बनूँगा मैं स्वयम्
सब प्रपंच मेरे अनुशासन में रहे,
मुझमें सृष्टि स्थिति की क्षमता जागती ।
तब-जग मेरे नाचेगा संकेत पर।"[2]

नहुष मानव को देवों से श्रेष्ठ मानता है । बृहस्पति से वह अपनी शक्ति के बारे में कहकर वाद विवाद करता है । बृहस्पति नहुष से गर्व को त्यागने का उपदेश देते हैं ।

---

1. 'नहुष निपात' उदयशंकर भट्ट पृ. 8
2. वही पृ. 14

गर्व से पीड़ित नहुष शची के सौन्दर्य से कामांध बन जाता है । इन्द्राणी के नर्तन देखने से और गायन सुनने से मन्त्र मुग्ध नहुष उसे अपनाने केलिए विवश हो जाता है । उर्वशी से नहुष का कथन उसकी कामांधता का उदाहरण है ।

"तो निश्चय अब तक का जीवन छोड़कर
वही करूँगा जैसा तुम कहती सखी,
करो उपस्थित गंधलेप, अनुलेप सब
चंदन, पट-कौशेय, कल्पतरु के सुमन
माला धारण करूँ और भूषण सभी
पहनूँगा मैं प्रेयसी के हित सभी कुछ ?"[1]

काम की चरम कोटि में नहुष सारी वस्तुओं में शची की छवि देखता है । वह प्रेमाधिक्य से पागल बन जाता है । शची के लिए प्राण तक देने को वह तैयार हो जाता है । वह अपने को अमरेन्द्र और इन्द्राणी का पति घोषित करता है । कामांध मनुष्य हमेशा अपनी परिस्थिति को भूलकर ज्ञानांध बन जाता है । नहुष इसतरह के मानव का प्रतिरूप है । वह शची को अपने अधीन में रखना चाहता है । तब देवमंत्री का कथन है

"पति का अर्थ नहीं है, पत्नी भृत्य हो,
और विवश होकर आज्ञा में वह चले?
इन्द्रपुरी में नियम नहीं ऐसा कहीं
पति पत्नी स्वाधीन, प्रेम ही बाँधता ।"[2]

देवमंत्री का उक्त कथन समाज में उपस्थित पति-पत्नी संबन्ध का परिचायक है । प्राचीन काल से ही पति पत्नी को अपनी भृत्या समझकर आपनी सारी आज्ञाओं का पालन कराता है । पत्नी आज्ञापालन करने के लिए विवश हो जाती है । वर्तमान युग में भी इस स्थिति में कोई

---

1 'नहुष निपात' उदयशंकर भट्ट पृ. 26
2. वही पृ. 38

बदलाव नहीं आ गया है । पति-पत्नी दोनों को अपने अपने कार्य में स्वाधीन बनना चाहिए । पत्नी पुरुष की अर्द्धांगिनी है । समाज में दोनों का स्थान बराबर है । कोई किसी से कम नहीं । आधुनिक युग के स्वतन्त्रताबोध की झलक देवमंत्री के कथन से स्पष्ट है ।

शची कहती है कि तुम जैसे अविनीत और अशिष्ट व्यक्ति को इन्द्र बनने का कोई अधिकार नहीं है। नहुष बलपूर्वक शची को अपनी पत्नी बनाना चाहता है । नहुष अहंकारग्रस्त, कामांध और अशिष्ट आधुनिक मानव का प्रतीक है । आधुनिक मानव अविनीत बनकर सारी सुखसुविधाओं को कुमार्ग से अपने चंगुल में बाँधना चाहता है । देवगण स्वर्ग में स्वाधीनप्रेम के महत्व के बारे में नहुष को समझाते हैं । शची एक शर्त पर उसका प्रणयनिवेदन स्वीकार करती है

"सप्तऋषिद्वारा वाहित यदि पालकी
आवें उसमें बैठ आप प्रासाद में।"[1]

नहुष शर्त स्वीकार कर लेता है । सप्तऋषि विश्राम के लिए थोड़ी देर ठहरते हैं । तब क्रोध और अहं से वशीभूत होकर नहुष सप्तऋषियों पर लात मारता है । सप्तऋषि क्रुद्ध होकर पालकी गिरा देते हैं । वह अपने जघन्य अपराध के लिए सप्तऋषियों से क्षमा माँगता है । लेकिन देवगण रुष्ट होकर उसे सर्प बनने का शाप देते हैं । वह लंबा साँप बनता है । अहं का गर्व उसके पतन का कारण बन जाता है । पाप की इच्छा से पापी नहुष स्वर्ग से पतित होता है ।

हमेशा योग्य व्यक्ति से ही योग्य कार्य संभव है । इन्द्रलोक के राजा बनने के लिए वह बिल्कुल अयोग्य था । भट्टजी ने नहुष की चित्त वृत्तियों का और उसके अन्तर्द्वन्द्व का सजीव चित्रण किया है । भट्टजी नहुष के माध्यम से उचितानुचित विचार को भूल जानेवाले मानव का

---

1 'नहुष निपात' उदयशंकर भट्ट पृ. 39

परिचय देते हैं । आधुनिक मानव उचितानुचित विचार छोड़कर सारी सुखसुविधाओं को अपनाने के प्रयत्न में व्यस्त हैं । इसी दौड में मानव अपने कर्तव्य और अकर्तव्य के बारे में नहीं सोचते ।

अन्त में नहुष के पतन के संबन्ध में बृहस्पति का कथन भी ध्यान देने योग्य है । वह कथन बहुत अर्थपूर्ण है । इस में समसामयिकता का प्रभाव दृष्टव्य है

"आग्रह था यह तुम सबका हो नहुष ही
इन्द्रलोक का राजा, किन्तु अयोग्य था ।
गर्व अहं का उसे खा गया बन्धुवर
योग्य व्यक्ति से योग्य कार्य संभव सदा।"[1]

'नहुष निपात' में पात्र नहुष की अधिकार लिप्सा और कामांधता का परिचय देकर उदयशंकर भट्टजी ने आधुनिक भावबोध का अंकन किया है । हर विजय के साथ मानव के अहम् की भावना भी बढ जाती है । अंत में अहम् का भाव प्रलय या सर्वनाश का रूप धारण कर लेता है । चेतना की क्रिया प्रतिक्रिया में परिणत हो जाती है और सबकुछ नष्ट हो जाता है अर्थात् प्रेम, दया, करुणा, ममता, त्याग, सत्य और ज्ञान के स्थान पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जाग्रत होते हैं । नहुष के इसतरह का पतन सारे मानवों के पतन का द्योतक है । इसमें अहम् पर विजय पाने का उपदेश गीतिनाट्यकार देते हैं ।

---

1 'नहुष निपात' उदयशंकर भट्ट पृ. 45

उर्वशी

सन् 1961 में रामधारीसिंह दिनकर द्वारा रचित सफल गीतिनाट्य है 'उर्वशी' । यह ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कृति है । इसकी कथा प्रागौतिहासिक काल के उर्वशी और पुरूखा के प्रेम पर आधारित है । प्राचीन कथा को नवीन संदर्भ में देखने का प्रयास है प्रस्तुत गीतिनाट्य । पृथ्वीपुत्र पुरूखा और स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी के प्रेम के माध्यम से रचनाकार ने प्रेम के मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्‌घाटन किया है । इसमें नारी के विविध रूप, नार-नारी संबन्ध और काम संबन्धी विचार उपलब्ध हैं । पुरूखा और उर्वशी को मानवीय प्रतीक के रूप में, सनातन नर और सनातन नारी के रूप में कृतिकार ने प्रतिष्ठित किया है । दिनकर यहाँ नर और नारी के प्रेम को शारीरिक धरातल पर नहीं प्रत्युत इन्द्रियों से परे अर्थात् अतीन्द्रिय मानते हैं । मन और आत्मा के धरातल पर घटित प्रस्तुत प्रेम आध्यात्मिक बन जाता है ।

'उर्वशी' में नारी के विविध रूपों का उद्‌घाटन दिनकर ने किया है । उदात्त प्रेममयी नारी का रूप 'उर्वशी' में स्पष्ट झलकता है । पुरूखा अनासक्त है । लेकिन उर्वशी अपने काम पाश में उसे बाँधना चाहती है । वह अपने प्रेमी के समक्ष सर्वस्व समर्पित करने केलिए तैयार हो जाती है

> "आ मेरे प्यारे तृषित ! श्रान्त ! अन्तः सर में मज्जित करके
> हर लूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलों से सज्जित करके।
> रसमयी मेघमाला बनकर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी
> फूलों की छाँह तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊँगी ।"[1]

कवि ने इस में काम भावना का उदात्तीकरण किया है । प्रेम विषय को लेकर अप्सराओं के बीच संवाद चल रहा है । अप्सरा सहजन्या की राय है

---

1 'उर्वशी' दिनकर पृ. 44

"कहते हैं, धरती पर सब रोगों से कठिन प्रणय है,
लगता है यह जिसे, उसे फिर नींद नहीं आती है ।"[1]

यहाँ प्रेम की मास्मरिकता का वर्णन है । प्रेम के जाल में फँसनेवाला व्यक्ति सबकुछ भूल जाता है । यहाँ प्रेमी और प्रेम केमनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्‌घाटन किया गया है । राणी औशीनरी की राय में "जो प्रेम अलभ्य है और जो दूर है उसे पाने के लिए मन अधिक चाहता है । प्रेम हृदय की बहुत बड़ी उलझन है ।"[2] इसके फलस्वरूप ही औशीनरी जैसे सद्‌नारी को छोड़कर अप्सरा उर्वशी को पुरूरवा ने स्वीकार किया है । उर्वशी का प्रेम आधुनिक नारी का प्रेम है । बिना विवाह के प्रेम आधुनिक युग की अत्यन्त साधारण बात बन गई है । उर्वशी में वासनाप्रिय नारी का रूप भी स्पष्ट झलकता है । लेकिन नारी को वासना का प्रतीक दिनकरजी नहीं मानते । उनकी मान्यता पुरूरवा के कथन में स्पष्ट है

"नारी जब देखती पुरुष को इच्छा-भरे नयन से,
नहीं जगाती है केवल उद्वेलन, अनल रुधिर में,
मन में किसी कान्त कवि को भी जन्म दिया करती है ।"[3]

नारी में दिव्य मानवीय गुणों की भरमार है ।

सुकन्या का कथन है

"और देवि ! जिन जिन गुणों को मानवता कहते हैं;
उसके भी अत्यधिक निकट नर नहीं, मात्र नारी है ।
जितना अधिक प्रमुख-तृषा से पीड़ित पुरुष हृदय है,
उतने पीड़ित कभी नहीं रहते हैं प्राणप्रिया के ।"[4]

---

1 'उर्वशी' दिनकर पृ. 9
2. वही पृ. 24
3. वही पृ. 47
4. वही पृ. 129

नारी की गरिमा और महिमा का वर्णन 'उर्वशी' में दिनकरजी ने किया है । नारी जाति के भविष्य के प्रति भी रचनाकार आशावादी हैं । औशीनरी के माध्यम से वे इसे व्यक्त करते हैं

''नारी का स्वर्णिम भविष्य, जाने वह अभी कहाँ है ।''[1]

रानी औशीनरी में पातिव्रत्य धर्म की प्रतिष्ठा ज़्यादा हुई है । पतिवियोग से वह अतीव दुःखी है । अपने तन, मन और सर्वस्व पति के सम्मुख वह समर्पित करती है । अपने पति के अप्सरा के साथ पलायन की बात जानकर भी वह ईश्वर से पति के कल्याण के लिए प्रार्थना करती है । उसका कथन है

"मुझको मिलें जो शूल हों,
प्रियतम जहाँ भी हों, बिछे सर्वत्र फूल हों।"[2]

विवाह-बन्धन मुक्ति और परनारी संसर्ग का वर्तमान युग में आधिक्य है । आधुनिक युग में भी औशीनरी जैसी पतिव्रता पत्नियाँ अपने दुःख को छिपाकर चुपचाप बैठती हैं । समाज में पातिव्रत्य धर्म का पालन करने में पुरुष की अपेक्षा नारी ही प्रबल है । रचनाकार ने औशीनरी के माध्यम से नारी के पातिव्रत्य धर्म औरव्यथाओं को सहने की अपार क्षमता दिखायी है । औशीनरी सद्नारी होते हुए भी अपने पति पर संयम लगाने में पराजित होती है । औशीनरी की पराजय सारे नारी वर्ग की पराजय है । अपना सर्वस्व समर्पितकर स्त्री पुरुष की गृहिणी बन जाती है । लेकिन पुरुष को अपने प्रेम, रूप, यौवन और सुन्दरता से मोहित करनेवाली और अपने वाक्जाल में फँसानेवाली उर्वशी जैसी अनेक नारियाँ आज भी समाज में मौजूद हैं । महर्षि च्यवन की पत्नी सुकन्या पतिव्रता नारी है ।

उर्वशी में मातृत्व और पत्नीत्व का संघर्ष दिखाई देता हैं । भरत के शाप के फलस्वरूप

---

1 'उर्वशी' दिनकर पृ. 129
2. वहीं पृ. 29

उर्वशी को पति और पुत्र दोनों एक साथ नहीं मिल सकते । नारी की बेचैनी यहाँ दृष्टव्य है । पहले उर्वशी इन्द्रियों से प्राप्त आनन्द के लिए या भोगविलास की लालच से प्रेरित होकर स्वर्गलोक को त्यागकर भूमि पर उतरी । लेकिन पुत्रप्राप्ति से वह वात्सल्यमयी माँ बन जाती है । इस प्रकार प्राचीन नारी और आधुनिक नारी दोनों का रूप उर्वशी में विद्यमान है । जब वह वात्सल्यमयी माँ बन जाती है तब वह भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति बन जाती है ।

अप्सराएँ उच्छृंखल आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व ग्रहण करती हैं । अपनी सुन्दरता से दूसरों के मन को लुभाना ही उनका लक्ष्य है । वे किसी प्रकार का बन्धन नहीं चाहतीं । वे स्वतन्त्रता की चाह रखनेवाली हैं । पुरुष के प्रति समर्पण भावना उनमें नहीं । दिनकरजी ने अप्सराओं के माध्यम से आधुनिक नारी के उस रूप को व्यंजित किया है जो भौतिकता, विलासिता और स्वार्थपरता से परिपूर्ण है । वर्तमान युग में भी ऐसी नारियाँ हैं जो सामाजिक जीवन का अभिशाप है ।

मानवता के इतिहास में नर और नारी का समान महत्व है । इस गीतिनाट्य में वैदिककालीन नारी की गरिमा और वेदोत्तर कालीन नारी के प्रति पुरुष के स्वेच्छाचार, व्यवहार, सामाजिक असमानता और उसकी विवशतापूर्ण स्थितियों का अंकन किया गया है । नार-नारी के रागात्मक संबन्ध पर आधारित है प्रस्तुत गीतिनाट्य । समाज का अस्तित्व ही स्त्री-पुरुष एकता पर निर्भर है । नारी पुरुष की प्रेरणा दायिनी शक्ति है । वह विपत्ति में पड़े पुरुष की संजीवनी शक्ति है । उर्वशी में रचनाकार ने नर-नारी संबन्ध को एक नवीन दृष्टिकोण से देखा परखा है । इसमें चित्रित नर-नारी संबन्ध सामान्य नर-नारी संबंध से भिन्न है, जिसमें लैंगिक भेदों का आरोप नहीं किया जा सकता ।

पुरूरवा आधुनिक मानव का प्रतीक है । पुरुरवा का द्वन्द्व आधुनिक मानव का द्वन्द्व है । उर्वशी आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है । उर्वशी आधुनिक नारी की तरह द्वन्द्व से पीडित

है । प्रश्नाकुलता और अंतःसंघर्ष आधुनिक युग की खास विशेषताएँ हैं । दिनकरजी ने दोनों पात्रों के माध्यम से आधुनिक युग की समस्या को प्रस्तुत किया है ।

औशीनरी नारी-विवशता के प्रतीक के रूप में खड़ी है । अस्वतन्त्र जीवन बिताने की विवशता उसे पड़ती है । वह नारी शोषण का शिकार है । शोषित नारी की वेदना औशीनरी में है

"कितना विलक्षण न्याय है !
कोई न पास उपाय है ।
अवलम्ब है सबको, मगर नारी बहुत असहाय है ।"[1]

पुरुष प्रधान समाज में नारी का शोषण आज भी हो रहा है । परिणीता नारी की विवशता औशीनरी में प्रबल है । वह पतिपरायणा नारी है । उसके पति पुरूखा का उर्वशी से मिलन उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है । पुरूखा के साथ उर्वशी के गन्धमादन पर्वत पर चले जाने पर वह प्राणान्त करना चाहती है, तभी निपुणिका पुरूखा का यह संदेश देती है कि महाराज एक वर्ष पश्चात् लौटकर नैमिषेय यज्ञ करेंगे, जिसकी पूर्ति के लिए औशीनरी का जीवित रहना आवश्यक है । औशीनरी विचित्र दुविधा में पड़ जाती है । वह व्यथित होकर उर्वशी के प्रति आक्रोश करती है

"हाय मरणतक जीकर मुझ को हालाहल पीना है ।
जानें, इस गणिका का मैंने कब क्या अहित किया था,
कब किस पूर्वजन्म में उसका क्या सुख छीनलिया था,
जिसके कारण भ्रमा हमारे महाराज की मति को,
छीन ले गयी अधम पापिनी मुझसे मेरे पति को ।"[2]

---

1 'उर्वशी' दिनकर पृ. 29
2. वही पृ. 22

पुरुष हमेशा अपने साध्य के लिए स्त्री को साधन बनाता है । औशीनरी के माध्यम से नारी की असहाय शोचनीय स्थिति को और उस के दुःख, द्वेष, घृणा, जलन आदि सब मनोविकारों को रचनाकार ने प्रस्तुत किया है । आधुनिक युग में भी समाज में परनारी के पीछे चलनेवाले विवाहित पुरुष और पातिव्रत्य धर्म का भलीभाँति निर्वहण करते हुए भी पति की सारी क्रूरताओं को सहने वाली नारी दोनों उपस्थित हैं । पति के बिना पत्नी का कोई अस्तित्व नहीं । नारी की अस्वतंत्रता और पुरुष की स्वतन्त्रता दोनों पक्ष यहाँ प्रकट हैं । स्त्री अस्वतन्त्र होकर अपने आँसू को छिपाकर हँसती है, फिर हँसते हँसते रोती भी है । अपने मन की व्यथा को प्रकट करने की स्वतन्त्रता नारी में नहीं है ।

राजा पुरूखा के माध्यम से पुरुष वर्ग के स्वभाव का परिचय दिया गया है

"एक घाट पर किस राजा का रहता बँधा प्रणय है।"[1]

नित्य नये नये पुष्पों का रस चूसना पुरुष का सामान्य स्वभाव है । पुरुष मधुलोभी लम्पट मधुप का प्रतिरूप है । नयी नयी सुन्दरताओं को अपनाने केलिए वह आतुर है । पत्नी के रूप में नारी अपने परिवार के पोषण के लिए मात्र जीती है । पति के अनेक नारियों में रम जाने की ललक सहने के लिए पत्नी बाध्य हो जाती है । पुरुष हमेशा नया संघर्ष चाहता है । अपने वश में प्राप्त वस्तु से उसको संतोष नहीं है वह नित्य नया प्यार, नया संवाद, नयी विजय और नूतन हर्ष चाहता है । पुरुष हमेशा प्रणय क्षुधा से इधर उधर विचरता रहता है ।

'उर्वशी' की मूल संवेदना काम और अध्यात्म पर आधारित है । आधुनिक मानव जीवन में काम का महत्वपूर्ण स्थान है । रचनाकार ने इसमें काम का उदात्तीकरण भी किया है । उन्होंने काम को अतीन्द्रिय धरातल प्रदान किया है । दिनकर की राय में काम मनुष्य को ऊँचा भी उठा सकता है और नीचे भी गिरा सकता है । उर्वशी कहती है

---

1 'उर्वशी' दिनकर पृ. 15

'काम धर्म, काम ही पाप है, काम किसी मानव को
उच्च लोक से गिरा हीन पशु-जन्तु बन देता है ।"[1]

दिनकर के विचार में नर-नारी का समागम बुरा नहीं । हमें उसे उदात्त दृष्टिकोण से देखना है "प्रत्येक पुरुष में शिव और प्रत्येक नारी में पार्वती दिखाई देती है । जहाँ भी नर-नारी का समागम होता है, वहाँ वास्तव में शिव-पार्वती का समागम है।"[2]

इस गीतिनाट्य में दिनकरजी ने पौराणिक कथा के माध्यम से नए जीवनमूल्यों की स्थापना की है । फलासक्ति हीन निष्काम काम करने की प्रेरण प्रस्तुत कृति देती है । फलासक्ति-युक्त काम से समाज में पाप का जन्म होता है । लेकिन निष्काम काम सुखदायक है । यहाँ मानव की कर्मपरायणता पर भी बल दिया गया है । बिना कर्म के मानव की प्रगति असंभव है । कर्म से मानव को विजय प्राप्त होती है । कर्म से मानव का भविष्य उज्वल बनता है । कर्मरहित जीवन नाशोन्मुख है । दिनकर जी की दृष्टि में "फलासक्ति समस्त कर्मों को द्रवित कर देती है ।"[3]

यह कृति शासक वर्ग की स्वार्थवृत्ति का परिचय भी देती है । हमें हमेशा परार्थ प्रयत्न करना चाहिए । हमें 'स्व' और 'पर' इन दोनों का भेद भाव नहीं होना चाहिए । शासक में परोन्मुखता या दूसरों के दुःख सुख की चिन्ता होना परम आवश्यक है । इससे समाज कल्याण संभव है । शासक की परोन्मुखता औशीनरी के कथन में मौजूद है । वह आयु को सीख देते हुए कहती है

'पर किशोर होने पर बेटा, तू वीर नृपति है ।
नृपति नहीं टूटते कभी भी निजी विपत्ति व्यथा से;
अपनी पीड़ा भूल यंत्रणा औरों की हरते हैं ।"[4]

---

1 'उर्वशी' दिनकर पृ. 66
2. 'संस्कृति के चार अध्याय' दिनकर पृ. 227
3 'उर्वशी' दिनकर पृ. 67
4. वही पृ. 122

दिनकरजी वर्तमान जीवन की गुत्थियों को सीधे ढंग से व्यक्त नहीं कर पाते । इसकेलिए उन्होंने अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में मिथक को चुना है ।

संशय की एक रात

पौराणिक संदर्भ का आधार लेकर सन् 1962 में नरेश मेहता द्वारा लिखित गीतिनाट्य है 'संशय की एक रात।' । इसमें चित्रित समस्याओं का रचनाकार ने आधुनिकता की दृष्टि से वर्णन किया है । इस गीतिनाट्य में चित्रित प्रमुख समस्या रावण के द्वारा अपहृत सीता की मुक्ति की समस्या है । डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने लिखा है "यह ध्यातव्य है कि नरेश मेहता की दृष्टि' 'संशय की एक रात "में पौराणिक मिथकों को प्रस्तुत करने की अपेक्षा समकालीन संदर्भों को व्याख्यायित करती है । इसलिए संयमी राम के रूप में नेहरू तथा उनके युद्ध और शांति में युद्ध को त्यागने तथा पंचशील के आधार पर शांति बनाए रखने का संकल्प है ।"[1]

राम की सेना रामेश्वरम् के सिन्धुतट पर युद्ध केलिए तैयार होकर खडी थी । पर राम व्याकुल थे और चिन्तित भी । राम का प्रश्न यह है

"व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्मदें।"[2]

राम के मन में उत्पन्न यह सन्देह आधुनिक युग के हर मानव के हृदय में उत्पन्न सन्देह है । अपनी पत्नी सीता को अपनाने के लिए अर्थात् अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए निरीह व्यक्तियों की हत्या राम अनुचित मानते हैं । द्विविधा ग्रस्त मानव का परिचय यहाँ राम के चरित्र के माध्यम से गीतिनाट्यकार देते हैं । यह गीतिनाट्य इस बात की ओर संकेत करते हैं कि किसी न किसी कार्य पर अटल निर्णय लेने की क्षमता वर्तमान युग के मानव को नहीं है । लक्ष्मण, दशरथ तथा जटायु की प्रेतात्माएँ, हनुमान, विभीषण आदि के प्रयत्न से भी राम का

---

1 'नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका' हुकुमचन्द राजपाल पृ 90
2. 'संशय की एक रात' नरेश मेहता पृ. 20

संशय दूर नहीं हो सका। अन्त में मंत्रणा परिषद् के बहुमत से प्रभावित होकर राम ने युद्ध करने का निश्चय किया । राम का युद्ध असत्य और अन्याय के विरुद्ध उठाया गया अनिवार्य कदम है । लेकिन राम आधे मन और अधूरे व्यक्तित्व से ही युद्ध को स्वीकारते हैं । क्योंकि वे अपनी व्यक्तिगत समस्या के हल के लिए रक्तपात नहीं चाहते । इसलिए युद्ध करने का निर्णय लेने के बाद भी उन्हें चैन नहीं मिलता । युद्ध का मानचित्र उनके मानस में साकार हो उठता है

"मध्यरात्रि के इस निर्णय
जाने कितने सूर्य
आज ही
कल के लिए मर चुके।
"मुझमें कल का युद्ध
आज ही संभावित हो चुका।
रक्त सने हो गये आज ही
हाथ-माथ ये ।"[1]

वे वर्तमान के यथार्थ को विवशतापूर्वक स्वीकारते हैं । साधारण जन की स्वतन्त्रता के लिए वे युद्ध करने की सहमति प्रकट करते हैं । लेकिन उनके मन में बार बार यह प्रश्न उभर आता है कि युद्ध के बाद क्या होगा ? राम की युद्ध स्वीकृति के पीछे रचनाकार की मानवतावादी विचार धारा भी स्पष्ट झलकती है । नरेशमेहता की लोकमंगल की कामना वे राम के सहारे अंकित करते हैं । इसमें रचनाकार ने नायक राम को पौराणिक राम से भिन्न अर्थात् उन्हें ईश्वरीय अलौकिकता न देकर साधारण मानव के रूप में प्रस्तुत किया है । राम में दैवी शक्ति की अपेक्षा मानवोचित दुर्बलताएँ, कुंठा, निराशा, निर्णय लेने की असमर्थता आदि को मनोवैज्ञानिक तरीके से गीतिनाट्यकार ने प्रस्तुत किया है । राम आज के प्रश्नाकुल मानव का

---

1 'संशय की एक रात' नरेशमेहता पृ. 87

प्रतिरूप है । आज के मानव संशयग्रस्त हैं जो उनके मन में अन्तर्द्वन्द्व और तनाव की सृष्टि करते हैं । राम के अनिर्णय की स्थिति आज की युवा पीढी की तर्कशीलता एवं बौद्धिकता का परिचायक है । राम की पलायनवादी मानसिकता का परिचय भी निम्नलिखित पंक्तियों से प्राप्त होता है

मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं
खड़ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ ।"[1]

लेकिन राम कायर नहीं हैं । वे गाँधी की तरह अहिंसावादी हैं । दोनों के अहिंसा सिद्धान्त में कायरता नहीं । वे दोनों मानवकल्याण चाहते हैं । राम का संघर्ष यांत्रिक जीवन बितानेवाले आधुनिकमानव का आत्म संघर्ष है । राम खण्डित व्यक्तित्व का प्रतिरूप है । उनका यह खण्डित व्यक्तित्व आधुनिक मानव के व्यक्तित्व का प्रतीक है । राम की तरह आज के जनवादी भी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सारे जनसमुदाय को बलिदेना नहीं चाहते । लेकिन वे उदात्त और उत्तरदायी शासक की तरह सारे जनसमुदाय के हितों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं । वे अपनी शक्ति के प्रदर्शन के लिए या प्रसिद्धि पाने के लिए युद्धरूपी मिथ्यात्व को शास्त्र सम्मत कहकर स्वीकार करना नहीं चाहते । आज के अधिकांश शासकों का उद्देश्य प्रसिद्धि पाना है । इसी केलिए वे अनुचित निर्णय लेने में ज़रा भी नहीं हिचकते । युद्ध के विरुद्ध होकर राम कहते हैं

"मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु!
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु "[2]

---

1 'संशय की एक रात' नरेशमेहता पृ. 31
2. 'संशय की एक रात' नरेशमेहता पृ. 19

राम युद्ध को रोकना चाहते हैं । मानव में जो श्रेष्ठ तत्व विद्यमान है वे उसे जगाना चाहते हैं ।

राम लक्ष्मण से कहते हैं
"इतिहास के हाथों
बाण बनने से अधिक अच्छा है
स्वयं हम
अँधेरे में यात्रा करते हुए
खो जाएँ
किसी के हाथों सही
पर नियति खोना है ।"[2]

राम इतिहास के हाथों के बाण नहीं बनना चाहते । वे अपने व्यक्तित्व को बनाए रखना चाहते हैं । हमें स्वयं कुछ करना चाहिए । दूसरे लोगों के इशारे पर नाचनेवाला व्यक्ति स्वयं अपने व्यक्तित्व को नष्ट करता है । इस प्रकार जीवन बिताने से भी अच्छा है मरना । उपर्युक्त पंक्तियों से राम के स्वाभिमानी व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त होता है । आज के शासक अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को सार्वजनिक रूप देने की कोशिश करते हैं । इसके परिणामस्वरूप अन्य समस्याओं की सृष्टि होती है । राम अपने व्यक्तिगत समस्या को सार्वजनिक रूप देना नहीं चाहते थे; अन्य शासक भी राम का आदर्श स्वीकार करते तो समाज का कल्याण होता। महामानव राम के चरित्र में गाँधीजी के अहिंसावाद और गौतमबुद्ध के प्रेम और करुणा दर्शनीय हैं ।

राम के संशय पर कर्म की विजय दिखाकर कर्मवाद की महत्ता का प्रतिपादन गीतिनाट्यकार ने किया । लक्ष्मण और हनुमान इसी कर्म का समर्थन करते हैं । आधुनिक युग में कर्म की प्रासंगिकता महत्वपूर्ण है ।

---

1 'संशय की एक रात' नरेशमेहता पृ. 10

इस गीतिनाट्य में युद्ध की समस्या को लेकर विभिन्न पात्र अपने अपने मत प्रकट करते हैं । विभीषण की राय में युद्ध अपने अधिकारों का अर्जन करने का अंतिम तरीका है । हनुमान की दृष्टि में सीता राम की समस्या नहीं; वह तो साधारण जन की अपहृत स्वतन्त्रता का प्रतीक है । आधुनिक दृष्टि से देखा जाए तो सीता मानव की स्वतन्त्रता का प्रतीक है । मानवसमुदाय की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए युद्ध अनिवार्य है । सुग्रीव, राम के पिता दशरथ और जटायु की प्रेतात्माएँ भी उन्हें युद्ध की अनिवार्यता बतलाती हैं । सुग्रीव युद्ध को अनिवार्य मानता है । उसका कथन है

"युद्ध केवल फेन ही नहीं
निर्णय है
जिससे इतिहास बना करता है।"[1]

विभीषण का कथन है

"युद्ध
मंत्रणा नहीं
एक दर्शन है राम!
अंतिम मार्ग है
स्वत्व और अधिकार अर्जन का ।
किसी-किसी युग में
युद्ध ही
अन्तिम सत्य, दर्शन हुआ करता मित्र !
शेष
शोभा वंचना।"[2]

विभीषण का व्यक्तित्व भी राम की तरह खण्डित व्यक्तित्व है । वे भी राम की तरह समष्टि हित केलिए युद्ध को अनिवार्य समझते हैं; साथ ही साथ अपने राज्य की दुर्दशा के बारे

---

1 'संशय की एक रात' नरेशमेहता पृ. 70
2. वही पृ. 71

में सोचकर चिन्तित भी हैं । हनुमान, लक्ष्मण विभीषण, सुग्रीव आदि आज की जनता के प्रतिनिधि हैं । उनका लक्ष्य है दासता से मुक्ति । सीता की मुक्ति में वे अपनी मुक्ति को देखते हैं ।

दशरथ की छाया राम को अवसर के अनुकूल प्रवृत्त करने की प्रेरणा देती है । कीर्ति, यश, नारी, धरा, जय, लक्ष्मी सब किसी की कृपा से नहीं पौरुषपूर्ण वर्चस्व से ही प्राप्त हो जाते हैं । हमें परिस्थितियों का लाभ उठाना चाहिए । दशरथ की प्रेतात्मा राम से कहती है

"संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है ।
यश जिसकी छाया है
उस कर्म को वरो ।"[1]

संशय या शंका से लक्ष्य प्राप्ति नहीं होती; संशय और कर्म इन दोनों में से किसी एक को चुनना चाहिए । जिस कर्म से यश की प्राप्ति होगी उसी कर्म का वरण करना आवश्यक है । इसमें राम महामानव और लक्ष्मण लघुमानव के प्रतीक हैं । लक्ष्मण पौरूष एवं इच्छा का प्रतीक है तो हनुमान उत्पीड़ित एवं शोषित समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे अपार शक्तिशाली हैं ; लेकिन वे अपनी शक्ति से अजनबी हैं । वे शासक वर्ग के इंगित के अनुसार अपनी शक्ति को जागृतकर शासक वर्गों के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं । हनुमान कहता है

"साम्राज्य वृत्ति के द्वारा
हम साधारण जन
अर्धसभ्य कर दिये गये ।
हमने राक्षस-रथ खींचे
दासभाव से ।
बदले में

---

1 'संशय की एक रात' नरेशमेहता पृ. 54

नर नहीं

वानर पद प्राप्त किए ।"[1]

वर्तमान युग की ज्वलन्त समस्या है युद्ध और शांति की समस्या । युगयुगान्तर से यह समस्या संपूर्ण विश्व में विद्यमान है । अधिकांश युद्ध 'जिसकी लाठी होगी उसी की भैंस' इस सिद्धान्त पर आधारित हैं । युद्ध में कभी सत्य नहीं होता । युद्ध और शाँति की समस्या 'संशय की एक रात' में भी विद्यमान है । राम के संशयात्मक व्यक्तित्व के सहारे गीतिनाट्यकार इस समस्या को व्यक्त करते हैं । विज्ञान की प्रगति के प्रभाव से आज अनेक सुखसुविधाएँ प्राप्त हुई हैं । इस कारण से ही आधुनिक मानव यांत्रिक जीवन बिता रहे हैं । वे अनास्था, कुंठा, अविश्वास, सन्देह आदि के जाल में फँसकर भटक रहे हैं । आज संसार में युद्ध जैसे अमानुषिक कृत्य, बर्बरता, पाशविक वृत्ति, हत्या आदि का बोलबाला है । लोककल्याण को लक्ष्य करके संपन्न युद्ध बहुत विरले ही मिलते हैं । इस गीतिनाट्य का प्रमुख पात्र राम युद्ध को अमानवीय आचरण कहकर टाल देते हैं । राम का ख्याल है कि युद्ध से सर्वनाश होगा, रक्तपात होगा । गाँधीजी की अहिंसावादी मनोवृत्ति यहाँ राम में स्पष्ट झलकती है । वे कहते हैं

''मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,

बाणबिद्ध पाखी सा विवश

साम्राज्य नहीं चाहिए

मानव के रक्त पर पगधरती आती

सीता भी नहीं चाहिए,

सीता भी नहीं।"[2]

---

1 'संशय की एक रात' नरेशमेहता पृ. 65

2. वही पृ. 32

इस कृति में रचनाकार संसार में हुए दो विश्वयुद्धों की ओर संकेत करते हैं । इन दोनों युद्धों में भीषण नरसंहार हुआ । परमाणु बमों से हिरोशिमा और नागसाकी नहस-नहस कर दिए गए । आज विज्ञान के क्षेत्र में नये नये आविष्कार हुए हैं । नूतन आयुधों का निर्माण संसार में हो रहा है । बटन दबाकर संपूर्ण विश्व को भस्मीकृत करने योग्य आविष्कार भी आज मौजूद हैं । लोग आज आगमी युद्ध के भय से जी रहे हैं । आगामी युद्ध से भारतीय संस्कृति, सभ्यता और संपूर्ण मानवजाति का समूल नाश संभव है । युद्ध के फलस्वरूप मानवीय मूल्यों का विघटन होता है । जीवन मूल्यों की दृष्टि से 'संशय की एक रात' एक सशक्त रचना है । सच्चा शासक प्रजा के हितों की चिन्ता अपने से अधिक करते हैं । युद्ध में मानवतावाद की रक्षा अनिवार्य है । रावण जैसे साम्राज्यवादी शोषक की बर्बरता से मुक्ति पाने के लिए युद्ध अनिवार्य है । इस तरह युद्ध लोक की भलाई के लिए होना चाहिए । इसका निर्णय अच्छे शासक पर निर्भर है । आज के युद्ध व्यक्तिगत चिन्तन से प्रेरित होकर नहीं सामाजिक या राष्ट्रीय समस्या के समाधान के लिए हो रहे हैं । धर्मवीर भारती 'अधायुग' में युद्ध को पूर्णतया विनाशकारी मानते हैं तो 'संशय की एकरात' में नरेश मेहता युद्ध को कभी-कभी अनिवार्य भी मानते हैं।

एक कंठ विषपायी

सन् 1963 में प्रकाशित दुष्यन्तकुमार से विरचित प्रमुख गीतिनाट्य है 'एक कंठ विषपायी' । प्रस्तुत कथा पौराणिक शिवपुराण पर आधृत है । दुष्यन्त कुमार ने इसकी कथा को समकालीन संदर्भ के अनुरूप देखा परखा है । इसमें आधुनिक सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक समस्याओं का अंकन किया गया है । चीन के भारत पर आक्रमण के उपरान्त इसकी कथा लिखी गई है । जर्जर रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्ति इसकी प्रमुख समस्या है । परंपराओं से मुक्त होकर नए सत्य की अभिव्यक्ति के लिए दुष्यन्त कुमार ने दक्ष-यज्ञ प्रसंग को लिया है । दूसरी प्रमुख समस्या स्त्री-पुरुष संबन्ध को लेकर है । पारिवारिक जीवन के तनावों

का अंकन दक्ष-शिव के माध्यम से गीतिनाट्यकार करते हैं । इसमें चित्रित युद्ध की समस्या हर युग, हर देश और हर परिस्थिति के लिए भी अनुकूल है ।

प्रस्तुत कृति में चार दृश्य हैं । प्रथम दृश्य में दक्ष-यज्ञ में भाग लेने के लिए आए सती और शंकर का अपमान करता है । अपने पति का अपमान असह्य होने पर सती आत्महत्या कर लेती है । अगले तीन दृश्य शिवगणों द्वारा दक्षयज्ञ का भंग करने के संबन्ध में देवलोक में देवताओं के बीच वाद-विवाद, शंकर द्वारा सती के साथ बिताए सुन्दर क्षणों की याद और सती के शव को लादे उसके प्रति शिव का मोह आदि प्रसंगोंपर आधारित हैं ।

जर्जर रूढ़ियों और परंपरा के शव से चिपटे लोगों को मोहमुक्तकर नवीन मूल्यों की स्थापना के लिए ही दुष्यन्तकुमार ने शिव-सती की कथा चुन ली है । निम्नलिखित कथन इसका प्रमाण है

"चाहे वे साधारण जन हों
अथवा महादेव शंकर हों
क्यों इनमें अधिकांश लोग लाशें ढोते हैं;
लाशें भरी मान्यताओं की
मेरे विचारों की
भावों की....।"[1]

शिव पहले हमारे सम्मुख परंपराभंजक के रूप में आते हैं और सती की मृत्यु केबाद वे परंपराग्रस्त हो जाते हैं

"हम जो पुरानी परंपराओं से विद्रोहकर नये मूल्यों की स्थापना करते हैं, कालान्तर में वे हमीं पर हावी हो जाते हैं और हम उनसे ऐसे चिपट जाते हैं कि बाद का नया युगसत्य हमारी आँखों से ओझल हो जाता है।"[2]

---

1. 'एक कंठविषपायी' दुष्यन्त कुमार पृ. 121
2. 'हिन्दी के काव्यनाटक' डॉ. सुशीला सिंह पृ. 33

यह कथा अपमान और प्रतिशोध पर निर्भर है । इन दो भावों के मूल में अहं की भावना होती है । अपमानित व्यक्ति अपने अहं की तुष्टि के लिए प्रतिशोध को अपनाता है । शिव क्रोधी है और वह नयी पीढी का प्रतिनिधित्व ग्रहण करता है । शिव में मानवोचित दुर्बलताएँ वर्तमान हैं । शिव के माध्यम से व्यक्ति के दोहरे व्यक्तित्व का परिचय दुष्यन्तकुमार देते हैं । पति के अपमान को न सहकर सती आत्मदाह करती है । शिव उसके शव को कन्धे पर ढोकर प्रतिशोध प्रकट करते हैं । प्रतिकार, पीड़ा और दुःख से व्याकुल होकर वे कहते हैं

"देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ़
मैं ने क्या पाया ?
निर्वासन !
प्रेयसि वियोग !!
हर परम्परा के मरने का विष,
मुझे मिला,
हर सूत्रपात का
श्रेय ले गये और लोग ।
मैं ऊब चुका हूँ
इस महिमामण्डित छल से
अब मुझे स्वयं का
वास्तव-सत्य पकडना है।"[1]

गीतिनाट्य के अंत में शिव पुरानी परंपरा के प्रतीक रूपी सती के शव को त्यागकर नयी परंपरा को अपनाते हैं । आज की दुनिया में भी एक व्यक्ति दूसरे को अपमानितकर नीचा दिखाना चाहता है । वैसे एक देश को दूसरे देश के प्रति प्रतिशोध की भावना भी रहती है । पारिवारिक, राजनीतिक और सामाजिक संदर्भों में इसतरह के प्रतिशोध और अपमान के कई

---

1 'एक कंठ विषपायी' दुष्यन्तकुमार पृ. 77

संदर्भ हम देख सकते हैं । कोई भी पति अपनी पत्नी का अपमान सहन नहीं कर सकता है और कोई भी पत्नी अपने पति का अपमान सहन नहीं कर सकती है ।

दक्ष पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी वर्ग के प्रतीक हैं । धनवान लोगों की भावनाशून्यता उनमें है । शिव को उनके विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले हिंसाप्रिय दलितों एवं पीडितों के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया गया है । दक्ष व्यक्तिवाद एवं अहं की भावना से ग्रस्त हैं । शिव के साथ संपन्न सती का प्रेमविवाह उनके दर्प पर आघात पहुँचाता है । इस गीतिनाट्य में चित्रित सभी पात्र मोहांध हैं । वे सब अपने अपने व्यक्तिवादिता से प्रेरित होकर अनुचित कार्य करते हैं । सती का आत्मदाह, अपनी पत्नी के शव को कन्धे पर उठाए घूमने फिरनेवाले शिव, और अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति के लिए समूचे विश्व को भस्म करने की इच्छा रखने वाले शंकर मोहांधता के परिचायक हैं । दक्ष पुरानी पीढ़ी का प्रतीक है जो हमेशा परंपरागत रूढियों से चिपके रहते हैं । वे परिवर्तन नहीं चाहते । दक्ष आधुनिक युग के परंपरागत रूढ़ियों पर अड़िग आस्था रखने वाले पिताओं का प्रतिरूप है जो स्वपुत्री को अपनी मर्जी से विवाह करने से रोकते हैं । यहाँ दक्ष और शिव के बीच परंपरावादी और परंपरा भंजक के बीच का संघर्ष है । सती और शिव के बीच का विवाह आधुनिक युग की दृष्टि में प्रेम विवाह है । दक्ष जैसे परंपरावादी पिता प्रेमविवाह को अपनी मर्यादाओं का अपमान समझते हैं और इसका इनकार करते हैं । पितृ-हृदय की विवशता दक्ष के चरित्र में अंकित है सती के प्रति उनके हृदय में अतीव ममता है ।

दक्ष की पत्नी वारिणी में सती के प्रति प्रेम वात्सल्य भरा पड़ा है । पति-पत्नी संबन्ध पर ज़ोर देती हुई वारिणी कहती है

> "पत्नी की मर्यादा
> पति की मर्यादा से होती है ।"[1]

---

1 'एक कंठ विषपायी' दुष्यन्तकुमार पृ 30

वह नर-नारी संबन्धों में "परिणय को नारी की परिणति मानती हैं ।"[1] नारी को हमेशा अनिष्ट की आशंका होती है । इस सामान्य तथ्य को भी दक्ष के द्वारा दुष्यन्तकुमार व्यक्त करते हैं

"नारी का शंकालु स्वभाव सदैव
इष्ट में भी अनिष्ट की
आशंका रचता आया है।"[2]

प्रेममयी नारी का प्रतिरूप है वारिणी । उसका हृदय कोमल है । दक्ष वारिणी की बातों का तिरस्कार करते हैं । पुरुष की अपेक्षा स्त्री में समस्याओं का विश्लेषण कर समाधान ढूँढ लेने की क्षमता ज़्यादा है । वारिणी दक्ष की परंपरा से चिपटने की वृत्ति को देखकर 'हृदय की दुर्बलता' कहती है । परंपरा से जुड़कर जीनेवाला व्यक्ति तुरन्त नये से जुड़ा रहना पसन्द नहीं करता । वारिणी के कथन से रचनाकार इसे व्यक्त करते हैं

"शिथिल व्यवस्था नहीं
हृदय की सहज-जात दुर्बलता है यह ।
जैसे हर मनुष्य
अपनी सामर्थ्य, और सीमा के भीतर
जीवित
किसी सत्य से सहसा कट जाने पर
व्याकुल हो उठता
या क्रोधित हो उठता है।"[3]

शिव और सती के बीच के संबन्ध के द्वारा पति-पत्नी या पारिवारिक संबन्ध की सुदृढ़ता और महत्ता पर गीतिनाट्यकार प्रकाश डालते हैं । शिव अपनी पत्नी के आत्मदाह से झुलसकर

---

1 'एक कंठ विषपायी' दुष्यन्तकुमार पृ 17
2. वही पृ. 23
3. वही पृ. 21

इसका बदला लेने में विध्वंस करने केलिए तैयार होता है । सती भारतीय पतिव्रता नारी का प्रतिरूप है । पति-पत्नी दोनों के बीच की आस्था की नींव सुदृढ़ है । सती का आत्मदाह उसे पातिव्रत्य की चरम कोटि में पहुँचाता है । दाम्पत्य जीवन की सुदृढ़ता के लिए पति और पत्नी के बीच आस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है । शिव और सती के माध्यम से रचनाकार ने आदर्श दाम्पत्य का प्रतिपादन किया है ।

संसार में साधारण जन परिवर्तन को तुरन्त स्वीकार नहीं करते । संसार में जब परंपरा का खंडन कर नया-मूल्य उठता है तब लोग उसे मिथ्या कहते हैं । परंपरा के प्रति मोहान्ध जन बदलते मूल्यों को अस्वीकार करते हैं । जहाँ तक संभव है वहाँ तक वे मृत परंपरा के शव से चिपके रहते हैं । यह गीतिनाट्य नवीन मूल्यों को स्वीकार करने को और परंपरा के शव को छोड़ देने की प्रेरणा देता है । सारे समाज को युगानुकूल परिवर्तन को स्वीकार करने की ताकत होनी चाहिए । परिवर्तन से जीवन की पुष्टि और तुष्टि होती है । बिना परिवर्तन के समाज मृततुल्य है ।

दक्ष अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए प्रयत्न करनेवाली आज की साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक है । उस तरह के साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच दमन करनेवाले सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है सर्वहत । वह आधुनिक जनता का प्रतिरूप है । वह चिरकाल से पीडित है । वह दलित और शोषित वर्ग का प्रतिनिधि है । सर्वहत के माध्यम से गीतिनाट्यकार न्याय का समर्थन करते हैं । साधारण जन हमेशा न्याय से वंचित रहते हैं । युद्ध की समस्या का फल भी साधारण जन को भोगना पड़ता है । आधुनिक मानव की भांति शासकों के अन्याय पर सर्वहत करारा व्यंग्य करता है । युद्धोपरान्त उत्पन्न मूल्यच्युति देखकर सर्वहत भय और आशंका से ग्रस्त होकर कहता है

"किन्तु शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
उसे प्रजा को वहन करना पड़ता है
गलित मूल्यों का दण्ड भरना पड़ता है
और मैं मनुष्य ही नहीं हूँ
मैं प्रजा भी हूँ ।"[1]

शासक की भूलों का उत्तरदायित्व आम जनता को वहन करना पड़ता है । सर्वहत के माध्यम से वर्तमान युग में प्रजातन्त्र में व्याप्त शासकों के निरुत्तरवादित्व, प्रजा की निरीह स्थिति, युद्ध लिप्सा, राज्य लिप्सा और शासकों की अनीति के बावजूद प्रजा में व्याप्त असन्तोष जैसे समसामयिक समस्याओं का उद्‌घाटन किया गया है । वर्तमान युग में कही भी साधारण जन को न्याय नहीं मिलता । सर्वहत के कथन में शासक वर्ग की कृत्रिमता की ओर संकेत है । सर्वहत निरपराध होते हुए भी आधुनिक मानव की तरह पीड़ा सहने के लिए विवश है । सर्वहत के समान हम सब नियति के पथ पर चलने के लिए बाध्य हैं।

संसारिक जीवन और वर्तमान यथार्थ का चित्रण सर्वहत के माध्यम से रचनाकार व्यक्त करते हैं

"दुनिया में सब भूखे होते हैं ।
सब भूखे.....
कोई अधिकार और लिप्सा का,
-कोई प्रतिष्ठा का
-कोई आदर्शों का
और कोई धन का भूखा होता है
ऐसे लोग अहिंसक कहाते हैं
माँस नहीं खाते
मुद्रा खाते हैं ।"[2]

---

1 'एक कंठविषपायी' दुष्यन्तकुमार पृ. 49
2. वही पृ. 65

स्वतंत्रताबोध का उल्लेख इस रचना में उपलब्ध है । अस्वतन्त्रता मनुष्य में अशान्ति की सृष्टि करती है । अस्वतन्त्रता के पाश में जकड़कर मानव का समस्त विकास अवरुद्ध हो जाता है । वारिणी के आदेशानुसार राजकुमार सुलभ और दक्ष के विरोध के बावजूद सर्वहत ने बलप्रयोग से चिडिया को मुक्त कर दिया । यहाँ गीतिनाट्यकार ने चिड़िया की मुक्ति के माध्यम से मानवमुक्ति का संदेश दिया है । इसमें कर्म की प्रमुखता पर बल दिया गया है ।

साधारण जन की भूख का परामर्श भी इस में है । संसार के अधिकांश लोग बुभुक्षित हैं । क्षुधा के शमन करने का और कोई चारा उनके पास नहीं । शासक लोग अपनी अपनी स्वार्थ लिप्सा में मग्न हैं; साधारण प्रजा की भूख के संबन्ध में सोचने का वक्त उन्हें नहीं। संसार की सबसे बड़ी समस्या है भूख की समस्या। इस का हल करना साधारण जन के वश की बात नहीं । वे शासकों के इंगित के अनुसार चलते हैं । अपने भाग्य का निर्णय करने में भी वे स्वतन्त्र नहीं ।

प्रस्तुत रचना सत्य के महत्व पर ज़ोर देती है । समसामयिक युग में सत्य को स्वीकार करने में लोग विमुख होते हैं । सत्य में है जीवन की सार्थकता । जीवन के वास्तविक सत्य को खोजने को शंकर तैयार हो जाते हैं । "ब्रह्मा विजयी होने के लिए सत्यवादी होना अनिवार्य मानते हैं । "[1] इन्द्र को समझाते हुए ब्रह्मा यही कहते हैं कि "प्राणों की आहुति युद्ध के लिए नहीं, सत्य के लिए होती है।"[2]

दक्ष राजतन्त्री व्यवस्था का प्रतीक है तो ब्रह्मा लोकतन्त्री शासन का प्रतीक है । दक्ष के शासन काल में सारी प्रजा अस्वतन्त्र थी । अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता उन्हें नहीं थी । आदर्शों का वहन करना और सुनना मात्र उनका स्वभाव था । सर्वहत के माध्यम से रचनाकार यह व्यक्त करते हैं कि आज के मनुष्य की नियति भी राजनीति पर आश्रित है । आम जनता किसी भी व्यवस्था की पीड़ा को सहने के लिए बाध्य है ।

---

1 'एक कंठविषपायी' दुष्यन्तकुमार पृ. 98
2. वही पृ. 106

यह गीतिनाट्य युद्ध के औचित्य और अनौचित्य पर विचार व्यक्त करता है । चीनी आक्रमण के उपरान्त हमारे नेता युद्ध की चुनौती को स्वीकार करने में विमुख थे । उस समय स्वत्व रक्षा और युद्धविरोधी मानवीय आदर्श के बीच संघर्ष चल रहा था । शाँति और अहिंसा के पथ पर अग्रसर होने वाले नेता युद्ध को व्यर्थ और अमानवीय मानते थे । इस गीतिनाट्य का पात्र ब्रह्मा युद्ध को व्यर्थ मानते हैं तो इन्द्र आदि देवता युद्ध के पक्षधर हैं । विष्णु की राय में राष्ट्र की कल्याण कामना से प्रेरित युद्ध उचित है । इसमें पौराणिक कथा के सहारे समसामयिक चेतना को व्यक्त करने का प्रयास रचनाकार ने किया है । ब्रह्मा युद्ध को एक मात्र समाधान और अनिवार्य नहीं मानते । ब्रह्मा आदर्शों का पालन करनेवाले राष्ट्रनायक का प्रतिनिधिच्व ग्रहण करते हैं । वे युद्ध को "सामूहिक आत्मधात"[1] मानते हैं ।[1]

कुबेर का चरित्र पूँजीवादी प्रवृत्ति का द्योतक है । पूँजीवाद में भावनाशून्यता, स्वार्थता, अवसरवादी प्रवृत्ति आदि देख सकते हैं ।

इन्द्र सत्ता बनाये रखने के लिए युद्ध को अनिवार्य मानते हैं । इन्द्र युद्ध लिप्सु शासकों का प्रतिरूप हैं । उसमें आधुनिक शासकों की तरह अहं की भावना है । आज के शासक अपनी इच्छानुसार नियमों का परिवर्तन कर उन्हें अपने लिए अनुकूल बना लेते हैं । वर्तमान युग में भी अधिकार प्रमत्त शासक हैं । वे अपने अधिकार को बनाए रखने के लिए अपनी कुर्सी को दूसरों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते । इन्द्र इसतरह के सत्ताधारी वर्ग का प्रतीक है । विष्णु नागरिकों की राय को स्वीकार करके युद्ध का आह्वान करते हैं; लेकिन सचमुच युद्ध करने की मनःस्थिति उन में नहीं है । वे युद्ध का आह्वान करने के साथ साथ शिव के चरणों में प्रणाम बाण छोड देते हैं जिसे शिव ने स्वीकार कर सैन्य को लौटा लिया जिससे युद्ध टल गया । इसमें युद्ध के प्रति दुष्यन्तकुमार ने असहमति प्रकट की है । डॉ. हुकुमचन्द्र राजपाल के शब्दों में

---

1 एक कंठविषपायी दुष्यन्तकुमार पृ. 98

"युद्ध आधुनिक युग की अवश्यम्भावी स्थिति रही है और इसी आशंका तथा स्थिति से बचाव का लेखक ने अत्यन्त सफलता पूर्वक समाधान प्रस्तुत किया है ।"[1]

शिवगणों द्वारा किया गया आमानवीय कृत्य आज के लिए भी प्रासंगिक है । संसार में रक्त पात किसी न किसी समस्या को लेकर घटित होता है । लेकिन इसका परिणाम बहुत बुरा होता है । इसके फलस्वरूप पूरे संसार में अशान्ति और सामाजिक जीवन में अव्यवस्था छा जाती है । युद्धोपरान्त हमारी संस्कृति के नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है । लोगों के मन में भय और आशंका जाग्रत होते हैं । निरीह लोग अपाहिज बन जाते हैं । अबोध शिशु को भी इसका फल भोगना पड़ता है । कितने ही अबोध-बच्चे राजनीति में हुए विद्रोह के शिकार बन गए हैं ! युद्ध से मानव का सर्वनाश संभव है । युद्ध की समस्या देश काल से परे रहती है । युद्ध का प्रभाव सब पर पड़ता है । युद्ध के फलस्वरूप भूख, मूल्य विघटन, मृत्यु, कायरता कुंठा, निराशा आदि उत्पन्न होते हैं ।

प्रस्तुत गीतिनाट्य में आधुनिक युग की राजनीति, भूख, युद्ध की विभीषिका, अमानवीयता और पुरानी परंपराओं का खण्डन कर युगानुरूप नवीन मूल्यों की स्थापना आदि प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं । आधुनिक समस्याओं का यथार्थचित्रण इस रचना की खास विशेषता है ।

उपर्युक्त गीतिनाट्यों के विश्लेषण से यह जाहिर होता है कि इनमें से अधिकांश गीतिनाट्यों में युद्ध को मुख्य विषय बनाया गया है । विश्वयुद्धों के बाद विश्व में सदा मौजूद युद्ध का काला बादल आधुनिक मानव की शांति का भंग करते आ रहा है । युद्ध की आवश्यकता एवं अनावश्यकता पर चिंतित आधुनिक मानव की मानसिकता का प्रतिबिंब है युद्ध केन्द्रित ये गीतिनाट्य । दुनिया की साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए अनावश्यक मुद्दों को उभार कर अन्य देशों की आँखों में धूल झोंककर छोटे छोटे स्वाबलंबित-स्वतंत्र देशों पर आक्रमण करती हैं। इनका एकमात्र लक्ष्य अपनी शक्ति का विस्तार करना है ।

---

1 डॉ. हुकुमचन्द राजपाल, ''नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका' पृ. 67

इसलिए ये गीतिनाट्य समकालीन संदर्भ में शांति स्थापना के संबंध में सोचने केलिए हमें विवश करते हैं ।

नारीचेतना से संबंधित कई गीतिनाट्य नारीशोषण के प्रति हमें सजग करते हैं । अनार्द्र पारिवारिक संबंध एवं विघटित मानव मूल्यों पर भी मिथकों के ज़रिए ये गीतिनाट्य प्रकाश डालते हैं । आज के मानवीय जीवन को कई प्रकार से परोशान करनेवाली कई जीवंत समस्यायें आकर्षक मिथकीय पात्र एवं घटनाओं के माध्यम से पेश करनेवाले ये गीतिनाट्य ज़रूर मिथकों के सफल प्रयोग हैं । वर्तमान जीवन की जटिल समस्याओं की गुत्थियों को सुलझाने के लिए पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रतीकों को स्वीकार करना अत्यन्त उपयोगी है । इन पौराणिक संदर्भों में मानवीय अनुभवों को अभिव्यक्त करने की ताकत है । पौराणिक या ऐतिहासिक संदर्भों को सम्मुख रखकर समकालीन समस्याओं को खोजना अत्यन्त आसान है । इस अध्याय में प्रतिपादित सभी गीतिनाट्यों में चित्रित मिथक तत्व आज के युग के लिए ज़्यादा प्रासंगिक है ।

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकतत्व
(1965 से लेकर अब तक)

समकालीन हिन्दी गीतिनाट्यों में मिथकतत्व
(1965 से लेकर अब तक)

समकालीन गीतिनाट्यों में रचनाकारों ने ऐतिहासिक या पौराणिक संदर्भों को सम्मुख रखकर मानव की मूलभूत समस्याओं को उठाया है । आधुनिक रचनाकारों के लिए इतिहास या पुराण एक साधनमात्र है जिनका प्रयोग वे अपनी वाणी को अधिक परिपुष्ट एवं प्रभावशाली बनाने केलिए करते हैं । इन गीतिनाट्यों में ऐतिहासिक या पौराणिक पात्रों के चरित्रों या घटनाओं को प्रमुखता नहीं, गीतिनाट्यकारों ने अपनी मर्जी से इन्हें अपने कथ्य के अनुरूप, आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है । समसामयिक गीतिनाट्यों में अन्तर्द्वन्द्व ज़्यादा है । सत्य को खोजने का प्रयत्न भी इनमें ज़्यादा है। वे आधुनिक युगबोध एवं संवेदनाओं की प्रस्तुति हैं । इनमें मानवोचित भावनाओं एवं मानवीय असंगतियों का यथार्थ चित्रण मिलता है । रंगमंच की दृष्टि से भी समसामयिक गीतिनाट्य अत्यन्त सफल हैं । इनमें प्रगतिशील चेतना प्राप्त होती है । उत्तरप्रियदर्शी, सूतपुत्र, अग्निलीक, प्रवादपर्व आदि समसामयिक गीतिनाट्यों में प्रमुख हैं । साठोत्तर गीतिनाट्य आपातकालीन स्थिति की भयावहता की पृष्ठभूमि में लिखे गए हैं । स्वतन्त्रता के बाद शासक या अधिकारी वर्ग समस्त अधिकारों को कब्जे में रखकर सुविधा भोगी बन गए । ये गीतिनाट्य आज के व्यक्ति की मानसिक स्थितियों अर्थात् कुंठाओं, तनाव, मूल्यच्युति आदि को अभिव्यक्त करते हैं ।

उत्तरप्रियदर्शी

सन् 1967 में अज्ञेय द्वारा लिखित गीतिनाट्य है "उत्तरप्रियदर्शी'। 'उत्तरप्रियदर्शी' पर जापानी 'नो' नाटकों का प्रभाव है । यह गीतिनाट्य रंगमंचीयता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । वर्तमान युग बोध की सशक्त प्रस्तुति है यह रचना । कलिंग विजयी सम्राट अशोक की

ऐतिहासिक कथा पर आधारित प्रस्तुत कृति में कलिंग युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद अशोक के मन में हुए परिवर्तन का प्रसंग है । कलिंग विजय तक अशोक अत्यन्त क्रूर शासक थे । कलिंग विजय के बाद उन्हें विरक्ति हुयी और उन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया । प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान और हुएन् सांङ् के यात्राविवरणों से अज्ञेय को इसकी सूचना प्राप्त होती है । क्रूर शासक ने अपने राज्य पाटलीपुत्र की नगर सीमा के बाहर घोर नामक दुष्ट व्यक्ति की सहायता से एक नरक बनवाया । अशोक ने नृशंस घोर को इस नरक पर पूर्ण अधिकार दिया । नरक की सीमा में आने वाले चाहे वह सम्राट अशोक ही क्यों न हो सभी को दारुण दंड देने का आदेश घोर को दिया गया । कुछ दिन बाद एक भिक्षुने भिक्षा माँगता हुआ नरक के द्वार के भीतर प्रवेश किया । घोर और उसके गणों ने उसे पकड़ लिया और यंत्रणा देने का प्रयत्न किया । लेकिन भिक्षु के प्रभाव से नरक की ज्वाला शान्त हो गयी । यह समाचार पाकर सम्राट अशोक भी वहाँ पहूँचे और उन्हें भी नरक की घोर यंत्रणा मिली, लेकिन भिक्षु के धर्मोपदेश से अशोक को यंत्रणा से मुक्ति मिली ।

'उत्तरप्रियदर्शी' में हिंसा-अहिंसा, आस्था-अनास्था, युद्ध और शान्ति आदि के द्वन्द्व हैं । वे द्वन्द्व वर्तमान युग में भी मौजूद हैं । इस गीतिनाट्य में अशोक के अहं की भावना को मनोवैज्ञानिक ढंग से रचनाकार ने अंकित किया है । अशोक इसमें सामान्य मानव का प्रतीक है । विजय लब्धि होने पर पहले मानव मन में अहंकार उत्पन्न होता है । यही अहंकार उसके मन में नरक की सृष्टि करता है । अहंकार के नष्ट होने पर नए मूल्यबोध और नई दृष्टि उत्पन्न होते हैं । रचनाकार के अनुसार सभी मानवों के मन में दर्प और अहंकार निहित हैं । अहंकार का नाश होने पर मानवमन स्वच्छ, पवित्र और नरक मुक्त बन जाता है । अशोक के मन का यह दर्प भाव ही नरक की सृष्टि करता है और बाद में दर्प नष्ट होकर नरक से मुक्ति होती है । आधुनिकयुग में भी दर्प भाव से प्रेरित होकर मानव अपने अन्दर मात्र नहीं बाहर भी नरक का

निर्माण करता है । वे नरक से मुक्ति प्राप्त करने का श्रम भी नहीं करते ।

"उत्तरप्रियदर्शी' में सत्-असत् का संघर्ष है और अन्त में भगवान बुद्ध के उपदेशों द्वारा सत् की स्थापना होती है । मानव स्वयं अपने हाथों से नरक का निर्माण करते हैं और स्वयं उसमें पिसते हैं । बिना प्रेम और करुणा को अपनाए इससे मुक्ति पाना असंभव है । 'मृत्यु से साक्षात्कार के बिना अमरत्व नहीं मिलता, नरक की पहचान के बिना नरक-मुक्ति का कोई अर्थ नहीं 'कठोपनिषद् ' के नचीकेता से लेकर डिवाइना कामेडिया के दान्ते तक इसके अनेक साक्षी हैं ।"[1] जब मानव करुणा और प्रेम के महत्व को जानते हैं तब उनका हृदय परिवर्तन होता है । मानव की मोहान्धता करुणा रूपी अमृत पीकर समाप्त होती है । भिक्षु के चरित्र के माध्यम से रचनाकार ने अहंग्रस्त मानव जीवन में प्रेम और करुणा के महत्व पर प्रकाश डाला है ।

अशोक से भिक्षु का कथन है

जहाँ तुम्हारे अहंकार का!
यम की सत्ता
स्वयं तुम्हीं ने दी उसको
तुम हुए प्रतिश्रुत
एक समान अकरुणा के बन्धन में!
नरक! तुम्हारे भीतर है वह! वहीं
जहाँ से निःसृत पारमिता करुणा में
उस का अघ घुलता है स्वयं नरक ही गल जाता है ।
एक अहंता जहां जगी-भव-पाश बिछे, साम्राज्य बने-

---

1 उत्तरप्रियदर्शी अज्ञेय पृ. 8

प्राचीर नरक के वहीं खिंच गये
जागी करुणा-मिटा नरक,
साम्राज्य ढहे, कट गये बन्ध,
आप्लावित ज्योति के कमल-कोश में
मानव मुक्त हुआ ! "[1]

करुणा रूपी भिक्षु के सम्मुख पशुता का प्रतीक घोर और अहंकार का प्रतीक अशोक दोनों नतमस्तक हो जाते हैं । घोर की पशुता और नृशंसता उसके कथन से स्पष्ट है

"मैं वज्र ! निष्करुण ! अनुल्लंध्य, मेरे शासन में
दया घृण्य ! ममता निष्कासित !
मैं महाकाल ! मैं सर्वतपी !"[2]

'मेरे पत्थर
उनको तोड तोड़कर पीसें,
मेरे कोल्हू
उन्हें पेर लें
लाल कड़ाहों में मेरे, उनके अवयव
चटपटा उठे खा-खा मरोड़ !
मेरे गण उनको उत्तप्त अंतः शूलों से बेंध
उछालें, पटकें, रौंदें,
मानों झड़ते पत्ते नुच का टूट-टूट
अन्धड़ के आगे नाचें, निस्सहाय निःसत्व
पिसें हों मिट्टी, अर्थहीन !"[3]

---

1 उत्तरप्रियदर्शी अज्ञेय पृ. 61-62
2. वही पृ. 46
3. वही पृ 47

उत्तरप्रियदर्शी अशोक की तरह आज का मानव भी प्रेम, करुणा, प्यार, और शान्ति की कांक्षा रखनेवाला है । मानवीय मूल्यों की खोज इस गीतिनाट्य की निजी विशेषता है । वर्तमान युग में मानव मन से प्रेम, करुणा आदि मानव मूल्य निष्कासित हो रहे हैं इन सद्भावों के बदले स्वार्थवृत्ति, बर्बरता, पशुता आदि ने स्थान ले लिया है ।

'उत्तरप्रियदर्शी' में युद्ध की समस्या भी है । युद्धोपरान्त हुए भीषण नरसंहार देखकर अशोक के मन में परिवर्तन होता है । युद्ध की विभीषिका ने उनके हृदय को परिवर्तित किया । वे बौद्ध धर्म को स्वीकारकर अहिंसा एवं प्रेम के प्रचारक बन गए । द्वितीय विश्वयुद्ध के भीषण और गंभीर विनाश और अणुशस्त्रों के प्रयोग देखकर मानव संभीत हैं । आगामी तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका से संत्रस्त हैं मानव । विश्वयुद्ध के बाद आज भी कहीं कहीं युद्ध हो रहे हैं । इससे उत्पन्न भयानक स्थिति शब्दों से परे हैं । आतंकवाद से प्रेरित होकर भीषण नरसंहार हो रहा है । करोड़ों आदमी इस के फलस्वरूप मारे जाते हैं । दिन ब दिन घोर हत्याकांड हो रहा है । आज भी विश्वशांति को भंग करनेवाला युद्ध हमारे सामने एक बड़ा प्रश्नचिह्न ही है ।

गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव गीतिनाट्य पर पड़ा है । दूसरों की गलतियों को ढूँढकर उनपर आरोप लगाना और उन्हें दण्ड देना हमारा काम नहीं है । हमें अपनी आत्मा की जाँच करनी चाहिए । गलतियाँ सब करते हैं । इन्हें पहचानकर गलतियों को सुधारने में है मनुष्य का महत्व । इससे अच्छे समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है । मनुष्य असत् के मार्ग पर चलकर नरक की सृष्टि करता है; फिर प्रेम और करुणा के द्वारा हमें उसे स्वर्ग बनाना चाहिए । स्वर्ग और नरक दोनों का निर्माण मानव स्वयं करते हैं । इससे हम स्वयं अपनी नियति के निर्माता बन जाते हैं । परोक्ष रूप से मौजूदा व्यवस्था में जो शासकवृंद है उनके साम्राज्यवाद का सच्चा पर्दाफाश शुरू में अशोक के कलिंग युद्ध के द्वारा हुआ । साम्राज्यवाद के दुष्परिणाम को

अशोक जैसे सम्राट ने समझ लिया और उन्होंने इस से हट जाने का निर्णय लिया । लेकिन हमारी वर्तमान व्यवस्था में इसकेलिए कितने सम्राट तैयार हो जायेंगे और अपनी भूल को समझेंगे । इसलिए उत्तरप्रियदर्शी युद्ध की विभीषिका को खुलकर प्रकट करने के साथ आज के साम्राज्यवाद का खुला सा चित्र भी पेश करता है ।

सूत पुत्र

श्री विनोद रस्तोगी द्वारा, सन् 1974 में रचित, महाभारत के प्रख्यात प्रसंग पर आधारित गीतिनाट्य है "सूतपुत्र'। यह गीतिनाट्य महाभारत के प्रसिद्ध पात्र कर्ण के जीवन पर आधारित है । इसमें कर्ण के जन्म से लेकर मृत्यु तक की घटनाएँ चित्रित हैं । प्रस्तुत गीतिनाट्य वर्तमान युग में भी प्रचलित जाति पाँति की व्यवस्था पर एक सशक्त प्रहार है । 'सूतपुत्र' की मुख्य समस्या है व्यक्ति का महत्व अपने जाति, वंश या गोत्र पर निर्भर है या उसके अपने कर्म पर ? अपने पौरुष, वीरता, त्यागभावना, निर्भीकता, दानशीलता आदि से कर्ण को इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान मिला है । गीतिनाट्यकार ने इसमें कर्म को उदात्त रूप प्रदान किया है । कर्ण के अंतसंघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति है प्रस्तुत गीतिनाट्य ।

'सूतपुत्र' में दो अंक हैं । प्रथम अंक में ही कर्ण की दानशीलता का परिचय मिलता है । कर्ण अपने धर्म पर अटल रहकर इन्द्र को कवच कुण्डल दान में देता है । दूसरे अंक में कृष्ण सन्धि-प्रस्ताव लेकर कौरव सभा में उपस्थित होते हैं । दुर्योधन द्वारा सन्धिप्रस्ताव का तिरस्कार होता है । सन्धिप्रस्ताव के विरुद्ध कर्ण दुर्योधन का साथ देता है । कर्ण के निवासस्थान् पर आकर कृष्ण पाण्डव की ओर से कौरव के विरुद्ध युद्ध करने की प्रेरणादेते हैं । किन्तु कर्ण अपने निर्णय पर अटल रहता है । कृष्ण के लौटने के बाद आए माता कुन्ती की प्रार्थना का तिरस्कार भी वह करता है । कुन्ती कर्ण के सम्मुख उसके जन्म के संबन्ध में कहती है । कुन्ती

को स्वमाता जानते हुए भी वह अपने निर्णय को नहीं बदलता । वह अर्जुन को छोड़कर शेष को प्राणदान देने का वचन कुन्ती को देता है । हमेशा अपने निर्णय पर अटल रहने का दृढ़ स्वभाव कर्ण में मौजूद है । महाभारत के सत्रहवें दिन कर्ण द्रोणाचार्य के नेतृत्व में युद्ध का संचालन करता है । उन के रथ का पहिया कीचड में फँस जाता है । उसे निकालने के लिए शल्य की सहायता वह माँगता है । लेकिन शल्य के इनकार से वह स्वयं विवश होकर पहिया निकालने का श्रम करता है । उसी समय अवसर को अनुकूल समझकर कृष्ण की प्रेरणा से नि:शस्त्र कर्ण पर अर्जुन बाण छोड़ता है । कृष्ण की अनुमति से कर्ण सूर्यलोक में जाता है । यहाँ गीतिनाट्य का अंत होता है ।

कर्ण की दानशीलता और महानता के सम्मुख इन्द्र का देवत्व भी हतप्रभ हो जाता है । इस कारण से बिना माँगे ही कर्ण को वह एक शक्ति प्रदान करता है । निरंतर अपमान की ज्वाला में कर्ण जलता है । सूतपुत्र होने के कारण उसका जीवन अभिशप्त है । कुन्तीपुत्र होने पर भी सूत के द्वारा लालन पालन करने के कारण कर्ण सूतपुत्र कहलाया । अपना अभिशप्त जीवन कर्ण को ज़हर जैसा लग रहा है । वह व्यथित होकर कहता है

'धरती फटी नहीं, टूटा नहीं वज्र
और गिरी नहीं बिजली
मैं रहा जीवित, अपमान, गरल पीकर भी।"[1]

सूतपुत्र होने की वजह से उसे अस्त्र शस्त्र प्रदर्शन से अपमानित होकर लौटना पड़ता है । द्रौपदी का वरण करने के लिए वह पाँचाल देश में पहूँचता है । वहीं से भी उसे अपमान प्राप्त होता है । अपमान का बदला लेने के लिए ब्रह्मास्त्र विद्या सीखने के लिए वह परशुराम के पास पहूँचता है । किन्तु उसके प्रच्छन्न रूप की पहचान होने पर परशुराम उसे शाप देता है

---

1 सूतपुत्र विनोद रस्तोगी पृ 35-36

और फिर उसे परशुराम से वरदान भी प्राप्त होता है । कर्ण में आधुनिक मानव की तरह बेबसी, मानवोचित दुर्बलताएँ, कुंठा, निराशा आदि हैं । ''अवैध सन्तान और निम्नकुल में पालित होने के कारण उसे कई बार प्रतियोगिताओं से बहिष्कृत होना पड़ता है । दूसरों के समुख वह हमेशा अवहेलना, जुगुप्सा और तिरस्कार का पात्र बन जाता है । आज भी हमारे समाज में अवैध सन्तान की शोचनीय स्थिति है । विवाह से पूर्व कुन्ती का जो संबन्ध था वह उसके जीवन में आद्यन्त पीड़ा देता है । आज के युग में भी कुन्ती जैसी माताएँ अविवाहित अवस्था में उत्पन्न संतान को लोकलाज के भय से छोड देती हैं । कर्ण आज के शोषित और दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व भी करता है । वह सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह प्रकट करता है । वर्तमानयुग में भी 'संवैधानिक आरक्षणों के बावजूद भी जीवन की प्रतियोगिताओं में एक विशेष सुविधा भोगी वर्ग ही आगे बढ रहा है । इसमें कर्ण का संघर्ष मानवीय धरातल पर समकालीन परिभाषा देता है और समकालीन व्यक्ति के जहाद से जुड़ता लगता है ।"[1]

इस गीतिनाट्य के मानवोचित ममत्व का प्रतीक है परशुराम । वे कर्तव्य निष्ठ हैं । कर्ण का प्रच्छन्न रूप पहचानकर वे पहले क्रोधित हो जाते हैं । क्रोध से जलकर वे कर्ण से पूछते हैं

"बोल, दुष्ट, पातकी, नराधम तू कौन है ?
शीघ्र बोल तेरा है वर्ण क्या ?
कुल-वंश गोत्र क्या ?
यदि असत्य बोला तो
भस्मकर दूँगा अभी "[2]

असत्य कहने के लिए जब वह परशुराम से क्षमा माँगता है तब परशुराम का दयार्द्र रूप प्रकट होता है । वे कर्ण को पुत्रतुल्य मानकर प्राण दान देते हैं । लेकिन इसके साथ साथ

---

1 विनोद रस्तोगी की नाट्य साधना डॉ. विनोद पटेल पृ. 87

2. सूतपुत्र विनोद रस्तोगी पृ 44

अन्तिम वेला में ब्रह्मास्त्र विद्या भूल जाने का अभिशाप भी देते हैं । फिर कर्ण की अदम्य गुरु भक्ति और श्रद्धा के सम्मुख उनका क्रोध पिघल जाता है । लेकिन अभिशाप वापस नहीं लौटा जा सकता । इसलिए वे यह वरदान देते हैं कि मृत्यु को पाकर तू अमर हो जाए । परशुराम और कर्ण के चरित्र के माध्यम से आज नष्ट हो जाने वाले शिष्यस्नेह और कर्तव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । कर्ण की तरह सत्यवादी लोग भी इस दुनिया में बहुत कम ही मिलते हैं ।

महाभारतयुग में प्रचलित समाज पुरुष को प्रधानता देता था । इसके फलस्वरूप उस काल में नारी के प्रति अत्याचार, अन्याय और उसका अपमान दिन ब दिन बढ रहे थे । नारी शोषण की समस्या अनादि काल से ही दुनिया में मौजूद ज्वलन्त समस्या है । इक्कीसवीं सदी में भी इस समस्या का समाधान नहीं हुआ है । आज भी नारी अन्याय, अत्याचार और अपमान का शिकार बन रही है । इस गीतिनाट्य का 'अरजा' नामक पात्र आज के नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है । वह सात्विकता और पवित्रता का प्रतीक थी । अरजा, अंबा, सीता आदि नारियाँ पुरुष के द्वारा भोग्य होने के बाद भर्त्सना और तिरस्कार का शिकार बनती हैं जो अपने दासता की जंजीरों को तोड़कर मर्यादा एवं अधिकार को प्राप्त करना चाहती हैं । वे नारी स्वातन्त्र्य के लिए आवाज़ उठाती हैं और विद्रोह करती हैं । रचनाकार ने इसमें पौराणिक काल के पीड़ित, शोषित और दलित नारी का चित्रण कर उसमें आधुनिक नारी की समस्याओं का आरोप सुन्दर ढंग से किया है ।

कर्ण के माध्यम से रचनाकार ने आज के युग में उपस्थित जातिपाँति के भेद भाव पर प्रहार किया है

> "थोथे ही नहीं, हैं शोषण के आधार !
> विभाजित करते हैं, मानवता को
> रचते हैं, घृणा -द्वेष भेद की भित्तियाँ ।"[1]

---

1 सूतपुत्र विनोद रस्तोगी पृ 51

निम्न कुल में 'जन्म लेने के कारण उसके अपमान और पराजय नित्य हो रहे थे । अन्याय के प्रति वह अपना आक्रोश प्रकट करता है । सूतपुत्र होने के कारण हुए अपमान, अवहेलना आदि को मिटाने का प्रयत्न वह करता है । यह विद्रोह भावना समसामयिक युग के निम्नवर्ग के लोगों में मौजूद है ।

अग्निलीक

हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार और प्रतिष्ठित कवि श्री भारत भूषण अग्रवाल द्वारा सन् 1976 में रचित गीतिनाट्य है 'अग्निलीक' । यह रचना उनके अंतिम दिनों की रचना है । रामकथा के जिस करुण प्रसंग ने भवभूति को उत्तर रामचिरत लिखने की प्रेरणा दी, उसी करुण प्रसंग को लेकर भारतभूषण अग्रवाल ने 'अग्निलीक' की रचना की । इसमें रामकथा के सीता वनवास प्रसंग को उठाकर भारतभूषण जीने उसे आधुनिक दृष्टिकोण से परखा है । पौराणिक आधार को लेकर रचे गए इस गीतिनाट्य का मूलस्वर आधुनिक चेतना का है । इस कृति के मुख्यपात्र राम और सीता रामायण और रामचरितमानस के राम और सीता से बिलकुल भिन्न हैं । यहाँ राम एक राजा है और सीता एक प्रजा । सीता के निर्वासन और तदुपरान्त हुए परिणामों के माध्यम से गीतिनाट्यकार तत्कालीन समाज के शासकों के चरित्र को उजागर करना चाहते हैं । इसमें त्रेतायुगीन मर्यादापुरुषोत्तम राम के चरित्र में उनके निजी सामाजिक और शासकीय रूपों में मानवीय आयाम खोजने का प्रयास है । जन-श्रद्धा के पात्र राम के चरित्र के अन्तर्विरोधों को पत्नी सीता, रथवान, आदिवासी चरण आदि के प्रसंगों से दिखाया गया है जिससे राम-का मिथक अलौकिक और अतिमानवीय रूप छोड़कर मानवीय रूप प्राप्त कर लेता है ।

'रामायण' में राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं । वे जिस वर्गमूलक समाज के निर्माता, प्रयोक्ता

और रक्षक थे, उसमें राजा होने के कारण वे ईश्वर तुल्य हैं; पति होने के कारण पत्नी के लिए भी ईश्वर हैं । लेकिन वे अपनी पत्नी के प्रेम और त्याग को महत्व न देकर आदर्श राजा बनने के प्रयत्न में लगे रहे तो सीता भी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को पहचान गयी । वाल्मीकि जहाँ राम के देवत्व को उभारने का प्रयत्न करते रहे तो भारतभूषण राम की मानवीय कमज़ोरियाँ सामने लाते हैं और उन्हें सामयिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं । वाल्मीकि हमेशा राम के पक्ष में रहे तो भारतभूषण जी सीता का पक्ष ही लेते हैं । राम सामन्तवादी आर्यजाति का प्रतिनिधित्व करते हैं । नेमिचन्द्र जैन ने 'अग्निलीक' की भूमिका में लिखा है "विशेषकर राजनेता के रूप में वह राम को आदिवासी जातियों के विरुद्ध आर्यों के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित करना चाहते थे ।"[1] रामने लोक की सामूहिकता पर बल दिया है । व्यक्ति स्वातन्त्र्य और लोकसामूहिकता के बीच का द्वन्द्व यहाँ दृष्टव्य है । राम आधुनिक युग के राज्य लिप्सु शासक के प्रतिनिधि हैं । राज्य में अकाल के समय में भी वे राज्य विस्तार के लिए अश्वमेध यज्ञ का आयोजन कर दिग्विजयी बनना चाहते हैं । गीतिनाट्य के अंत में राम का पश्चात्ताप दिखाकर गीतिनाट्यकार ने सामाजिक और राजनैतिक संदर्भ में मानव के रूप में शासकीय सीमाओं को परखते हुए राम के मिथक के आदर्श में ही परिणति दिखाते हुए वर्तमान संदर्भों में रामराज्य के आदर्श स्वरूप और आदर्श शासक की कल्पना को जनहित में साकार करना चाहा है । अंत में राम का आत्मसमर्पण है । वे कहते हैं

"देवी तुम धन्य हो।
जब यह अधम राम राजाधिराज बनकर
अपनी पत्नी से, प्रजा से, संतति से
और अपनी भूमि के जीवन से मुँह मोड़कर
चाटुकारों से भरे एक संकीर्ण वृत्त में

---

1 'अग्निलीक' भारतभूषण अग्रवाल पृ. 8

यशोगान सुनने में व्यस्त था
जब तुम जीवन का अलख जगाती हुई
धरती की सच्ची सन्तान की भाँति
धरती के जीवन से जुड़ रही ।"[1]

राम अन्त में सीता के विरुद्ध की गयी अपनी नृशंसता के बारे में सोचकर पश्चात्ताप विवश हो जाते हैं । वे अपनी भूल स्वीकार करते हैं ।

इस गीतिनाट्य में चित्रित पात्र सीता आधुनिक जागरूक नारी का प्रतीक है । वह पौराणिक सीता की तरह अन्यायों को सहना पसन्द नहीं करती । वह राम के द्वारा किए गए अनाचारों एवं अन्यायों का खुल्लं खुल्ला विरोध प्रकट करती है । 'अग्निलीक' की सीता आधुनिक नारी की तरह वाक्पटु है । आज की नारी विद्रोहिणी है, नारीमुक्ति की चाह रखनेवाली है । इसमें सीता यथार्थ के धरातल पर खड़ी रहती है । सीता के माध्यम से नारी के स्वतन्त्रता बोध का परिचय भी भारतभूषण जी देते हैं । राम ने सीता के प्रेम और भावनाओं को महत्व नहीं दिया । सीता सामान्य नारी की भाँति ममता की कांक्षा रखनेवाली है । जीवन भर वह राम से प्रेम करती रही । लेकिन राम हमेशा राज्य, राजनीति, संग्राम और दिग्विजयी बनने की इच्छा में लगे रहे । सीता राम के दिग्विजय -अभियान से असन्तुष्ट हैं; विशेषतः जब देश में अकाल और विपदा हो । उसका कथन है

"जब सारी भूमि अभावों से ग्रस्त है
पीडा से त्रस्त है
क्या लक्ष्य है इसका
मेरे प्रभु अब भी नहीं जान पाये
तुम्हें दिग्विजयी नहीं आत्मजयी बनना है।"[2]

---

1 'अग्निलीक' भारतभूषण अग्रवाल पृ. 62
2. वही पृ. 30

उपर्युक्त पंक्तियों से पता चलता है कि सीता आत्मविजय को दिग्विजय से अधिक मूल्यवान समझती है । इसमें सीता अश्वमेध की तीव्र और कटु आलोचना करती है । वह वाल्मीकि को रामराज्य का चारण तक कह देती है । नारी की असहाय स्थिति से दुःखी होकर वह राम पर, उनके वंश और राज्य पर तीखे प्रहार करती है । पुत्रों का अनुरोध भी उसे विचलित नहीं कर पाता । वह धरती में समा जाती है जहां उसे राजा की या समाज की कृपा की ज़रूरत नहीं । सीता का बलिदान राम को अपनी नृशंसता के बारे में सोचने की प्रेरणा देता है । अन्त में राम निश्चय करते हैं कि भविष्य में अपने आँसुओं से राम का गौरव बढायेंगे । वे कहते हैं

"और अपनी आँखें
प्रजा के चेहरे से हटाकर
राजदण्ड पर लगाते रहा हूँ ।
नहीं, औरों का कोई दोष नहीं है
आदर्श प्रदर्शन के जिस घटाटोप में
मैं आबद्ध रहा हूँ
वह मेरी भ्रांति थी
मेरी कठोरता ने ही मुझे जड बनाया था ।
थोथी मर्यादा का पल्ला पकड़कर
मैं प्रजा का सुख भी बिखार बैठा।"[1]

सीता राम के अन्तर्विरोधों को उघाड़ती ही नहीं, राम को राज्य लिप्सु सिद्ध करने की चेष्टा भी करती है और अंत में आधुनिक नारी की स्वतंत्र निर्णय शक्ति और अपने पृथक्

---

1 'अग्निलीक' भारतभूषण अग्रवाल पृ. 63

अस्तित्व की उद्‌घोषणा के साथ राम को त्यागकर उनके प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए खड्‌ड में कूदकर प्राण दे देती है

"मुझे निर्मम सत्य दिखाई देने लगा गया है ।
राम ने तो मुझे बहुत पहले ही छोड दिया था
आज मैं भी राम को छोडती हूँ ।
अब मैं स्वतन्त्र हूँ, मुक्त हूँ
अपने आप में पूर्ण हूँ;
आप अपनी निर्देशिका; आप अपनी कर्त्री और
आप अपनी भोक्ता हूँ ।"[1]

इसप्रकार सीता की मनोव्यथा का सुन्दर अंकन प्रस्तुत गीतिनाट्य में प्राप्त होता है । परंपरागत नैतिक मूल्यों की रूढ़िग्रस्तता के विरुद्ध आधुनिक मनुष्य में एक तीव्र विक्षोभ होता है । इसी विक्षोभ के कारण सीता सोचती है

"और मैं सबके संकेतों पर चलती रही
अपनी निष्ठा की चादर ओढ़े
अपने प्यार का दीप जलाये
अब मैं ने वह चादर उतार फेंकी है
और वह दीपक फूँक मारकर बुझा दिया है "[2]

सीता के तेजस्वी और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व की झलक यहाँ मिलती है । वह राम के राजतंत्र की कटु आलोचना भी करती है । सीता का यह व्यक्तित्व राम के मिथक की परंपरा

---

1 'अग्निलीक' भारतभूषण अग्रवाल पृ. 55
2. वही

को चुनौती देता है । सीता इस में युगों से शोषित, पीड़ित नारी का प्रतिरूप है । रामायण में सीता पति को परमेश्वर माननेवाली है, पति के लिए सबकुछ सहनेवाली है, एक भारतीय नारी के सभी आदर्श उसमें विद्यमान हैं । इस गीतिनाट्य की सीता पतिव्रता है, स्नेह और त्याग की प्रतिमूर्ति है । रावण द्वारा अपहत किए जाने पर उसने अपनी पवित्रता को अग्निपरीक्षा द्वारा प्रमाणित किया । लेकिन किसी नासमझ की बात सुनकर राम ने उसी सीता का परित्याग किया । तब वह राम के पुत्रों की माँ बननेवाली थी । इसके विरुद्ध रामायण की सीता ने आवाज़ नहीं उठाई, क्योंकि वह उस समाज की देन है; जिसमें नारी विद्रोह नहीं कर सकती थी । लेकिन 'अग्निलीक' की सीता का दृष्टिकोण यथार्थवादी है । जीवन के कटु अनुभवों ने उसमें विद्रोह का भाव जगा दिया । सीता के विद्रोहिणी नारी रूप को आद्यन्त बनाए रखने में रचनाकार असफल हो जाते हैं । इस के परिणाम स्वरूप साधारण आदमी की तरह सीता भी नियति के पथ पर चलने को बाध्य हो जाती है । शिक्षा के प्रचार प्रसार एवं व्यावहारिक परिस्थितियाँ नारी को परंपरागत बन्धनों को तोड़ने की प्रेरणा देती है । आज की नारी पति का गुलाम बनकर जीना नहीं चाहती । उसे स्वयं निर्णय लेने की ताकत और अधिकार है । आधुनिक नारी का अंतःसंघर्ष सीता में मौजूद है ।

इस गीतिनाट्य के अन्य पात्रों में प्रमुख हैं चरण और रथवान । चरण नामक पात्र आदिवासी समाज के मोहभंग और आक्रोश का प्रतीक है । दलित पीड़ित आदिवासियों के प्रतिनिधि के रूप में चरण का चित्रण करके आधुनिकयुग के आदिवासियों की समस्या की ओर भारतभूषण जी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं । वह सत्तावर्ग के शोषण से पीड़ित है । आधुनिकयुग में आदिवासियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय है । आज के नवजागृत जन आदिवासियों को अपने में एक नहीं मानते । उन्हें न खाने के लिए भोजन है और न पीने के लिए पानी । उन्हें रहने केलिए अब ज़मीन भी नहीं है । भूमिरहित आदिवासियों की समस्या आज की ज्वलन्त समस्या है ।

विवाह की समस्या भी इसमें है । विवाह स्त्री और पुरुष के बीच में होनेवाला एक समझौता है । राम और सीता के बीच इस समझौते का अभाव है । आदर्श सम्पन्न और पतिव्रता नारी होने पर भी राम ने सीता के साथ बार बार अन्याय किया । आज की दुनिया में भी पत्नी के प्रति अन्याय करने वाले पति अनेक हैं । पारिवारिक जीवन में पति और पत्नी दोनों को सुख-दुःखों में सहभागी होना आवश्यक है । लेकिन आज समाज में स्त्री के प्रति पुरुष का उपेक्षा भाव ज़्यादा देखा जा सकता है ।

सीता के प्रति रथवान के मन में आदर है । दुर्मुख की बात सुनकर राम के द्वारा सीता को वनवास देनेके कृत्य से वह क्षुष्ध भी है । निम्नलिखित पंक्तियों में रथवान का मनोभाव स्पष्ट हुआ है

"एक पगले की बात तो सुनी गई
पर सारी प्रजा को अंधेरे में रखा गया ।
अगर हमें उसी समय पता चल जाता
तो क्या आप सोचते हैं
यह दुर्घटना हो पाती?
पर राज्य के मोह में डूबे
महाराज को हमारा ध्यान ही नहीं आया
और देश की लक्ष्मी देश से चली गयी।"[1]

सीतापरित्याग के संवेदनापूर्ण क्षणों का साक्षी होने के कारण उसका आक्रोश न्याय संगत और मानवीय लगता है । उसका यह दुःख है कि वह राम की प्रजा है । यह प्रस्ताव रामराज्य की आदर्श कल्पना के प्रति लोक आस्था को शंकालु बनाता है । सीतात्याग के संदर्भ में रथवान के कड़े संवाद राम के मानवीय अन्तर्विरोध को दर्शाते हैं और राम के प्रति परंपरागत श्रद्धा को तोड़ते' हैं । रथवान सामान्य जन का प्रतिनिधि है । वह राजपुरुषों और

---

1 'अग्निलीक' भारतभूषण अग्रवाल पृ. 58

चाटुकार मंत्री और सलाहकारों के व्यवहार से असंतृप्त है । वह राम को साम्राज्यवादी एवं प्रजा पर अत्याचार करनेवाला मानकर सीता का पक्ष ग्रहण करता है । आज के साधारण मानव की तरह शोषक वर्ग के विरुद्ध आवाज़ उठाता है । वह साधारण मानव की तरह सत्यप्रिय, न्यायप्रिय और निर्भीक है ।

प्रवादपर्व

'प्रवाद पर्व' सन् 1977 में नरेश मेहता द्वारा रचित गीतिनाट्य है । उस समय राज्य में केन्द्र द्वारा लागू किया गया आपातकाल था जिसमें व्यक्ति को अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य नहीं था । 'प्रवादपर्व में उसी स्थिति का वर्णन है । रचनाकार इसमें अनाम साधारण जन की तर्जनी को राम के माध्यम से महत्व देते हैं । राम एक धोबी का कथन सुनकर सीता का परित्याग करते हैं ।

राम अनाम साधारण जन की तर्जनी को वाणी के समान मानते हैं । इस अकेली वाणी को इतिहास को प्रतिइतिहास में बदल देने की शक्ति होती है । इतिहास में महान् जनों को मात्र नहीं, साधारण जनों को भी महत्व है । यहाँ राम इतिहास का प्रतीक है तो धोबी प्रतिइतिहास का प्रतीक है । राज्यशक्ति पर प्रश्नचिह्न लगाने का अधिकार सबको है । इसलिए ही इसे सहज सत्य की अभिव्यक्ति मानकर स्वीकार करना चाहिए । यहाँ नरेश मेहता राम के माध्यम से हमारी शासन व्यवस्था में राजसत्ता से अधिक प्रधानता जनसत्ता को देते हैं । राम कहते हैं

"सत्ता के गोमुख पर बैठकर
उसके सारे शक्ति-जलों को
अपने ही अभिषेक केलिए
सुरक्षित रखना-
कह कौन सा दर्शन है लक्ष्मण ?"[1]

---

1 'प्रवादपर्व' नरेशमेहता पृ. 40-41

राम के विचारों में युगीन प्रासंगिकता स्पष्ट है । "आपातकाल में शासन की निरंकुशता एवं तत्कालीन शासकों द्वारा इतिहास की धारा को केवल अपने ही अभिषेक के लिए सुरक्षित रखने की स्वैरता साथ ही साधारण जनता द्वारा इतिहास को प्रतिइतिहास बनाकर स्वयं इतिहास बन जाने की जन· जाग्रति की घटना एक साथ घटित हुई थी ।"[1]

अच्छे शासक को संपूर्ण मानवजाति के हित को सामने रखकर न्याय करना चाहिए । भरत साधारण जन की तर्जनी को "अपराध ही नहीं राजद्रोह"[2] कहते हैं । राम न्याय को समदर्शी और तत्वदर्शी मानते हैं । राज्य सामूहिक आकांक्षा का प्रतीक है । प्रजा के भी अधिकार होते हैं । हमारी शासन व्यवस्था में जनों को मतदान देने का अधिकार मात्र है । चुनाव के बाद अधिकार प्राप्त नेतावर्ग जनहित के विरुद्ध कार्य करते हैं । सामान्य जनों के हित संरक्षण के लिए वे कुछ भी नहीं करते । राज्य के शासकों को समाज की हितपूर्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए । इसीसे समाज और राष्ट्र का विकास संभव है ।

अधिकार में डूबे राज्य और राजपुरुषों से शुभ क्या है और अशुभ क्या है; इसके संबन्ध में कहने का कर्तव्य प्रजा का है । भली भाँति राज्य के संचालन केलिए राज्य के शासकों को भलाइयों और बुराइयों को पहचानने की विवेचन शक्ति होनी चाहिए । यह शक्ति प्रजा ही उन्हें देती है । राम का कथन है

"गूँगेपन से कहीं श्रेयस है
वाचालता ।
जिस दिन
मनुष्य अभिव्यक्तिहीन हो जाएगा
वह सबसे अधिक
दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा ।"[3]

---

1 'मिथकः एक अनुशीलन' मालतीसिंह पृ. 96
2. देखिए 'प्रवादपर्व' नरेश मेहता पृ. 41
3 वही पृ. 43

अन्यायों को देखकर चुपचाप उन्हें सहना और इनके विरुद्ध आवाज़ न उठा देना अच्छा नहीं है । संसार में हरएक मनुष्य को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है । यहाँ मेहताजी ने धोबी के माध्यम से साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का खण्डन किया है । वे अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य को अनिवार्य मानते हैं । घोबी की आवाज़ आज की सामान्य जनता की आवाज़ है । आज के प्रजातांत्रिक युग में राजा-प्रजा ऐसा भेद नहीं है । राजा स्वेच्छा से नियम निर्माण नहीं कर सकता । 'प्रवाद पर्व' में राजा राम अनाम साधारण जन के अधिकार और राजपुरुषों के अधिकार में कोई भिन्नता नहीं मानते । वर्तमान युग में जब साधारण जनों का अधिकार अपहृत हो जाता है तब विद्रोह उत्पन्न होता है ।

नरेशमेहता जी पात्र रावण के माध्यम से युद्ध की आवश्यकता पर बल देते हैं । रावण अत्यन्त प्रचण्ड क्रूर शासक थे । उनके अप्रतिम व्यक्तित्व के सम्मुख नतमस्तक होकर लोग उनकेआदेशों का पालन करते थे । रावण के शासन के अधीन सारी जनता संभीत थी । वे चुपचाप रावण के नृशंस व्यवहार सहते थे । रावण से बड़ा इतिहास पुरुष कोई नहीं था । उनके सामने

"इस जाज्वल्य आधिपत्य के सम्मुख
सारी भाषाएँ
अभिव्यक्तियाँ
असहमतियाँ
भयातुर विस्फारित नेत्र बन चुकी थीं ।"[1]

लेकिन रावण के विरुद्ध उनके सगे भाई विभीषण का हाथ उठा । रावण ने अपने राज्य से उसे निष्कासित किया । इस प्रकार रावण ने प्रतिइतिहास को अभिव्यक्तिहीन बना

---

1 प्रवाद पर्व नरेशमेहता पृ. 45-46

दिया । राम ने अपने व्यक्तिगत हित की पूर्ति अर्थात् सीता की प्राप्ति के लिए रावण से युद्ध किया । लेकिन इसमें राम का व्यक्तिगत हित मात्र नहीं था । प्रत्युत भयभीत जनता ने अपने स्वत्व, स्वाधीनता, जीवनमूल्यों तथा आदर्शों केलिए रामरावण युद्ध में प्राणार्पण किया । लोककल्याण की भावना से प्रेरित यह युद्ध अनिवार्य था और समाजोपयोगी भी । शासकों को प्रजाहित को सामने रखकर और लोककल्याण की भावना से प्रेरित होकर युद्ध करने में कोई गलती नहीं। इसका अधिकार सच्चे शासक पर निर्भर है । आज के युद्धों में आणवास्त्रों की भरमार है । इनका प्रयोग जनता की भलाई के लिए करना चाहिए, बुराई केलिए नहीं । इसतरह का युद्ध राष्ट्रोपयोगी होगा । राम रावण बनना नहीं चाहते थे । इस से रावण के प्रतिकूल राम ने धोबी की वाणी को महत्व दिया । राम आदर्शवान् सत्य और न्याय पर अटल रहनेवाले प्रजाक्षेम तत्पर राजा थे । आधुनिकयुग में इसतरह के आदर्शबान् नेताओं और शासकों की संख्या ऊँगलियों में गिनी जा सकती है ।

इस कृति में राम और सीता की विवशता हम देख सकते हैं । राम अपने जीवन में राम और सीता के बीच होनेवाली क्रूर और अमानुषी लीला के संबन्ध में कहते हैं

"एक ही नाटक
व्यक्ति के जीवन में
बारम्बार दुहराया जाता है ।"[1]

"परिवेश के बदले जाने से
परिणाम नहीं बदला करते सीता ।"[2]

सीता के माध्यम से नारी की विवशता भी नरेशमेहता अंकित करते हैं । सीता कहती है -

---

1. 'प्रवाद पर्व' नरेशमेहता पृ. 64
2. 'प्रवाद पर्व' नरेशमेहता पृ. 64-65

"आर्यपुत्र !
आरंभ से ही मुझे इसकी प्रतीति थी
कि मुझे
इतिहास और
इतिहास-पुरुष के पार्श्व में
केवल एक प्रतिमा सा खड़ा होना है।"[1]

यह सीता की मात्र विवशता नहीं सारे नारीवर्ग की विवशता है । नारी को हमेशा पति की आज्ञाओं या हितों का पालन करना पड़ता है । नारी को इक्कीसवीं सदी में भी पारिवारिक या सामाजिक जीवन में पूर्णतः अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य नहीं । यहाँ नारी के स्वतन्त्रता बोध का परिचय है । आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में भी सीता राम की हितपूर्ति के लिए तैयार होती है । यहाँ नारी का आदर्श पतिव्रता रूप उभर आता है । सीता कहती है-

"राज्य, न्याय और राष्ट्र
व्यक्तियों तथा
संबन्धों से ऊपर होने ही चाहिए ।
यदि
यह उस
अनाम साधारणजन का विश्वास है
जिसे उसने निर्भय अभिव्यक्त किया है
तो राज्य, न्याय तथा आपको
उस अनाम प्रजा के विश्वास को
अभिव्यक्ति की
रक्षा करनी चाहिए ।"[2]

---

1. 'प्रवाद पर्व' नरेशमेहता पृ. 71
2. वही पृ 80

इसमें नारी के बलिदान की समस्या भी मौजूद है । प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए और साधारणजन की वाणी को महत्व देने के लिए नारी का बलिदान होता है । यहाँ भी नारी एक साधन बनजाती है । राजा-राम ने प्रजा धोबी के कथन को मात्र महत्व दिया लेकिन सीता उनकी पत्नी मात्र नहीं प्रजा भी है इस तत्व को वे भूल गए । वास्तव में राम ने सीता के प्रति अनादर प्रकट किया है । केवल एक प्रजा का स्थान भी उन्होंने सीता को नहीं दिया । धोबी के लिए राम जनतांत्रिक राजा बन गए और सीता के लिए सामंती । इसप्रकार समाज में आधुनिक युग में भी विभिन्न क्षेत्रों में अर्थात् पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्रों में नारी होने के कारण उसे न्याय नहीं मिलता है । सीता के द्वारा आज की नारी के कर्तव्यबोध का परिचय रचनाकार ने दिया है । सीता भारतीय नारी का प्रतिनिधि है । उसके आत्मसमर्पण और त्याग भावना भारतीय नारी के पवित्र और स्वच्छ चरित्र को अंकित करते हैं । वह न्याय की रक्षा अनिवार्य समझती है । उसका निम्नलिखित कथन उसका प्रमाण है -

'मैं या
कोई भी
राष्ट्र-न्याय और सत्य से बड़ा नहीं ।"[1]

इसप्रकार दिनबदिन नारी को अनेक परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है । उसे अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं । लेकिन नारी को इसतरह होनेवाले अपमान शोभनीय नहीं है । सीता राष्ट्रहित के लिए अपनी व्यक्तिगत सुख सुविधाओं और इच्छाओं को भूलकर त्याग और प्रेम की प्रतिमूर्ति बन जाती है ।

इस गीतिनाट्य के अन्त में सीता की विदाई का अत्यन्त हृदयविदारक और कारुणिक दृश्य है । यहाँ राम की विवशता ज़्यादा स्पष्ट हो जाती है । उन्होंने प्रजाहित के लिए सीता

---

1 'प्रवाद पर्व' नरेशमेहता पृ. 81

की उपेक्षा की । वे स्वयं पश्चाताप विवश होकर कहते हैं

"ऐसा अमानुषी आचरण तो
कोई वधिक भी
आसन्न प्रसवा गौ के साथ नहीं करता ।
इतिहास की कितनी बड़ी आश्वस्ति
पौराणिकता के किस अच्युत पद केलिए
इन सनातन हाहाकार का वरण किया राम ?"[1]

पूर्ण गर्भवती सीता के परित्याग से राम अतीव दुःखी हैं । यहाँ रचनाकार कर्मवाद की प्रमुखता बनाकर इसका समाधान देते हैं -

"राम ! यही है मनुष्य का प्रारब्ध, कि
कर्म
निर्मम कर्म
असंग कर्म करता ही चला जाए
भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि उसके व्यक्तित्व और
सारी रागात्मकताओं को भी काटकर फेंक दे।"[2]

हर एक व्यक्ति को निष्काम कर्म करते समय जीवन की रागात्मकताओं से अलग होना पड़ता है । जब व्यक्ति इतिहास को समर्पित हो जाता है अर्थात् समष्टि को समर्पित हो

---

1 'प्रवाद पर्व' नरेशमेहता पृ. 109
2. वही पृ. 110

जाता है तब ऐसी त्रासदी की घटनाएँ अनिवार्य हो जाती हैं ।

'प्रवाद पर्व' में राम-सीता और धोबी के माध्यम से रचनाकार ने तत्कालीन भारतीय राजनीतिक स्थितियों की नवीन व्याख्या दी है । इसमें नरेश मेहता ने समकालीन जीवन के ज्वलन्त प्रश्नों को 1975-1976 काल के आपातकाल के संदर्भ को ध्यान में रखकर समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है ।

काठमहल

प्रभातकुमार भट्टाचार्य द्वारा सन् 1977 ई. में लिखा गया गीतिनाट्य है 'काठमहल' । यह रचना महाकवि कालिदास के काव्य 'मेधदूत' के परिप्रेक्ष्य में लिखित होते हुए भी इसकी कथा काल्पनिक है । इसमें आधुनिक चेतना का स्वर मौजूद है । इसमें रचनाकार ने आज की शासनव्यवस्था की ओर संकेत किया है । प्राचीन काल की और आज की शासनव्यवस्था में खास अन्तर नहीं है, इस युगीन सत्य का उद्‌घाटन रचनाकार प्रस्तुत रचना के द्वारा करते हैं । आम आदमी की मुक्ति और उसकेलिए संघर्ष इसका मुख्य विषय है ।

नाटक में अलकापुरी एक काठमहल है; इस महल के प्रहरी थे यक्ष । यहाँ शासक धनपति निष्क्रिय और व्यभिचारी है । पात्र यक्ष सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करता है । धनपति के अत्याचारों से पीड़ित यक्ष शासक के विरुद्ध विद्रोह करता है । आक्रामक व्यवस्था का प्रतीक अमात्य अवसर को अपना अनुकूल समझकर अपना मुखौटा बदलकर इससे फ़ायदा उठाता है । इसके पात्र विश्वकर्मा और देवराज हमारी पौराणिक धारणा के प्रतिकूल धनपति के विरुद्ध होकर, अमात्य के षड्यन्त्र में फँस जाते हैं । विश्वकर्मा और देवराज दोनों देवताओं की कोटि में आनेवाले हैं । वे धनपति के बदले अमात्य के सहायक के रूप में कार्य

कर हमारी परंपरागत धारणा पर आघात पहूँचाते हैं । अलका में यक्ष के द्वारा उत्पन्न विद्रोह भयानक भावी विस्फोट की आशंका जगाता है ।

धनपति हमेशा भोगविलास में मग्न रहता है । वह अमात्य के हाथ की कठपुतली है । इसका प्रमाण मंच पर उपस्थित लागों की बातचीत से प्राप्त होता है

"एक हम अलका के यक्ष हैं
किन्तु अलका नहीं हमारी।

दो अलका है देवनगरी
स्वामी हैं धनपति ।

तीन किन्तु जब व्यवस्था का प्रश्न आता है,
अमात्य आते हैं ।

चार धनपति के रथ के
अमात्य सारथी हैं ।

पाँच अमात्य सारथी तो हैं,
किन्तु रथ में धनपति नहीं बैठते,
सिर्फ अमात्य बैठते हैं ।

सात धनपति
अन्तःपुर में ही रहते हैं । "[1]

इस संवाद से यह पता चलता है कि शासन सूत्र अमात्य के हाथ में है । अमात्य नृशंस है और चतुर भी । वह देवराज और विश्वकर्मा के माध्यम से धनपति से छिपाकर एक समानान्तर अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए श्रम करता है । इसके लिए वह अलकापुरी के

---

1 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 24

यक्षों का उपयोग भी कर रहा है । अलकापुरी के यक्षों की शोचनीय स्थिति भी उपर्युक्त संवादों में अंकित है । वे भी शासक वर्ग के हाथ की कठपुतली बनकर जी रहे हैं जिसका संचालन किसी और हाथ में होता है । यक्ष आज की शोषित जनता का प्रतीक है । हर काल के शासकवर्ग के आचरण में समानताएँ होती हैं । सामान्य जनता शासक वर्ग के शोषण के शिकार हैं । वे चुपचाप शासकवर्गों द्वारा निर्मित कानूनों का अनुसरण करते हैं । जब शासक वर्ग के अत्याचार असहनीय बन जाते हैं तब जनता विद्रोह करने के लिए विवश हो जाती हैं । यह विद्रोह सशक्त शासक को अपने पद से च्युत करने के लिए पर्याप्त हो जाता है । लेकिन दूसरा वर्ग तो ऐसा है जिसका चेहरा बारबार बदलता रहता है । वे अवसरवादी हैं । वे अवसर के अनुकूल जनता को अपने जाल में फँसाते हैं और उनके नेता बन जाते हैं । अमात्य उस तरह के नेताओं का प्रतिरूप है । शासकों के बदलने पर भी सामान्य जनता की हालत में कोई बदलाव नहीं आता । वे जैसे के तैसे रह जाते हैं । उसकी डोर हमेशा दूसरों के हाथ में रहती है । वे अपना संचालन स्वयं नहीं कर सकते ।

यक्ष शासकवर्ग की आज्ञाओं का अनुसरण करना मात्र जानता था । वह विद्रोह करना नहीं जानता था । लेकिन अन्यायों को सहन करने की भी एक सीमा होती है । यक्षिणी से यक्ष कहता है

"सच है,
एक कठपुतली ही अच्छा था,
जिसका संचालन
किसी और हाथ में होता था ।
किन्तु ऐसा होना नहीं था ।

आखिर कब तक होता ?
इसलिए
एक दिन कठपुतली ने
पता नहीं कैसे,
अपने संचालक के हाथ तोड दिये।
तोड़ दिये वे तार
जिसके साथ जकड़े थे,
उसके
हाथ पैर-शरीर-मन-दिमाग ।"[1]

यक्ष के विद्रोह से हम यह समझ सकते हैं कि दूसरों को पीड़ा देने, दमन करने और शोषण करने की शासन व्यवस्था अधिक काल तक जारी नहीं रह सकती ।

धनपति के अन्तःपुर में पहरे पर नियुक्त यक्ष सम्राट के द्वारा जबरदस्ती अंकशायिनी बनाई गई अपनी यक्षिणी को मुक्त कराने के प्रयत्न से अपना विद्रोह प्रारंभ करता है । वह धनपति से कहता है

"उसे बहुत पहले ही करना था,
सम्राट धनपति !
जो कुछ हुआ आज तक
अन्याय था।
तुमने अपनी प्रजा को
केवल कठपुतली का जीवन दिया है ।
धनपति,

---

1 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 38

आज तक
पाना केवल तुम्हारे हिस्से में था ।
पाना क्या होता है
हम जानते नहीं थे ।
जो कुछ हमारा था,
उसे भी हमारा नहीं रहने दिया तुमने ।
आज से,
जो कुछ हमारा है,
हमारे साथ रहेगा ।"[1]

प्रस्तुत कथन शासकों के दमनचक में पिसकर कठपुलती बनकर जीनेवाले आज के दलित वर्ग की पहचान कराता है ।

इस गीतिनाट्य में तीन स्तरीय लोगों का उल्लेख मिलता है निम्नस्तरीय, उच्चस्तरीय और अतीन्द्रिय स्तरीय । ग्रामवृद्ध, कुमार जैसे लोग निम्नस्तरीय लोगों की कोटि में हैं जो भिन्न भिन्न विरोधी सिद्धान्तों और मतवादों से ग्रस्त हैं । मृत्युलोक का प्रतीक है निचली घाटी । यहाँ का नेतृत्व कुमार और ग्रामवृद्ध कर रहे हैं । ग्रामवृद्ध अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले जननेता का प्रतिनिधि है । वे स्नेह, ममता और करुणा की प्रतिमूर्ति है । वे अपने आदर्शों और सिद्धान्तों पर अटल रहते हैं जिनका परिणाम चाहे कुछ भी हो । वे कुमार से कहते हैं

"मेरा भी धर्म है प्रतिरोध ।
किन्तु यह प्रतिरोध
नहीं व्यक्ति से है,
अन्याय के विरुद्ध है ।"[2]

---

1. 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 41
2. 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 70

'काठमहल' का कुमार समाज के नवयुवकों का प्रतीक है जिसका लक्ष्य शुभ और उच्च है । उसके व्यक्तित्व में चन्द्रशेखर आज़ाद जैसे क्रान्तिकारियों का व्यक्तित्व देख सकते हैं । क्रान्तिकारियों के मन में अन्यायी के प्रति प्रतिशोध और नफरत की भावना है । वह ग्रामवृद्ध से कहता है

'अन्यायी के मिटते ही
अन्याय स्वयमेव मिट जाएगा ।'[1]

"मैं करता हूँ पोषण जिस नफरत का,
वह विराट है, उज्ज्वल है ।
जागी है मेरी नफरत
समूची एक व्यवस्था के विरुद्ध ।"[2]

ग्रामवृद्ध उससे कहता है

"नफरत नहीं, प्रेम है उपचार उसका ।"[3]

"तुम उसके अन्याय का
प्रतिकार करो, प्रतिरोध करो
जिससे उसमें घटित हो सके
हृदय परिवर्तन ! "[4]

कुमार ग्रामवृद्ध को रूढि परंपरा का प्रतीक मानकर उनके वादों का खण्डन करता है । वह परंपरा के विरुद्ध आवाज़ उठाता है

---

1 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 70
2. वही पृ. 71
3. वही
4. वही

"तुम जिन्हें संस्कार कहते हो,
वृद्ध -पुरुष,
वे समाज के कोढ़ हैं ।
परम्परायें लाश हैं
जिन्हें ढोने से इन्कार करते हैं हम।
दिशाहीन यह पीढी मेरी इसलिए
कि हम पूर्वजों के दिशा-ज्ञान को
मानते हैं निरर्थक ।
और अपनी दिशा
स्वयं निर्मित करने की भूलों को भी
सार्थक समझते हैं ।"[1]

यहाँ ग्रामवृद्ध पुरानी पीढी का प्रतिनिधि है तो कुमार युवापीढी का प्रतीक है । वह अन्यायी का विनाश चाहता है । विद्रोह का स्वर उसके हर कथन में मौजूद है । राजा का पक्ष लेनेवाले ग्रामवृद्ध को भी वह अपराधी मानकर दण्ड देना चाहता है ।

उच्चस्तरीय लोगों की श्रेणी में धनपति, जनता की कमज़ोरियों का लाभ उठाने में सक्षम हैं । वे अवसरवादी सत्ता लोलुप वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

मेघ, सौदामिनी आदि पात्र अतीन्द्रिय स्तर के हैं जो हमारी इन्द्रियों से परे हैं । ये मानवेतर पात्र यक्ष की मुक्ति के पथ प्रदर्शक हैं ।

यक्ष धनपति के तंत्र को जड़मूल से उखाड़कर विध्वंस करना चाहता है । वह एक विराट संग्राम के लिए कटिबद्ध है । वह मुक्ति चाहता है । यक्ष के माध्यम से आज के शोषित

---

1 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 72

वर्गों की मुक्ति का सन्देश रचनाकार देते हैं ।

युद्ध की समस्या भी इसमें मौजूद है । युद्ध का पक्ष लेनेवाले अन्यव्यक्ति और युद्ध के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाला वह व्यक्ति दोनों के कथन यक्ष के मन में संघर्ष जगाता है । वह व्यक्ति 'युद्ध की उपलब्धि होगा

लाशों का ढेर
जिन्हें गिद्ध और कुत्ते खींचेंगे ।
और होंगे उन लाशों के ढेर में
अलका के यक्ष और यक्षिणी ।"[1]

'तुम्हारा यह विनाशकारी युद्ध
अलका को खण्डहर बना देगा ।"[2]

अन्य व्यक्ति: "मैं तुम्हारे मुक्ति संग्राम का आधार हूँ ।

युद्ध, केवल युद्ध,
प्रबलतम विनाशकारी युद्ध ।"[3]

"धनपति-तंत्र का
जड़-मूल से विनाश
केवल मेरे माध्यम से संभव है ।"[4]

आज के युग में भी युद्ध के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले और युद्ध के अनुकूल विचार रखने वाले मानव हमारे समाज में मौजूद हैं ।

---

1 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 97
2. वही
3 वही पृ. 95
4 वही

आज की युवापीढी विवाह को एक व्यर्थ बन्धन मानती है । इसका प्रमाण कुमार के कथन से व्यक्त है । वह ग्रामवृद्ध से कहता है

"व्यर्थ विवाह-बन्धन ने
एक को पति परमेश्वर
और दूसरे को सहधर्मिणी कहा ।"[1]

एक शासनव्यवस्था के अन्त होने पर दूसरी शासनव्यवस्था उत्पन्न होती है जो भी पहले से भिन्न नहीं होती । लेकिन उसका रूप बदलता है वर्तमान युगीन परिवेश के संदर्भ में गीतिनाट्य का संन्देश यही है । आज की दुनिया में ऐसे वर्गों को सफलता प्राप्त होती है जो अवसरवादी हैं । इस तथ्य का उल्लेख प्रस्तुत गीतिनाट्य में उपलब्ध है । "नाटक यह चेतावनी देता है कि साधारण जन की मुक्ति तब तक संभव नहीं है जब तक कि वह छलावे के जाल को तोड़ना नहीं सीख लेता है।"[2] 'यह नाटक नये संकल्पों और नई चेतना को धारण करने की आवश्यकता को प्रकट करनेवाला नाटक है ।"[3] "काठमहल' उस व्यवस्था का प्रतीक है जो ऊपर से तो बहुत भव्य दिखाई देती है किन्तु जिसके ढह जाने में पल नहीं लगता तथा जिस में असंख्य दीमकें लगी हूई हैं जो उसे भीतर से खोखला किए हुए है ।"[4] अमात्य, देवराज, विश्वकर्मा आदि पात्र काठमहल को खोखला करने वाले दीमकों के प्रतीक हैं । काठमहल बदलने वाली शासन व्यवस्था का प्रतीक है । अलकापुरी में घटित प्रस्तुत प्रसंग रोज़ ही आज भारत में भी घटित होता है । गीतिनाट्यकार ने काल्पनिक कथा का प्रश्रय लेकर वर्तमान ज्वलन्त समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

खण्ड-खण्ड अग्नि

श्री दिविक रमेश द्वारा सन् 1994 में प्रकाशित गीतिनाट्य है 'खण्ड-खण्ड अग्नि'। इसकी कथा का आधार वाल्मीकि कृत रामायण का एक विशेष प्रसंग है । इस गीतिनाट्य में

---

1 'काठमहल' प्रभात कुमार भट्टाचार्य पृ. 131
2. वही 84
3. वही
4. वही पृ. 117

वाल्मीकि रामायण का सहारा लेकर वर्तमान को खोजने का प्रयास रचनाकार ने किया है ।

युद्ध हो चुका है । लंका पर राम का आधिपत्य है । विभीषण लंका के राजा बन गए । युद्ध-विजय और सीता-स्वतंत्रता का समाचार देने के लिए हनुमान को अशोक वाटिका भेजा जाता है । सीता को राम के पास पहूँचाने का काम विभीषण पर सौंपा जाता है । पर-गृह में रह चुकी सीता को स्वीकार करने से राम मना कर देते हैं । वे सीता के प्रति उदासीनता प्रकट करते हैं । वे सीता को कहीं भी जाने की स्वतंत्रता दे देते हैं । सीता के संबन्ध में राम का यह विचार है कि जब रावण ने सीता को उठाया था तब ज़रूर रावण का स्पर्श सीता की देह पर हुआ होगा । राम के उस देहवाद से सीता चकित हो जाती है । विवाह से पूर्व राम ने गौतम मुनी की पत्नी अहल्या को मुक्ति दी थी । 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार अहल्या सीता की तरह पतिव्रता नारी नहीं थी । वह पति-वेष में आए इन्द्र को पहचानते हुए भी उसके साथ यौन संबन्ध-स्थापित करती है और पति के आगमन से पूर्व ही उसे चले जाने का संकेत भी देती है ।

अहल्या जैसी बुरे आचरण वाली स्त्री का उद्धार राम ने किया । गौतम ऋषि द्वारा अहल्या की स्वीकृति हुयी । इसपर राम मौन ही रहे । दूसरों के संदर्भ में राम बड़े उदार थे लेकिन सीता के प्रति राम ने हमेशा अन्याय ही अन्याय किया । राम की उदारता का अन्य उदाहरण है बाली-सुग्रीव प्रसंग । अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी रुमा को बाली ने अपने घर बलपूर्वक रख लिया था तथा वह कामेच्छा की पूर्ति के लिए रुमा को साधन बनाता था । राम ने सुग्रीव की सहायता कर रुमा को बाली के चंगुल से छुडाया और उसे सुग्रीव के हाथ सौंप दिया । सुग्रीव ने परपुरुष के घर रह चुकी रुमा को सहर्ष स्वीकार कर लिया था तिस पर भी राम को कदापि विरोध नहीं हुआ । इसलिए ही राम की बात पर सीता आश्चर्यचकित और व्याकुल हो जाती है । वह स्वयं विचार करती है कि यहाँ लाकर अपमानित करने की अपेक्षा

हनुमान से अशोक वाटिका में ही उसकी सूचना भिजवा देते ताकि सीता वहीं अपने को समाप्त कर लेती । वह यह भी जानना चाहती है कि सीता की प्राप्ति के लिए राम को इतना कष्टदायी युद्ध करने की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर राम इसप्रकार देते हैं कि उन्होंने सीता को पाने के लिए नहीं युद्ध किया है, प्रत्युत सदाचार की रक्षा, सब ओर फैले हुए अपवाद का निवारण तथा अपने सुविख्यात वंश पर लगे हुए कलंक का परिमार्जन करने के लिए यह सब उन्होंने किया है । वाल्मीकि रामायण के युद्धकांड में वर्णित उपर्युक्त कथन से जब पहले पहल लेखक का सामना हुआ तो पत्नी सीता के संदर्भ में राम के वंशवाद या कुलवाद से वे भी हिल गए । वाल्मीकि रामायण के अलावा अन्य कृतियाँ जैसे रामचरितमानस आदि रचनाओं में उपर्युक्त प्रसंग उपलब्ध नहीं है । इस प्रसंग विशेष को लेखक ने स्वीकार कर युगानुकूल प्रस्तुत किया ।

युद्ध-विजय के बाद सीता ने अपने पति राम के स्थान पर पहले हनुमान और बाद में विभीषण को देखा तो सीता पर पहला आघात हुआ होगा । उसके मन में यही ख्याल था कि सबसे पहले राम उसके पास दौड़कर आएँगे और उसे गले से लगा लेंगे । वह सोचती थी कि जिसप्रकार कोई व्यक्ति अपने पुत्र, पुत्री, बहन, माँ पिता या अन्य आत्मीय संबन्धी के प्रति व्यवहार करता है उसीप्रकार राम उसके साथ व्यवहार करेंगे।

प्रस्तुत कृति में उद्घोषणा, सन्नाटा, हर्ष, सूचना आदि ऐसे पात्र हैं जो शेष पात्रों केलिए अदृश्य हैं ।

कृति के आरंभ में उद्घोषण प्रसन्न चित्त होकर राम के विजय की घोषणा करती है । सन्नाटा भी वहाँ उपस्थित है । दोनों के चले जाने पर पूरे मंच पर अग्निप्रकाश फैल जाता है । अग्नि चिन्तित और प्रश्नाकुल स्थिति में दृष्टिगत होता है । अपने बारे में अग्नि का कथन है

"समझा जाता हूँ देवता
नहीं जानता
भय से या मोह से ?
बनाया होगा देवता मुझे इतिहास ने
वैदिक हूँ मैं
सदियों से आ रहा हूँ पूजता।
शुद्ध कर्ता ही नहीं
मुझे माना गया है
शुद्धता का माप भी
लोक साक्षी हूँ मैं ।"[1]

यह सुनकर कि सीता पर सन्देह किया जा रहा है, अग्नि स्वयं पूछ रहा है कि यह मेरी कैसी परीक्षा है ? वह कहता है

"निरा अग्नि नहीं हूँ मैं
पति हूँ मैं भी स्वाहा का
क्या सोचेगी स्वाहा
धिक्कारेगी नहीं क्या
वह कन्या प्रजापति की?
सामना कर सकूँगा क्या
अग्नि से भी ज्वलंत
अग्नि-क्षेपक नेत्रों का ?"[2]

---

1. 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 20
2. 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 20-21

परेशान होकर वह स्वयं पूछता है, मेरी यह कैसी परीक्षा है ? यह कैसा कुचक्र है ? अग्नि का अन्तःसंघर्ष उपर्युक्त कथन से व्यक्त है । वह सीता की अग्निपरीक्षा लेने से असहमत है । सबसे आराध्य और पुण्यवती देवी सीता की अग्निपरीक्षा वह अनुचित और अनावश्यक मानता है । आज भी समाज हमेशा स्त्री को सन्देह की दृष्टि से देखता है; लेकिन पुरुष पर समाज को ज़रा भी सन्देह नहीं चाहे वह कितने ही बुरे आचरण करनेवाला क्यों न हो । अग्नि की राय में सीता को अग्निपरीक्षा की ज़रूरत है तो राम की भी अग्निपरीक्षा आवश्यक है । प्राचीन और आधुनिक दोनों युगों में समाज में पुरुष वर्ग पूर्णतः स्वतंत्र है । सीता त्रेतायुग की है । त्रेतायुग से लेकर आज इक्कीसवीं सदी तक पहूँचने पर भी स्त्री परतंत्र है । स्त्री की शोचनीय स्थिति यहाँ रचनाकार सीता के माध्यम से अंकित करते हैं ।

राम के शिबिर स्थल में स्थान स्थान पर हर्षोत्सव मनाए जा रहे हैं । जय-जयकार हो रहा है । एकान्त में द्वन्द्व विचलित राम खुद स्वीकार करता है कि मैं सन्देह ग्रस्त हूँ । उसका कथन है

"केवल व्यक्ति नही हूँ मैं, न आत्मा ही
एक वंश भी हूँ, लोक भी हूँ।
राम
एक समाज भी है
जन्मना देहधारी ।
नहीं है राम का कोई व्यक्तिगत संदर्भ ।
शायद इसीलिए
माना जाता हूँ भगवान भी ।"[1]

---

1. 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 23

रचनाकार राम के कथन के माध्यम से साधारण मानव की विवशता का प्रतिपादन करते हैं । इसमें रचनाकार ने राम को एक अलौकिक रूप नहीं प्रदान किया है, प्रत्युत एक साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है । राम अपनी पत्नी से अधिक प्रधानता वंश और समाज को देते हैं । दृढ़ता के साथ लेकिन थोडे अपराध बोध के साथ भी राम कहता है

"नहीं
राम नहीं कर सकता स्वीकार
देहधारी सीता को।"[1]

आज आधुनिक युग में भी वंश और समाज को मात्र प्रधानता देकर अपनी पत्नी की उपेक्षा करनेवाले अनेक पुरुष मौजूद हैं ।

अशोकवाटिका में सीता के पास विभीषण की पत्नी सरमा, जो सीता की हितैषिणी है, मौजूद है । हनुमान के मुँह से राम की विजय का समाचार सुनकर सीता खुश होती है । वह हनुमान से कहती है

'कहना हनुमान प्रभुसे
सीता वस्तु नहीं, नारी है
कुछ प्राण भी हैं उस में
पत्नी है उनकी, हृदय वल्लभा।"[2]

फिर वह हनुमान से राम के दर्शन की अभिलाषा प्रकट करती है । यह बात जानकर कि विभीषण सीता को राम तक लिवा ले जाएँगे, सीता स्तंभित रह जाती है । सरमा उसे समझाती है

"आप शान्त हों महारानी।
नारी हैं हम। अनुकर्ता हैं ।
हो तो नहीं सकती न अनुकरणीय।"[3]

---

1 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 26
2. वही पृ. 37
3. वही पृ. 43

यहाँ सीता की मनोव्यथा यह है कि सीता को राम तक विभीषण पहूँचा देंगे। रचनाकार नारी हृदय की पहचान सीता के ज़रिए कराते हैं । स्त्री हमेशा अपने पति की छाँह में रहना पसन्द करती है । पतिव्रता नारी पति के प्रेम को सबसे बड़ा मानती है । इसमें राम की निर्ममता का परिचय भी प्राप्त होता है । सरमा के कथन से नारी की वि वशता भी अंकित है । नारी हमेशा अनुकर्ता हैं । दूसरों के आदेशों का पालन करना ही नारी का कर्तव्य है । इसके विरुद्ध करने की स्वतन्त्रता उसको नहीं ।

सीता सरमा का हाथ पकड लेती है और कहती है

''भले ही
आता हो आड़े स्वाभिमान
जाना ही होगा, सीता को सामने राम के।
मानना ही होगा आदेश
विजयी राजा का ।
सीता तत्पर है । मुझे तैयार करो सरमा ।"[1]

सीता के पतिव्रता नारी का रूप यहाँ उभारा गया है । पतिव्रता नारी के लिए हमेशा अपने पति के आदेश शिरोधार्य हैं ।

सीता आती है । राम के मन में अपराध बोध है । वे चाहकर भी सीता को आलिंगन में बाँधने दौड़ नहीं सकते । सीता से वे कहते हैं कि मैं ने लंका पर विजय पाई है और अपने कुल का कलंक धो दिया है । हे सीता तुम पुरुष नहीं, नारी हो

तुम्हें युग-सत्य को समझना ही होगा । तुम रावण की छत्र-छाया में रही हो ।

---

1 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 45

अब तुम स्वतंत्र हो।"[1]

तब सीता दृढ़ स्वरों में कहती है

"नहीं

सूत्रहीन स्वतंत्रता

अराजकता है मेरे राम।

उच्छृंखल नहीं है सीता ।

सीता नहीं है संदर्भ हीन नारी ।

पत्नी है सीता

स्वतंत्र

पति की धुरी पर।

परतंत्र तो कभी नहीं थी सीता ।"[2]

राम और सीता दोनों की मनोव्यथा दोनों के कथनों से व्यक्त है । राम के मन में अपराध बोध है । अपने कुल के कलंक को धोने के लिए ही रावण से युद्ध करके राम ने लंका पर विजय पाई है । अपनी पत्नी को स्वीकार करना वे मन ही मन चाहते हैं फिर भी अपने कुल के कलंक को पत्नी से अधिक प्रधानता देते हैं । सीता अपने को परतंत्र नहीं मानती; बिल्कुल स्वतंत्र मानती है । आधुनिक नारी का स्वतंत्रता बोध सीता के कथन में स्पष्ट है ।

राम का कथन है कि सीता की देह ने रावण का स्पर्श किया है । विनीत किन्तु सरोष हनुमान कहता है, आपने सीता को समझा ही कहाँ है ? इन्होंने स्वेच्छा से रामेतर पुरुष का स्पर्श तक नहीं चाहा था । लेकिन आप उस अहल्या तक के उद्धारक हैं जिसने इन्द्र को पहचानकर भी परपुरुष का समागम सुख भोगने में संकोच नहीं किया था । आश्चर्य और क्षोभ के साथ

---

1 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 51

2. वही पृ. 51-52

सुग्रीव कहता है, आपके आग उगलते शब्दों की लपटें इस सुग्रीव के भी घर को झुलस रही हैं । क्या आप बाली की शिकार हुई रुमा का अपमान नहीं कर रहे हैं ? भावुक होकर सुग्रीव आगे कहता है

"यह अपमान केवल सीता का नहीं
पुरुष की
पशुता की शिकार हुई हर नारी का है ।
हर उस पुरुष का अपमान है प्रभु
जिसने स्वीकारा है अस्तित्व नारी का
सम्मान दिया है जिसने
नारी की आत्मा को।"[1]

हनुमान और सुग्रीव दोनों राम के आचरण के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं । सुग्रीव कहते है कि सीता का यह अपमान संपूर्ण नारीवर्ग का ही नहीं, उन पुरुषों का भी अपमान है जिन्होंने नारी का अस्तित्व पहचानकर उन्हें स्वीकारा है । नारी को हमेशा अपमान सहना पड़ता है । यह अपमान नारी के अस्तित्व पर लगा हुआ सशक्त प्रहार है । सीता अपमानित स्त्रीवर्ग का प्रतीक है ।

सीता के प्रति राम का भाव देखकर लक्ष्मण भी आहत होकर पूछता है

"क्या वंश से बाहर है भाभी ?
क्या वंश से बाहर होती है माँ ?
क्या गढ़ा जाता है वंश अकेले पिता से ही ?
क्या केवल श्रमिक है नारी

---

1 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 58

निर्माण होते ही भवन का

तिरस्कार कर दिया जाए जिसका ?"[1]

आज भी समाज में स्त्री का स्थान श्रमिक का है । वह अपने परिवार के पालन करने के लिए अनेक यातनाएँ सहती है । लेकिन कार्य साध्य होने के बाद उसकी उपेक्षा होती है । इसप्रकार जनसमूह भी राम के पक्ष में नहीं । उनका प्रश्न है

''सोचो राम ! सोचो !

यह कैसी विचित्र बात है ?

हम साधारण जन तक

समझ रहे हैं जिस सच को

नहीं समझ पा रहे हैं राम ?

कैसे दीखते हैं आज

हम से भी साधारण, हमसे भी आम ।"[2]

राम के वचनों के संबन्ध में सीता का कहना है कि रावण का प्रस्ताव भी इतना क्रूर नहीं था; राक्षसियों की धमकियाँ भी इतनी क्रूर नहीं थीं । राम के इस कथन पर कि तुम स्वतंत्र हो; किसी का भी हाथ थाम लो, सीता क्रुद्ध होकर कहती है कि सीता जूठन नहीं है । अग्नि का संबोधन करके वह कहती है, "ओ देव ! रावण स्पर्शित इस विवश देह को जला डालो । पृथ्वी का संबोधन करके वह कहती है, ओ माँ, अपनी इस बेटी को देख रही हो न ? अग्नि को प्रकट करो माँ ।।"[3] अग्नि प्रकट होता है और सीता से कहता है,

---

1 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 65

2. वही पृ. 65

3. वही पृ. 82-83

"आओ सीता !
लोगों की दृष्टि में
आ जाओ मेरी गोद में ।"[1]

आधुनिक नारी की तरह शक्ति स्वरूपिणी नारी का प्रतिरूप है सीता । सीता स्वाभिमानिनी नारी है । अपनी भूमिका को लेकर अग्नि विचलित भी है और पीड़ित भी । निरर्थक जानते हुए भी अग्नि सीता को परीक्षण के लिए प्रकोष्ठ में ले जाता है । सीता परीक्षण में सफल होती है । अग्नि राम को सीता को तत्क्षण स्वीकार करने का आदेश देता है । सीता तो स्वयं को मृतप्राय समझती है । "अग्नि सोचता है कि यह युग की ही सीमा है कि सीता के साथ साथ राम की अग्नि-परीक्षा की माँग नहीं हो सकती । तब तो ब्रह्माण्ड ही हिल जाएगा । वह साथ ही अग्नि-प्रणाली को समाप्त करने की बात भी करता है । उसकी दृष्टि में हर व्यक्ति अग्नि संपन्न है-चाहे वह राम हो या सीता या फिर जन-जन।"[2]

राम सीता को स्वीकार करते हैं । लेकिन उनका यह मिलन दो मृतकों के समझौते से अधिक कुछ नहीं प्रतीत होता । पृथ्वी प्रतिज्ञा करती है कि भविष्य में अपनी पुत्री सीता का अपमान न होने देगी और यदि अपमान किया भी गया तो स्वाभिमान की गोद में ले लेगी तथा सीता के स्वाभिमान की पक्षधर होगी ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक कथाओं का आधार लेकर राम, सीता, कर्ण, अशोक, रावण आदि पात्रों के माध्यम से समकालीन गीतिनाट्यों के रचयिताओं ने आधुनिक समाज की कई समस्याओं का पर्दाफाश किया है । उन्होंने नारी के आदर्श और यथार्थ रूपों का अंकन करके आधुनिक युग में नारी-जागरण की अनिवार्यता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । आधुनिक युग में दिन ब दिन सत्य, धर्म, दया, ममता

---

1 'खण्ड-खण्ड अग्नि' दिविक रमेश पृ. 85
2. वही पृ. 106

आदि मानव मूल्यों का ह्रास हो रहा है । समकालीन गीतिनाट्यों में इन मूल्यों की पुनःस्थापना का सन्देश दिया गया है । युद्ध और शांति की समस्या अब भी हमारे सामने है; तृतीय महायुद्ध की आशंका से हम संभीत हैं, क्योंकि विज्ञान की प्रगति के साथ साथ विनाशकारी शस्त्रों का निर्माण हो रहा है जिनके प्रयोग से सर्वनाश संभव है । अवैध सन्तानों तथा जाति-पाँति की समस्या आदि से ग्रस्त है हमारा समाज । उनको सुलझाने की प्रेरणा भी समकालीन गीतिनाट्यों के विभिन्न पात्रों द्वारा हमें मिलती है । इन पात्रों के चरित्र से हमें यह पाठ भी पढ़ाया गया है कि अन्याय को चुपचाप सहन न करके उसके विरुद्ध लड़ना चाहिए । नारीमुक्ति आन्दोलन की दृष्टि से समकालीन गीतिनाट्यों का विश्लेषण-विवेचन अत्यंत ज़रूरी है । विचारों के स्थान पर मानव के कोमल भावों की प्रतिष्ठा आज की समाजिक शिथिलता को दूर करने में सहायक है । साम्राज्यवाद जैसे भीषण मुद्दों पर विचार करने को उत्तरप्रियदर्शी जैसे गीतिनाट्य हमें प्रेरित करते हैं । उपर्युक्त विवेचन से यह जाहिर होता है कि गीतिनाट्यों में प्रयुक्त मिथक समकालीन परिवेश को सफल एवं सार्थक ढंग से अभिव्यक्त करने में समर्थ सिद्ध हुए हैं ।

उपसंहार

उपसंहार

नाटक में मानवजीवन का यथार्थ और जीवन्त चित्रण होता है । एक सामूहिक कला होने के नाते संसार में नाटक का महत्व श्लाघनीय है । नाटक के अंतर्गत आनेवाली गीतिनाट्य विधा अधुनातन साहित्यिक विधाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान अलंकृत करती है । पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक कथाओं का प्रश्रय लेकर रचित गीतिनाट्य समसामयिक समस्याओं की अभिव्यक्ति करते हैं । गीतिनाट्य के नाम संबन्धी धारणाएँ भिन्न भिन्न हैं । कई विद्वान इसे भिन्न भिन्न अभिधान देकर पुकारते हैं । भावनाप्रधान गीतिनाट्य का प्राणतत्व है अन्तर्द्वन्द्व । गीतिनाट्य में काव्य, नाटक और संगीत का मणिकांचन योग होता है । इनपर अंग्रेज़ी गीतिनाट्यकारों का प्रभाव पड़ा है । गीतिनाट्य परंपरा लोकनाट्य परंपरा से प्रभावित है । इस शोध प्रबन्ध में मिथक तत्व की दृष्टि से जिन आधुनिक हिन्दी गीतिनाट्यों का अध्ययन किया गया है वे पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक कथाओं का आधार लेकर वर्तमान युग की मूलभूत समस्याएँ, विघटित मानवमूल्य आदि का निरूपण करते हैं । इन अधिकांश गीतिनाट्यों में आधुनिक मानव का अन्तःसंघर्ष, युद्ध की समस्या, परंपरागत मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों की खोज, नारी चेतना से संबन्धित विचार आदि को मुख्य विषय बनाया गया है । मिथक अविश्वसनीय और अलौकिक काल्पनिक कथाएँ हैं । ये कथाएँ पहले कपोल कल्पना समझी जाती थीं; फिर उन्नीसवीं सदी में वैज्ञानिक प्रगति के साथ मिथक के प्रति नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ । मिथक कथाएँ मानवजीवन और प्रकृति से जुडी रहती हैं । देवविद्या, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, भाषाविज्ञान, इतिहास आदि साहित्येतर विषयों से मिथक का गहरा संबन्ध है । साहित्य की विभिन्न विधाओं में मिथकों का सफल प्रयोग हुआ है । आदिकाल से लेकर आधुनिककाल तक के हिन्दी साहित्य की विभिन्न

विधाएँ मिथकीय संवेदना से भरी पड़ी हैं । गीतिनाट्यकार अपनी रचनाओं में जीवनादर्शों और खोये हुए नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना के लिए मिथक को अपनाते हैं । वे अपनी रचनाओं में मौलिक उद्‌भावना के साथ कल्पना का मिश्रण भी करते हैं । वे मूलकथा को थोड़ा घुमाफिराकर समसामयिक युग के अनुकूल प्रस्तुतकर आज की दुनिया में विद्यमान ज्वलन्त समस्याओं को जनता के सम्मुख पेश करते हैं ।

गीतिनाट्यों को मिथकतत्व की दृष्टि से तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं । स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी गीतिनाट्यों में अभिनेयता की कमी है । वे रंगमंचीय दृष्टि से असफल हैं । ये गीतिनाट्य आदर्शवाद को खास स्थान देते हैं । मानव समाज का उत्कर्ष ही इन रचनाओं का लक्ष्य है । स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी गीतिनाट्य तात्विक दृष्टि से और अभिनेयता एवं मंचीयता की दृष्टि से भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं । इनमें गीतिनाट्यकार कल्पना को प्रमुखता न देकर यथार्थ की भूमि पर वर्तमान समस्याओं को परखते हैं । मंचीयता की दृष्टि से अत्यन्त सफल हिन्दी गीतिनाट्य समकालीन युग में लिखे गए । इस काल में लिखित अधिकांश गीतिनाट्यों की पृष्ठभूमि आपातकालीन स्थिति है । इन रचनाओं की मुख्य विशेषता यह है कि इनमें रचनाकार अपनी मर्जी से, अपने कथ्य के अनुरूप मौलिक उद्‌भावनाओं एवं कल्पना का मिश्रण करके रचनाओं की प्रस्तुति करते हैं । उपर्युक्त तीनों कालों में रचित मिथकाश्रित गीतिनाट्य समसामयिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने में अत्यन्त सक्षम हैं ।

जयशंकर प्रसादजी द्वारा रचित 'करुणालय' से आधुनिक गीतिनाट्यों की शुरुआत होती है । इस रचना में चित्रित मुख्य समस्या है नरबली की समस्या । वर्तमान युग में हिंसावृत्ति का बोलबाला है । स्वार्थ, अन्धविश्वास और अन्य कार्यों से प्रेरित होकर लोग

हिंसा के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं । संसार के कोने कोने में इस तरह की नरबली का आयोजन दिन ब दिन हो रहा है । इसे रोकने का प्रयत्न अर्थात् हिंसा के विरुद्ध आक्रोश आज करुणालय की प्रासंगिकता को बढ़ाता है ।

अपनी सुखसुविधाओं को त्यागकर परिवार के लिए और देश के लिए बलिदान करने वाले अप्रतिम नारीत्व का प्रतिरूप है गीतिनाट्य कृष्णा की नायिका कृष्णा । वह आज की दुनिया में नारीत्व की अहमियत को द्योतित करती है ।

'पंचवटी' प्रसंग में सत् का प्रतिरूप सीता और तमो गुण का प्रतिरूप शूर्पणखा का संघर्ष है । इन दोनों पात्रों के द्वारा वर्तमान समाज में नारी का स्थान रचनाकार निर्धारित करते हैं ।

गाँधीजी के अहिंसा सिद्धान्त और आदर्शवाद को प्रमुखता देनेवाली रचनायें हैं अनघ, उन्मुक्त और स्वर्णविहान। ये तीनों रचनाएँ सत्य और अहिंसा के मार्ग को अपनाने की प्रेरणा मानव समाज को देती हैं ।

गीतिनाट्य 'दिवोदास' के माध्यम से मैथिलीशरणगुप्तजी मानव को आत्मनिर्भर बनने, कर्मनिरत होने, मर्यादा का अवलंब लेने और पशुता को छोड़ने का उपदेश देते हैं । नियति और अन्धविश्वास पर भरोसा रखकर जीवन बिताने से मानव का विकास नहीं होगा । मानव की पराजय का मूलकारण मानव का निष्क्रियत्व है । 'दिवोदास' का सन्देश समकालीन युग के लिए अत्यन्त अपेक्षित है । आज कुछ लोग अपने कर्म से च्युत होकर, अमर्यादा का अवलंब लेकर अमानवीय आचरण कर रहे हैं ।

1900 से लेकर अब तक रचित गीतिनाट्यों में कुछ गीतिनाट्यों का मुख्य वर्ण्य विषय युद्ध और युद्ध संबन्धी समस्याओं का प्रतिपादन है । 'कृष्णा' 'अन्धायुग' 'संशय की

एक रात' 'एककंठविषपायी' और 'प्रवाद पर्व' इसके लिए उत्तम उदाहरण हैं । इन सारी रचनाओं में रचनाकारों के युद्ध विरुद्ध और युद्धानुकूल विचार समसामयिक युग के लिए भी लागू हैं । आज के लोग तीसरे विश्वयुद्ध के आगमन की आशंका से संत्रस्त हैं । युद्ध के फलस्वरूप मानवसमुदाय का सर्वनाश संभव है । वर्तमान युग में आणवयुद्ध और अणुबम का बोलबाला है । हिरोषिमा और नागसाकी में गिरे हुए अणुबम के फलस्वरूप कितने लोग अपाहिज बन गए, इसका जीवन्त उदाहरण अब भी हमारे सामने मौजूद हैं । निरायुधीकरण की कांक्षा, युद्धोपरान्त नष्ट हुए मानवत्व का प्रतिपादन आदि अनेक विशेषताओं से युक्त गीतिनाट्य 'अन्धायुग' में वर्तमान ज्वलन्त समस्याओं' का प्रतिपादन है । 'संशय की एक रात' में नरेशमेहताजी युद्धानुकूल विचार प्रकट करते हैं । बर्बर साम्राज्यवादी शोषक से मुक्ति पाने के लिए युद्ध अनिवार्य है । युद्ध लोक की भलाई के लिए हो तो उचित है । 'एक कंठविषपायी' में शासक वर्ग की युद्ध लिप्सा का उल्लेख है । युद्ध केन्द्रित यह गीतिनाट्य युद्ध के अनुकूल और युद्ध के प्रतिकूल विचार रखता है । युद्ध संबन्धी विचार आधुनिक मानव के मन में संघर्ष की सृष्टि करते हैं । 'प्रवादपर्व' में युद्धानुकूल विचार प्रकट है । उपर्युक्त गीतिनाट्यों के अध्ययन से हम समझ सकते हैं कि लोक कल्याण की भावना से प्रेरित युद्ध अनिवार्य और समाजोपयोगी है ।

विघटित मानवमूल्यों पर प्रकाश डालने वाले गीतिनाट्यों में प्रमुख हैं 'अनघ' 'उन्मुक्त' 'स्वर्णविहान' 'सूखा सरोवर' और 'उत्तर प्रियदर्शी' । आज के युग में सत्य, दया, ममता, मानवता आदि कई मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है । उन खोये हुए मानवीय मूल्यों की पुनःस्थापना इनके रचयिता चाहते हैं । अहंग्रस्त आधुनिक मानव के मन में प्रेम, करुणा आदि सद्भावनाओं के स्थान पर बर्बरता है ।

अधिकांश गीतिनाट्य नारी चेतना से संबन्धित हैं । ये हमें नारी शोषण के प्रति सजग करते हैं । 'तारा' और कर्ण में नारी के नैतिक पतन का उल्लेख है । 'तारा' अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति के लिए आज के नारी-शोषक का प्रतिरूप चंद्रमा के साथ अवैध संबन्ध स्थापित कर लेती है । इसके लिए हम तारा को दोषी नहीं कह सकते । युवती, सुन्दरी तारा को देवगुरु वृद्ध बृहस्पति की पत्नी बनकर विरस जीवन बिताना पड़ा । उसके मन में प्रेम और रस की चाह थी । इसलिए परपुरुष चन्द्रमा के प्रति उसके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ । फलस्वरूप उसका नैतिक पतन हुआ । आधुनिक समाज में तारा जैसी नारियों का चारित्रिक पतन नारी धर्म के विरुद्ध होते हुए भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक है । गीतिनाट्य 'कर्ण' में कुन्ती के चारित्रिक पतन के द्वारा नर नारी संबन्ध की पवित्रता पर कलंक लगाया गया है । आधुनिक समाज में कुछ स्त्रियाँ नर-नारी संबन्ध की श्रेष्ठता को तुच्छ समझकर परपुरुषों के साथ अवैधसंबन्ध स्थापित कर लेती हैं । इसके कई उदाहरण हमारे सम्मुख हैं । 'तारा' और 'पाषाणी' में प्रतिपादित अनमेल विवाह से उत्पन्न समस्या वर्तमान युग की प्रमुख समस्या है । 'मत्स्यगन्धा' और 'विश्वामित्र' नर-नारी-संघर्ष को प्रमुखता देते हैं । नारी हमेशा अपने बन्धनों को तोड़कर आगे बढ़ना चाहती है । लेकिन पुरुष की नियामक शक्ति के सम्मुख उसे कभी कभी नतमस्तक होना पड़ता है । गीतिनाट्य 'विश्वामित्र' में वर्णित नर-नारी संघर्ष समान अधिकार के लिए आज भी समाज में चल रहा है । आधुनिक नारी विक्रयवस्तु बनना नहीं चाहती । आज विवाह के संबन्ध में उचित निर्णय लेने का अधिकार कुछ हद तक नारी को प्राप्त है । वह अपने निर्णय को दूसरों के लिए बदलना नहीं चाहती । 'स्नेह या स्वर्ग' की स्नेहलता के माध्यम से रचनाकार स्त्री के निर्णय लेने के अधिकार की ओर संकेत करते हैं । विक्रयवस्तु बननेवाली, अपने अधिकारों से

वंचित, अपमानित नारी का करुण चित्र 'द्रौपदी' में अंकित है । वर्तमान युग में समाज में स्त्री की शोचनीय स्थिति का उद्‌घाटन प्रस्तुत गीतिनाट्य में किया गया है । प्राचीन काल से लेकर आधुनिकाल तक की नारी को तरह तरह के अपमान सहने पड़ते हैं । इस वैज्ञानिक युग में भी नारी मुक्ति एक प्रश्न चिह्न बन गयी है । नारी की स्वतंत्रता को लेकर समसामयिक युग में कई चर्चाएँ हो रही हैं । वर्तमान युग स्त्री शाक्तीकरण का युग है । आज नारी किसी की दासी बनना नहीं चाहती । वह पहले से अधिक स्वतन्त्र है । आधुनिक नारी आत्मनिर्भर और स्वाभिमानिनी है । पुरुष के अहं को नष्ट कर उसमें दानवत्व के बदले मानवत्व की स्थापना करने का सफल प्रयत्न नारी करती है । इसका प्रमाण है गीतिनाट्य 'अशोक वन बन्दिनी' में सीता का चरित्र । यहाँ सीता के माध्यम से आधुनिक युग की शक्तिस्वरूपिणी और साहसी नारी का रूप उभर आया है । आज की नारी अबला नहीं; वह अत्याचार के विरुद्ध रोष प्रकट करती है । 'उर्वशी' में मातृत्व की महिमा, नारी के पातिव्रत्य धर्म की प्रतिष्ठा, पुरुष की प्रेरणादायिनी शक्ति का प्रतिरूप नारी आदि का अंकन है । आधुनिक जागृत नारी का प्रतीक है गीतिनाट्य 'अग्निलीक' की सीता । आधुनिक नारी अन्याय को चुपचाप सहती नहीं, विरोध करती है । अपने जीवनानुभव नारी को विद्रोहिणी बनाते हैं । नारी मुक्ति की चाह, अत्याचारों से पीड़ित नारी और नारी के स्वतन्त्रता बोध का परिचय इसमें विद्यमान है ।

नारी हमेशा अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं को महत्व नहीं देती । वह फलेच्छा के बिना कर्म के मार्ग पर अग्रसर होती है । वह अपने परिवार के लिए आत्मत्याग करने के लिए सदा तैयार है । 'प्रवादपर्व' में सीता का अंकन आत्मत्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में किया गया है ।

"खण्ड खण्ड अग्नि' में नारी की शोचनीय स्थिति का अंकन है । समाज हमेशा नारी को संदेह की दृष्टि से देखता है । भारतीय परंपरा के अनुसार पुरुष के हज़ार दोष क्षम्य हैं । लेकिन नारी की छोटी सी भूल भी समाज की दृष्टि में बड़ा अपराध है । इससे पारिवारिक जीवन के विघटन की संभावना है । नारी हमेशा दूसरों के आदेशों का अनुसरण करनेवाली है । उसे अपनी कोई अस्मिता नहीं है । इन गीतिनाट्यों में स्त्री-असमिता की तलाश दिखाई देती है ।

पुरुष की कामांधता और स्वार्थवृत्ति का परिचय देनेवाले गीतिनाट्य हैं 'मत्स्यगन्धा' 'विश्वामित्र' 'अशोक वनबन्दिनी' और 'नहुष निपात' । आधुनिक युग में भी पुरुष के हाथ की कठपुतली है स्त्री । स्त्री जल्दी ही पुरुष के वाग्जाल में फँस जाती है और शोषण का शिकार बन जाती है । वर्तमान युग में शोषित नारियों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई है । समाज में नारी मुक्ति का आन्दोलन सब कहीं चल रहा है । फिर भी नारी की शोचनीय स्थिति ओर कामांधपुरुषों के अत्याचार में परिवर्तन नहीं हुआ है । पुरुष की उपभोग वस्तु बनने वाली नारी की स्थिति समाज में पहले के समान ही बनी रहती है । यह अत्यन्त लज्जास्पद है । इसके प्रमाण हैं गीतिनाट्य 'मत्स्यगन्धा' 'विश्वामित्र' 'नहुष निपात' आदि । 'विश्वामित्र' में कामांध विश्वामित्र मेनका के हाथ की कठपुतली बन जाता है । यहाँ नर पर नारी की विजय होती है । इस तरह पुरुष को अपने इशारे पर नचाने वाली नारियाँ भी हमारे समाज में मौजूद हैं । 'विश्वामित्र' में समाज में नर और नारी के समान अधिकार के संबन्ध में उर्वशी का कथन ध्यान देने योग्य है । उसका कथन है कि नर और नारी दोनों ईश्वर की सन्तानें हैं । समाज में दोनों को समान स्थान या अधिकार प्राप्त होना चाहिए । 'पाषाणी' में पुरुष की

स्वार्थवृत्ति का और नारी की अस्वतंत्रता का परिचय मिलता है । इसमें चित्रित समस्याएँ युगानुकूल हैं । 'अशोकवनबन्दिनी' में आज के कामांध पुरुष का प्रतिरूप है रावण । 'नहुष निपात' में पुरुष की कामांधता और अधिकार लिप्सा के प्रतीक के रूप में मुख्य पात्र नहुष का चित्रण रचनाकार ने किया है ।

अवैध सन्तान की शोचनीय स्थिति, समाज में प्रचलित जाति-पाँति की व्यवस्था और ऊँच-नीच भेदभाव का अंकन गीतिनाट्य 'कर्ण' और 'सूतपुत्र' में विद्यमान है। 'कर्ण' और 'सूतपुत्र' में रचनाकार पात्र कर्ण के माध्यम से आज की दुनिया में मौजूद अवैध सन्तान की विवशता और जाति-पाँति की व्यवस्था पर रोष प्रकट करते हैं । कर्ण के व्यक्तित्व में प्रतिकूल परिस्थिति में जन्मे व्यक्ति का प्रभाव है । प्रतिकूल परिस्थिति व्यक्ति के हृदय में कटुता की सृष्टि करती है । समाज में आज भी ऊँच-नीच भेदभाव जारी है । आधुनिक मानव की विवशता कर्ण में दिखाई देती है । कर्ण के समान आज भी दलित या निम्नवर्गों को तरह तरह के अपमान सहने पड़ते हैं । कर्ण की विद्रोह भावना आधुनिक युग के निम्नवर्ग के लोगों में भी है । निम्नकुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति को अनेक प्रतियोगिताओं से निष्कासित होना पड़ता है । 'सूतपुत्र' में रचनाकार यह प्रश्न हमारे सम्मुख रखते हैं कि व्यक्ति का महत्व अपने जाति, वंश या गोत्र पर निर्भर है या उसके कर्म पर ? इन दोनों गीतिनाट्यों में स्त्री द्वारा पुरुष के अपमानित होने के संदर्भ भी हम देख सकते हैं । द्रौपदी के द्वारा अपमानित कर्ण इसका उदाहरण है ।

गीतिनाट्य 'अन्धायुग' 'एक कंठविषपायी' 'प्रवादपर्व' 'काठमहल' आदि संसार में मौजूद सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं । ये गीतिनाट्य आज

की प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर सशक्त प्रहार हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी हमारे देश में अन्याय और भ्रष्टाचार व्याप्त हैं । आज की प्रजातांत्रिक व्यवस्था के दुष्फल निरीह जनों को भोगना पड़ता है । वर्तमान युग में प्रजातन्त्र में कुछ शासक अपने उत्तरदायित्वों की परवाह न करके कर्त्तव्य विमुख होकर शासन करते हैं । गीतिनाट्य 'एक कंठविषपायी' में शासक वर्ग की राज्यलिप्सा, स्वार्थवृत्ति,युद्ध लिप्सा आदि अनेक विषयों का उल्लेख है । 'प्रवादपर्व' में जनहित के विरुद्ध शासन करनेवाले लोगों का उल्लेख है । हमारी शासनव्यवस्था में जनता को मतदान देने का अधिकार मात्र है । जनता के हितों की पूर्ति शासक नहीं करते । प्रजातांत्रिक शासनव्यवस्था में शासक और शासित दोनों का स्थान बराबर है । शासक स्वयं नियम निर्माण नहीं कर सकते । रचनाकार ने पात्र राम के माध्यम से राज्य में प्रजा और शासक के समान अधिकारों पर ज़ोर दिया है । चाहे प्रजा हो या शासक अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का अधिकार दोनों को हैं । 'काठमहल' में आम आदमी की विवशता का परामर्श है । प्राचीनकाल और आधुनिककाल में शासकों के बदलने पर भी जनसाधारण की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता । आम आदमी हमेशा शासकों के हाथ के खिलौने हैं । वे स्वेच्छाचारी शासकों से मुक्ति चाहते हैं । वे शासकवर्ग के शोषण के शिकार हैं । आम आदमी सबकुछ सहते हैं । अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने की ताकत उनमें नहीं । स्वयं निर्णय लेने में भी वे असमर्थ हैं । बदलती हुई शासन व्यवस्था को खोखला करने वाले दीमकों के प्रतीक हैं 'काठमहल' के पात्र अमात्य, विश्वकर्मा और देवराज ।

'गुरु द्रोण का अन्तर्निरीक्षण' में द्रोणाचार्य के माध्यम से अमानवीय आचरण करनेवाले शिक्षक वर्ग की ओर संकेत किया गया है । इस प्रकार के कुछ शिक्षक वर्तमान समाज में भी मौजूद हैं । प्रतिहिंसा से पागल होकर अमानवीय आचरण करनेवाला अश्वत्थामा आधुनिक युग के अन्ध मानव का प्रतिरूप है ।

विज्ञान की प्रगति के दुष्परिणाम, भूख की समस्या आदि समस्याओं का उद्‌घाटन गीतिनाट्य 'हिमालय का सन्देश' में किया गया है । 'संशय की एक रात' में संशयग्रस्त और उचितानुचित निर्णय लेने में असमर्थ आधुनिक मानव की ओर राम के माध्यम से रचनाकार संकेत करते हैं ।

संशयकी एक रात' में राम और विभीषण के द्वारा तथा 'एक कंठविषपायी' में शिव के द्वारा मानव के खण्डित व्यक्तित्व का परिचय दिया गया है । 'अग्निलीक' में दलित, पीड़ित आदिवासियों के प्रतिनिधि चरण के चित्रण के द्वारा वर्तमान आदिवासी वर्ग की शोचनीय स्थिति का उल्लेख किया गया है । अब भी भूमिरहित आदिवासी हैं । उनके रहन सहन के विषय को लेकर आज भी कई चर्चाएँ हो रही हैं ।

इन गीतिनाट्यों में परिस्थितिवश आत्महत्या करनेवाले पात्रों का उल्लेख है । 'कृष्णा' की नायिका कृष्णा अपने देश की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करती है । 'अंधायुग' में न्याय और सत्य के पक्षधर युयुत्सु को दानों पक्षों से अपमान ही मिला; अंत में वह आत्महत्या करता है । 'सूखा सरोवर' में छोटे राजा की पुत्री अपने प्रेमी से विवाह न होने के कारण सरोवर में कूदकर आत्महत्या करती है । तब सरोवर सूख जाता है; उसके प्रेमी की आत्माहुति से सरोवर पुनःभर जाता है । 'एक कंठ विषपायी' में अपने पिता के द्वारा अपमानित शिव की हालत देखकर आदर्श पत्नी सती आत्महत्या करती है । 'अग्निलीक' में सीता के आत्मबलिदान का उल्लेख है । विविध कारणों से आत्महत्या करनेवालों की संख्या आधुनिकयुग में उत्तरोत्तर बढती ही जा रही है ।

कहा जाता है कि संसार में कनक और कामिनी के कारण कलह होता है । श्री भगवतीचरण वर्मा ने अपने गीतिनाट्य 'कर्ण' और 'द्रौपदी" में द्रौपदी के चरित्र चित्रण के

द्वारा उपर्युक्त कथन को सत्य सिद्ध किया है । 'कर्ण' में द्रौपदी-स्वयंवर की सभा में लक्ष्य-बेध के लिए आगे बढ़े कर्ण को द्रौपदी ने सूतपुत्र कहकर रोक दिया । तभी से कर्ण ने अर्जुन को शत्रु माना । अपमानित कर्ण आजन्म अविवाहित रहा । गीतिनाट्य 'द्रौपदी' में जिस दिन द्रौपदी ने 'अंध- का सुत अंधा' कहकर सुयोधन का अपमान किया, उसी दिन महाभारत युद्ध की नींव डाली गयी ।

'अशोक वन बंदिनी में त्रिजटा और मंदोदरी, 'संशय की एक रात' में विभीषण और 'खण्ड खण्ड अग्नि' में सरमा राक्षस वंशज हैं; लेकिन उनमें सहानुभूति आदि मानवोचित गुण दर्शनीय हैं । राक्षसी होते हुए भी त्रिजटा के मन में अशोकवन बन्दिनी सीता के प्रति नारी सहज प्रेम और सहानुभूति हैं । अपने वाग्जाल में न फँसनेवाली सीता को जब क्रुद्ध रावण मारने लगता है तो मंदोदरी उसे रोकती है । मंदोदरी उदात्त चरित्रवाली सद्नारी का प्रतीक है; पति को सद्पथ पर ले जानेका प्रयत्न करनेवाली ममतामयी, कर्तव्य निष्ठ नारी का प्रतिरूप है । रावण का भाई होने पर भी विभीषण उसके विरुद्ध राम का पक्ष लेता है; क्योंकि धर्म और न्याय राम के पक्ष में हैं । विभीषण की पत्नी सरमा सीता की हितैषिणी है । वह सीता को समझाती है कि नारी हमेशा अनुकर्ता है । इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि व्यक्ति का महत्व उसके जन्म से नहीं; कर्म से आँका जाता है । आधुनिक युग में भी प्रायः देखा जाता है कि अकुलीन कुटुंब में जन्मे अनेक लोग, अपने उत्कृष्ट कर्मों के कारण आदरणीय बन जाते हैं ।

नारी के सद्-असद् रूप, शक्तिस्वरूपिणी रूप, वात्सल्यमयी माता का रूप, भोली-भाली नारी का रूप, आदर्श पत्नी का रूप, उदात्त प्रेममयी नारी का रूप, वासनाप्रिय नारी

का रूप, शोषित नारी का रूप आदि अनेक नारी रूप विवेच्यकाल के गीतिनाट्यों में विद्यमान हैं । इनमें सर्वश्रेष्ठ है माता का रूप । 'विश्वामित्र' में मेनका, 'अंधायुग' में गांधारी 'एक कंठ विषपायी' में वारिणी आदि नारियों के चित्रण से नारी के इस सर्वोत्कृष्ट रूप का महत्व बताया गया है । 'विश्वामित्र' में बच्ची शकुंतला को स्वीकार न करनेवाले विश्वामित्र के इस कथन पर कि सब पर नर का शासन चल रहा है, उर्वशी का प्रश्न है, नर नारी दोनों की सृष्टि ईश्वर ने की है । नर बड़ा और नारी छोटी, यह कैसे हो सकता है? यह प्रश्न वास्तव में आज की जागृत नारी का है ।

लोगों में मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था जगाना समाज-कल्याण के लिए अनिवार्य है । अधिकांश लोग अपनी मर्जी से सदाचारी नहीं होते । उनके मन में यह विश्वास होना चाहिए कि कोई शक्ति हमेशा उनका निरीक्षण कर रही है; उन्हें अपने कर्मों का फल भोगना पड़ेगा; अच्छे कर्म करने से अच्छा फल मिलेगा और बुरे कर्म का फल भी बुरा होगा । इस विश्वास के फलस्वरूप उनमें सद्भावना जगेगी । ऐसी कुछ दैविक शक्तियों को भी खोज निकाला गया जिनके प्रति लोगों के मन में भक्ति-भाव उमड़ पड़ा । राम, कृष्ण, शिव आदि मिथकों के प्रति लोगों की आस्था प्राचीनकाल से लेकर अब तक ज्यों की त्यों है । साहित्य में भी इन मिथकों को प्रमुख स्थान मिला और रचयिताओं को ऐसा लगा कि इन मिथकों के माध्यम से खोये हुए मानव-मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा और वर्तमान जीवन की जटिल समस्याओं का उद्घाटन वहुत सहजता से किया जा सकता है । कभी कभी इन मिथकों की परंपरा को चुनौती देनेवाले अवसर आते हैं तो भी किसी न किसी आदर्श में परिणति दिखाकर गीतिनाट्यकारों नें मिथकों के प्रति मनुष्य की आस्था को टूटने न दिया ।

मिथकीय कथाएँ हमारी संस्कृति से जुड़ी रहती हैं । मिथकीय कथाओं के आधार पर समसामयिक समस्याओं की अभिव्यक्ति हम प्रभावात्मक ढंगसे कर सकते हैं । सचमुच मिथकाश्रित पौराणिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक कथाएँ समसामयिक समस्याओं को प्रतिबिम्बित करनेवाला आईना है । मिथकीय कथाओं के माध्यम से रचनाकार ने आधुनिक या वर्तमान समस्याओं को देखा परखा और नवीन संदर्भों में इनकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है । कुछ आलोचकों ने मिथकीय पात्रों के इस तरह के चित्रण को हँसी मज़ाक उड़ाने का प्रयत्न कहा है । लेकिन यह तो गलत है । पौराणिक या ऐतिहासिक पात्रों के साथ अनादिकाल से मानव का सुदृढ़ संबन्ध है । ये पात्र प्रकृति से जुड़े रहनेवाले हैं । ये पात्र मानव के अवचेतन मन में चिरकाल से लब्धप्रतिष्ठ हैं। इन पात्रों को हम से अलग करके हम देख नहीं सकते । आधुनिक भावबोध का अंकन इन पात्रों के द्वारा हम आसानी से कर सकते हैं; क्योंकि मानव समाज पर प्रभाव डालने की क्षमता ऐतिहासिक या पौराणिक पात्रों में ज़्यादा है । वैज्ञानिक प्रगति के साथ नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ । वैज्ञानिक जगत में तकनीकी पक्ष की प्रधानता है । लेकिन इससे अधिक प्रमुख है मानव के लिए अपना अनुभूति पक्ष । अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाना और इसके द्वारा समाज में परिवर्तन लाना ही रचनाकार का उद्देश्य है । परिवर्तन ही जीवन है । बिना परिवर्तन के जीवन मृततुल्य है । गीतिनाट्यकारों ने मिथकीय कथाओं के माध्यमसे समाज में व्याप्त कई आधुनिक जटिल समस्याओं का उद्‌घाटन किया और उनके संबंध में सोचने समझने को भी विवश कर दिया । यद्यपि हाल ही में गीतिनाट्यों की रचना विरले ही होती है तो भी हिन्दी में मिथकीय गीतिनाट्यों का विशेष उल्लेखनीय स्थान है । वे हमें विशेष रूप से, प्रभावित करते आ रहे हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मूलग्रन्थ

1	अग्निलोक	भारतभूषण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976
2	अनघ	श्री मैथिलीशरण गुप्त साहित्य मैथिलिशरण गुप्त के नाट्क, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2000
3	अन्धायुग	धर्मवीर भारती, किताबमहल, इलाहाबाद, संस्करण 2001
4	अशोक-वन-बन्दिनी तथा अन्य गीतिनाटक	उदयशंकर भट्ट, भारती साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली 1959
5	उत्तर प्रियदर्शी	अज्ञेय, अक्षर प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली 6 प्रथम संस्करण 1967
6	उन्मुक्त	सियाराम शरण गुप्त, साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी), द्वितीयावृत्ति 2006 वि.
7	उर्वशी	रामधारीसिंह दिनकर उदयाचल प्रकाशन की ओर से लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1961 ई.

8	एक कंठ विषपायी	दुष्यन्तकुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सितम्बर 1963
9	करुणालय	जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण सं. 2018 विं.
10	काठमहल	प्रभातकुमार भट्टाचार्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1, संस्करण :1988
11	कृष्णा	सियाराम शरण गुप्त रचनावली खण्ड दो में प्रकशित, किताबघर, नयी दिल्ली 110002 प्रकाशक साहित्य सदन झाँसी, प्रथम संस्करण, 1992
12	खण्ड-खण्ड अग्नि	दिविक रमेश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करणः 1994
13	गोविन्ददास ग्रन्थावली आठवाँ खण्ड	सेठ गोविन्ददास, भारतीय विश्व प्रकाशन फव्वारा, दिल्ली, 1959
14	तारा (मधुकण काव्य संग्रह में)	भगवतीचरण वर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, साहित्य केन्द्र, इलाहाबाद 1932
15	त्रिपथगा	भगवती चरण वर्मा, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं. 2011 विं (1954)
16	नहुष निपात	उदयशंकर भट्ट, आत्मराम, एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली 6, प्रथम संस्करण 1961

17	पंचवटी प्रसंग (परिमल काव्य संग्रह में)	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, ग्रन्थागार, लखनऊ 1929
18	पाषाणी	आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद -1, द्वितीय संशोधित संस्करण जूलाई 1967
19	पृथ्वीपुत्र (श्री मैथिली शरणगुप्त साहित्य)	श्री मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, झाँसी, संस्करण 2003
20	प्रवादपर्व	नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1 संस्करण 1993
21	भारत भूषण अग्रवाल रचनावली खंड दो	संपादक बिन्दु अग्रवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, प्रथम संस्करण: 1994
22	विश्वामित्र और दो भावनाट्य	उदयशंकर भट्ट, अत्माराम एण्ड संस, संस्करण 1960
23	संशय की एक रात	नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1 द्वितीय संस्करण 1989
24	सूखा सरोवर	डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल, भारतीय ज्ञान पीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1960
25	सूतपुत्र	विनोद रस्तोगी, उमेश प्रकाशन दिल्ली 1974
26	स्वर्णविहान	हरिकृष्णप्रेमी, सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर, 1930
27	हिमालय का सन्देश (नीलकुसुम काव्यसंग्रह में)	रामधारीसिंह दिनकर, उदयाचल पटना, 1954

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1	अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि	सुरेश गौतम साहित्य प्रकाशन, दिल्ली -6 आवृत्ति 1973
2	अभिज्ञान	हितेन्द्र यादव, कविता सुरभि, सुनीता सक्सेना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2000
3	अज्ञेय	संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978
4	अज्ञेय कवि और काव्य	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 2001
5	आचार्य कवि श्री जानकी वल्लभ शास्त्री- व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ. आशा नारायण शर्मा नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1989
6	आधुनिक हिन्दी काव्य नाटक	डॉ. जे. अंबिका देवी जवाहर पुस्तकालय, मथुरा संस्करण सन् 2006
7	आधुनिक हिन्दी नाटक	डॉ. नगेन्द्र साहित्य रत्नभण्डार, आगरा षष्ठम संस्करण जनवरी 1960

8	आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल साहित्य भवन, प्रा. लिमिटेड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1973
9	आधुनिक हिन्दी नाटक संवेदना और रंगशिल्प के नये आयाम	डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया भावना प्रकाशन, 126 पटपड़गंज दिल्ली 110 092 संस्करण 1998
10	आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक	डॉ. श्याम शर्मा अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1978
11	आधुनिक हिन्दी उपन्यासः सृजन और आलोचना	चन्द्रकान्त बांदि वाडेकर नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1985
12	आर्ष कवि नरेशमेहता	डॉ. उदयवीर शर्मा 'उवीश' अमर प्रकाशन मथुरा, प्रथम आवृत्ति 1989
13	कला का जोखिम	निर्मल वर्मा राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पटना प्रथम संस्करण 1981
14	गीतिनाट्य-शिल्प और विवेचन	डॉ. शिवशंकर कटारे प्रगति प्रकाशन, आगरा 3 प्रथम संस्करण 1979
15	डॉ. नगेन्द्र ग्रन्थावलीः खण्ड 3	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, अंसारी रोड, नई दिल्ली संस्करण 1997

16	डॉ. नगेन्द्र ग्रन्थावली: खंड 9	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, अंसारी रोड, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1997
17	डॉ. भारतभूषण अग्रवाल: व्यक्तित्व और कृतित्व	अदीब मलेका, दिग्दर्शन चरण जैन श्रृषभ चरण जैन, एवंम सन्तति, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986
18	दुष्यन्तकुमार: रचनाएँ और रचनाकार	गणेश तुलसीराम अष्टेकर, पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 1989
19	धर्मवीर भारती: अनुभव और अभिव्यक्ति	लक्ष्मण दत्त गौतम भारत पुस्तक भण्डार, सोनिया विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999
20	धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग	डॉ. चन्द्र भानुसीताराम सानवणे, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कोलानी जयपुर 302 003 प्रथम संस्करण 1979
21	धर्मवीर भारती: व्यक्ति और साहित्यकार	डॉ. पुष्पा वास्कर अलका प्रकाशन किदवई नगर, कानपुर प्रथम संस्करण जूलाई 1987
22	नया नाटक: उद्‌भव और विकास	डॉ. नरनारायणराय कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली 110 007 प्रथम संस्करण 2001
23	नया हिन्दी नाटक	डॉ. भानुदेव शुक्ल जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1993

24	नयी कविता और नरेश मेहता	डॉ. विमला सिंह शिल्पी प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1994
25	नयी कविता के मिथक काव्य	रश्मि कुमार वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2000
26	नयी कविता: पुराख्यान और समकालीनता	डॉ. एस. ए. सूर्यनारायण वर्मा जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1999
27	नयी कविता में पुराख्यान (नये संदर्भ नये आयाम)	डॉ. अरुण कुमार संजय बुक सेंटर, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1991
28	नयी कविता में मिथक	डॉ. राजकुमार अंकुर प्रकाशन, दिल्ली 110 032 प्रथम संस्करण 1989
29	नये कवि: एक अध्ययन भाग तीन	डॉ. संतोषकुमार तिवारी भारतीय ग्रंथ निकेतन नई दिल्ली 110 002 प्रकाशन वर्ष 1991
30	नरेशमेहता: कविता की ऊर्ध्वयात्रा	राजकमल राय लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1982
31	नरेश मेहता का काव्य: संवेदना और शिल्प	अभियचन्द्र पटेल, आराधना ब्रदेर्स, कानपुर प्रथम संस्करण 1980
32	नरेश मेहता के काव्य का अनुशीलन	प्रतिभा मुदलियार सार्थक प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1997

33	नाट्य दर्शन (शोधकृति)	डॉ. शान्तिगोपाल पुरोहित पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 1970
34	नाट्यविमर्श	नरनारायण राय सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984
35	नाट्य विमर्श	संपादक डॉ. रमेश गौतम नवराज प्रकाशन भजन पुरा, दिल्ली 110 053 प्रथम संस्करण 2001
36	प्रसाद के नाटकों में नियतिवाद	पद्माकर शर्मा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1968
37	प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य	डॉ. विजय बापट मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल प्रथम संस्करण 1971
38	मिथकः उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य	डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1986
39	मिथकः एक अनुशीलन	मालती सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1 प्रथम संस्करण 1988
40	मिथक और आधुनिक कविता	डॉ. शंभुनाथ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1985

41	मिथक और भाषा	डॉ. शंभुनाथ दिलीपकुमार मुखर्जी, कलकत्ता, प्रकाशन काल 1981
42	मिथक और स्वप्न, कामायनी की मनस्सौंदर्य सामाजिक भूमिका	डॉ. रमेश कुंतल मेघ ग्रन्थम, कानपुर, संस्करण 1967
43	मिथक प्रतीक और कविता	डॉ. दिनेश्वर प्रसाद जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 210 03 प्रथम संस्करण 1999
44	मिथकीय अवधारणा और यथार्थ	डॉ. रमेश गौतम राधारानी प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1997
45	मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य	डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1985
46	मिथकीय समीक्षा	डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय ग्रन्थायन, अलीगढ, प्रथम संस्करण 2001
47	मैथीलीशरण गुप्त का काव्य (संस्कृत स्रोत के संदर्भ में)	डॉ. एल. सुनीता हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय
48	विनोद रस्तोगी की नाट्यसाधना	डॉ. विनोदपटेल, पार्श्व प्रकांशन, अहमदाबाद प्रथम संस्करण 1992
49	समकालीन मूल्यबोध और संशय की एक रात	सुरेशचन्द्र जवाहर पुस्तकालय, मथुरा संस्करण 2002

50	समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक	डॉ. शेखर शर्मा भावना प्रकाशन, पटपडगंज दिल्ली 92 प्रथम संस्करण 1988
51	समकालीन हिन्दी समीक्षा	अशोक भाटिया कुमार प्रकाशन, नई दिल्ली 110 015 प्रथम संस्करण 1982
52	साठोत्तर हिन्दी नाटक (मिथकीय तत्वों के संदर्भमें)	डॉ. नीलम राठी संजय प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2001
53	सियाराम शरण गुप्त रचनावली खण्डचार	संपादकः ललित शुक्ल झाँसी, साहित्य सदन प्रथम संस्करण 1992
54	सियाराम शरण गुप्तः सृजन और मूल्यांकन	ललित शुक्ल प्रकाशक रणजीत प्रथम संस्करण मार्च 1969
55	स्वातंत्र्योत्तर गीतिनाट्य	डॉ. शिवशंकर कटारे प्रगति प्रकाशन, आगरा प्रथम संस्करण 1979
56	स्वातंत्र्योत्तर गीतिनाट्य काव्य	डॉ. प्रमिला सिंह अनंग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001
57	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में रामकथा का पुनराख्यान	डॉ. पुष्पारानी शान्ति प्रकाशन, रोहतक हरियाणा, संस्करण 1992
58	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य	डॉ. देवी प्रसाद गुप्त, किशनलाल गांड़ो दिया पुस्तक भंडार बीकानेर (राजसथान) प्रथम संस्करण 1973

59	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक (1947 से 1984 तक)	डॉ. रामजन्म शर्मा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1 प्रथम संस्करण 1985
60	हमारी नाट्यपरंपरा	श्रीकृष्ण दास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1956
61	हिन्दी आलोचना की पहचान (शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना)	डॉ. राजमल बोरा कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1994
62	हिन्दी के काव्य नाटक	डॉ. सुशीला सिंह आदित्य पब्लिशर्स बीना (म.प्र) 470 113 प्रथम संस्करण 1998
63	हिन्दी के साहित्य निर्माता-मैथिली शरण गुप्त	डॉ. प्रभाकर माचवे राजपाल एण्ड, सन्ज़, दिल्ली संस्करण 1993
64	हिन्दी गीतिनाट्य (पंत के विशेष संदर्भ में)	डॉ. रेखा श्रीवास्तव साहित्य निलय, कानपुर, प्रथम संस्करण 1997
65	हिन्दी नाटक (नया संशोधित संस्करण)	डॉ. बच्चन सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 110 002 प्रथम संस्करण 1989
66	हिन्दी नाटकः उद्‌भव और विकास	डॉ. दशरथ ओझा राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली संस्करण 1991

67	हिन्दी नाटक: इतिहास दृष्टि और समकालीन बोध	डॉ. प्रभात शर्मा संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
68	हिन्दी नाटक और रंगमंच: पहचान और परख	लिपि प्रकाशन दिल्ली 110 051, (डॉ. इन्द्रनाथ मदान द्वारा संपादित) प्रथम संस्करण सितंबर 1975
69	हिन्दी नाटक प्राक्कथन और दिशाएँ	डॉ. विजयकान्त धरदुबे अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण सन् 1986
70	हिन्दी नाटक: मूल्यचिंतन और रंगदृष्टि	डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत शाश्वत प्रकाशन 54, 52 शिव मार्किट, न्यूचन्द्रावल, प्रथम संस्करण 1997
71	हिन्दी नाटक: सिद्धान्त और विवेचन	डॉ. गिरीश रस्तोगी ग्रन्थम कानपुर
72	हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन	डॉ. शान्ति गोपाल पुरोहित साहित्य सदन, देहरादून, प्रथम संस्करण 1964
73	हिन्दी पद्यनाटक सिद्धान्त और इतिहास	सिद्धनाथ कुमार आलोक प्रकाशन, राँची 8 प्रथम संस्करण 1979
74	हिन्दी सूफी काव्य में मिथक	जोगेन्द्र प्रकाश ठकराल, प्रियदर्शी प्रकाशन, दिल्ली 110 053 प्रथम संस्करण 2001

आलोचनात्मक ग्रन्थ (अंग्रेज़ी)

1.	Ancient Myth in Modern poetry	Lillian Feder Copy Right 1971 by Princeton University press
2.	An essay on Criticism	by Graham Hough Gerald Duck Worth and Co. Ltd. First published 1966
3.	Illusion and Reality	Christopher Caudwell Macmillan, First Edition 1937
4.	Myth of Modern Individualism	IANWATT First Published 1996 Canto edition 1997 printed in cambridge university press.

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना — संपादक नामवरसिंह अप्रैल जून 1989

2. आलोचना त्रैमासिक — संपादक नामवरसिंह वर्ष 19, अप्रैल-जून1972
राजकमल प्रकाशन दिल्ली 6 पटना 6

3. गगनांचल — भारतीय सांस्कृतिक संबन्ध परिषद्
अक्तूबर, दिसम्बर 2001, वर्ष 24, अंक 4

4. संग्रथन — हिन्दी विद्यापीठ, केरल की मुख पत्रिका मई 1999

5. संग्रथन — हिन्दी विद्यापीठ, केरल की मुखपत्रिकाजून 2002

6. समकालीन भारतीय साहित्य — साहित्य अकादमी त्रैमासिक पत्रिका,
नई दिल्ली 110 001
जूलाई सितंबर 1995 वर्ष 16 अंक 61

7 साक्षात्कार — मध्यदेश साहित्य परिषद्, 255 मार्च 2001,
संपादक आग्नेय

कोश ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, भाग 2:

प्रधान संपादक धीरेन्द्रवर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी प्रथम संस्करण 1963

विश्व कोश

हिन्दी विश्वकोश (खंड 6) नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी प्रथम संस्करण 1966

शब्द कोश

1.	English Hindi Malayalam Dictionary	Continental Publications Trivandrum - 4 Third Impression 1989
2.	Meenakshi Hindi-English Dictionary	A. Meenakshi Prakashan Meerut - 250001 First Published - 1980
3.	अंग्रेज़ी हिन्दी कोश	फादर कामिल बुल्के एस चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा.) लि. नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1968